साठोत्तरी हिन्दी-उपन्यासों में राजनीतिक चेतना

कृष्णकुमार बिस्सा 'चन्द्र'

दिनमान प्रकाशन

२०१४, चर्खेवालान दिल्ली ६

मूल्य ६० ०० / प्रथम सस्करण १९८४ / प्रकाशक दिनमान प्रकाशन, ३०१४, चर्खेवालान, दिल्ली ११०००६ / आवरण जोशी / मुद्रक मानस प्रिंटिंग प्रेस, ६/४७५३, पुराना सीलमपुर, दिल्ली ३१

समर्पण

श्रध्येय गुरुवर डॉ० देवीप्रसाद गुप्त
जिनके चरणो मे वैठकर मैंने इस
शोध-ग्रथ को पूर्ण किया ।

—कृष्णकुमार बिस्सा 'चन्द्र'

प्रस्तावना

अरस्तू के अनुसार मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है और हम जिस युग मे रह रहे हैं वह राजनीति का ही युग है। हमारे दैनिक जीवन मे राजनीति की व्याप्ति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि विज्ञान, साहित्य, धर्म, उद्योग, नीति, कूटनीति आदि क्षेत्रो तथा व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्वजनीन सम्बन्धो मे राजनीति की पैठ हो गयी है। अस्तु, साहित्य की अभिव्यक्ति म राजनीतिक चेतना का समाहार एक अपरिहार्य स्थिति बन गयी है। साहित्य की विविध विधाओ मे उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय इसीलिए है कि उसके माध्यम से मानवीय चेतना के गतिशील स्तरो का सशक्त अकन किया गया है। महत्ता की दृष्टि से उपन्यास महाकाव्य का स्थानापन्न बन चुका है और रल्फ फाक्स ने उपन्यासकार को नये समाज का महाकवि कहा है। वस्तुत उपन्यास जनतान्त्रिक साहित्य विधा है। जिसमे स्वनामधर्मी आयामो मे युग जीवन का यथार्थ समग्रता से चित्रित होता है। हिन्दी की साहित्यिक सरचना मे ही नही अपितु वश्विक स्तर पर उपन्यास की लोकप्रियता सर्वमान्य है।

प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासो मे राजनीति का प्रवेश हो गया था और प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी औपन्यासिक सरचना म राजनीति एक प्रमुख प्रत्यय बनकर उभरी। डा० ब्रजभूषण सिंह आदर्श का शोध प्रबन्ध 'हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो का अनुशीलन (१६०० १६६३) शोध प्रबन्ध छठे दशक के हिन्दी उपन्यासो म राजनीति के समाहार का सम्यक मूल्याकन प्रस्तुत करता है। सन् १६६३ से १६८३ तक गत दो दशको मे लिखे गये राजनीतिक चेतनापरक हिन्दी उपन्यासो का अध्ययन अनुशीलन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध डा० ब्रजभूषणसिंह के शोधकाय का पूरक प्रयास होते हुए भी इस दृष्टि से विशिष्ट है कि गत दो दशको मे हमारे देश की तथा विश्व की राजनीति मे जो आमूल चूल परिवतन हुए हैं तथा भारतीय राजनीति म जो नये अप्रत्याशित मोड आय, वे पहले से कही अधिक जटिल और महत्त्वपूर्ण हैं। सन् १६६३ से १६८३ तक के बीस वर्षों की राजनीति दल बदलुओ से लाछित और भ्रष्टाचार से कलकित है तो सत्ता और विपक्ष की सरकारो के निर्माण और पतन की घटनाओं के कारण हमारे देश मे लोकतन्त्र की गहरी नीव हल जाने की साक्षी है। प्रकारान्तर उतार-

चढाव और उत्थान-पतन की राजनीति है। स्वभावत हिन्दी के सजग कथाकारो ने अपनी कथाकृतियो मे इन राजनीतिक परिवर्तनो के प्रामाणिक दस्तावेज के रूप मे सशक्त उपन्यास लिखे हैं। साठोत्तर हिन्दी उपन्यासो के अम्बार मे से प्रतिनिधि रचनाकारो के १४ उपन्यास इस आलोच्य पुस्तक मे सम्मिलित किये गये हैं। वे हैं—एक और मुख्यमन्त्री, प्रजाराम, हजार घोडो का सवार (श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र') सबहिं नचावत राम गोसाई (श्री भगवतीचरण वर्मा) काली-आंधी (श्री कमलेश्वर), रागदरबारी (श्री लाल शुक्ल), कटरा बी आर्जू (डा० राही मासूम रजा), महामहिम (श्री प्रदीप पन्त), महाभोज (मन्नू भण्डारी) जगल तन्त्रम (श्री श्रवण कुमार गोस्वामी) दारुल शफा (श्री राजकृष्ण मिश्र), समय एक शब्द भर नही है (धीरेन्द्र अस्थाना), सुराज (हिमाशु जोशी) और शक्तिभग (श्रीमुद्राराक्षस)

प्रस्तुत पुस्तक को पूर्ण कराने मे मुझे जिनका सहयोग, समर्थन और मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ उनके प्रति आभार व्यक्त करना अपना पुनीत कर्त्तव्य मानता हूँ। इस क्रम मे सर्वप्रथम मैं हिन्दी के उन समर्थ कथाकारो के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनकी कथा कृतियां मेरे शोध कार्य का आधार बनी हैं। हिन्दी के सुप्रतिष्ठित कथाकार पूज्य पिताजी श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' और माताजी श्रीमती शान्ति भट्टाचार्य की सतत सप्रेरणा से यह कार्य निर्विघ्न सम्पूर्ण हुआ है, उनके प्रति आभार प्रदर्शन की औपचारिकता न करके उनके आशीर्वाद की कामना करता हूँ। परिवार के अन्य सदस्यो मे अग्रज श्रीनवरतन बिस्सा, श्री विजय कुमार बिस्सा का आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होने मुझे इस कार्य को पूर्ण करने मे निरंतर प्रेरणाएँ दी। डा० आदर्श सक्सेना, डा० उमाकान्त गुप्त, दिलीप कुमार, श्री बुलाकी शर्मा और प्रकाशक चाचा श्री प्रेमचन्द शर्मा जिन्होने इस पुस्तक को शीघ्र प्रकाशित कर पाठको तक पहुँचाया।

आशालक्ष्मी
नया शहर
बीकानेर (राजस्थान)

—कृष्णकुमार बिस्सा 'चन्द्र'

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

४ राजनीतिक विचारधाराएं

राजनीतिक विचारधाराओं की सैद्धांतिक स्वरूप विवेचन एवं प्रवृत्तिमूलक विश्लेषण। (क) लोकतान्त्रिक समाजवाद—समाजवाद स्वरूप, परिभाषा और मूल तत्व, परिभाषाएँ, समाजवाद के मूल तत्व, समाजवाद और लोकतन्त्र, समाजवाद और पूजीवाद समाजवाद और गाधीवाद, समाजवाद और साम्यवाद। दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एव कलागत परिप्रेक्ष्य मे समाजवादी दर्शन—दार्शनिक पहलू, सामाजिक पहलू, समाजवाद की भारतीय परम्परा और उसके प्रमुख चिन्तक—मानवेन्द्रनाथराय और लोकतान्त्रिक समाजवाद, राममनोहर लोहिया समीक्ष्य उपन्यासो मे निरूपित लोकतान्त्रिक समाजवाद की प्रमुख प्रवत्तियां—सामाजिक सगठन का लोकतन्त्रीय आधार, लोक सामर्थ्य या जनशक्ति मे आस्था, व्यक्ति के स्थान पर समष्टि को मान्यता, पूजीवादी शोषण का प्रतिरोध, शोषित, दलितो और पीडितो के प्रति सहानुभूति, सामाजिक समता की सकल्पना, श्रम की महत्ता का प्रतिपादन, राजनीतिक और आर्थिक स्वातन्त्र्य पर समान बल, राज्य सत्ता का लोप और वर्गहीन आदर्श समाज की कल्पना, निष्कर्ष, लोकतान्त्रिक समाजवादी विचारधारा पर आधारित हिन्दी उपन्यासो का मूल्यांकन। (ख) मार्क्सवादी विचारधारा—मार्क्सवाद का सैद्धांतिक स्वरूप विश्लेषण, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, वर्ग एव वर्ग सघर्ष, सर्वहारा अधिनायकत्व या एकाधिपत्य राज्य सत्ता के लोप और वर्गहीन समाज की अवधारणा, मार्क्सवादी चिंतन मे कला और साहित्य सम्बन्धी मान्यताएं, कला साहित्य की प्रेरणा साहित्य और राजनीति, आधुनिक हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे मार्क्सवादी चिन्तन की अभिव्यक्ति, वर्ग वैषम्य और वर्ग सघर्ष की प्रवत्ति, क्रांतिमय चेतना, शोषण के विरुद्ध हिंसा की अभिस्वीकृति, उपनिवेशवाद का विरोध 'कला जीवन के लिए' सिद्धात का समर्थन, जनशक्ति मे आस्था, श्रम की महत्ता का प्रतिपादन सम वितरण का सिद्धात, राज्य सत्ता का लोप एव आदर्श साम्यवाद की परिकल्पना मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित हिन्दी उपन्यासो का मूल्यांकन। (ग) राष्ट्रवादी चेतना—राष्ट्र शाब्दिक व्युत्पत्ति एव पारिभाषिक स्वरूप विश्लेषण, कोशीय अर्थ, राष्ट्र और राष्ट्रीयता, राष्ट्र और राज्य का सम्बन्ध एव अन्तर राष्ट्रवाद के प्रकार, राष्ट्रवादी चेतना का विकासात्मक परिप्रेक्ष्य वैदिक कालीन

१ | हिन्दी उपन्यास का विकासात्मक परिप्रेक्ष्य और साठोत्तर हिन्दी उपन्यास

उपन्यास पारिभाषिक स्वरूप विवेचन

साहित्य की सबसे अधिक लोकप्रिय विधा 'उपन्यास' आधुनिक युग की देन है। जो स्थान प्राचीन काल मे महाकाव्यो का था, वही आज 'उपन्यास' का है। 'उपन्यास मे दुनिया जसी हो, उसे वैसी ही चित्रित करने का प्रयास किया जाता है।'[1] इसीलिए उपन्यास आज साहित्य का सबसे प्रमुख अग बन गया है। उपन्यास ही एक ऐसी विधा है, जिसमें लोकहित की भावना अन्य विधाओ की बनिस्बत ज्यादा कलात्मक एव सशक्त रूप से उभरी है, क्योकि 'जीवन और जगत के प्रति छाया अपनी सम्पूर्णता म उपन्यास मे ही चित्रित हो पाती है।'[2]

सस्कृत साहित्य मे 'उपन्यास' शब्द मनोरजन के अथ मे प्रयुक्त होता है। आग्ल समीक्षक हडसन भी उपन्यास मे मनोरजन को सर्वोपरि मानते हैं।[3] 'उपन्यास ने अल्प समय मे अपने व्यास को इतना फैलाया है कि यह सामान्य कथ्य और घटना से लेकर गहनतम विषय दशन तक को अपने मे समेटने मे समथ हो गया है। उसकी सफलता उसमे वर्णित अथवा चित्रित तत्त्वो की मानवीय स्पदनशीलता पर आधारित होती है।'[4] साहित्य की उस प्रमुख विधा 'उपन्यास' की शाब्दिक व्युत्पत्ति का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि उपन्यास शब्द सस्कृत की 'अस' धातु से बना है, जिसका अथ होता है—रखना (असुक्षेपणे) इसमे 'उप और 'नि उपसग है और 'घञ' अथ प्रत्यय का प्रयोग है।[5] उपन्यास का मुख्याथ है, सम्यक रूप से 'उपस्थापन'। डा० मकडोनल ने

१ डॉ० वेचन, आधुनिक हिन्दी उपन्यास उदभव और विकास, प० १३
२ हेनरी जेम्स, दी आर्ट आफ फिक्शन, पृ० ३६३
३ इन्ट्रोडक्शन टू दि स्टडी आफ लिटरेचर, पृ०१३२
४ डॉ० बेचन, आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ २०
५ हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृ० १०

अपने शब्द कोष मे 'उपन्यास' मे अर्थ किए हैं—विमर्श (इन्टीमेशन), अभि-कथन (स्टेटमेंट), उद्घोषणा (डिक्लेरेशन), वाद विवाद (डिस्कशन)[1] स्पष्ट है कि यद्यपि 'उपन्यास' शब्द सस्कृत वाङ मय मे प्रचुरता से प्रयुक्त होता था, किन्तु फिर भी इस शब्द से वह अर्थ ग्रहण नही किया जाता था, जो प्राय आज कल हम लेते हैं अर्थात गद्यबद्ध पर्याप्त लम्बी कथा। यह अर्थ इस शब्द का सर्वथा नूतन अर्थ है जो आधुनिक युग मे प्राप्त हुआ है और यही अर्थ आज इसका प्रधान व अधिकतम प्रचलित अर्थ भी है। उपन्यास शब्द का कथा के अर्थ मे सबसे पहला प्रयोग बगला भाषा म मिलता है।[2] 'उपन्यास' अन्य कला रूपो से भिन्न इसलिए भी होता है कि उसमे वह शक्ति है कि जीवन के गोपनीय अतरग यथा—मानसिक सघर्ष को भी वह पाठक के सम्मुख उद्घाटित करता है। इस प्रकार यथार्थ का यह चित्रण उससे भिन्न है जो कविता, नाटक, सगीत, चित्रकला द्वारा होता है। उपन्यास अपनी परिधि मे समूचे अविभाज्य जीवन को समेटता है। कुछ भी नही है जो इसकी परिधि से बाहर है—मनुष्य का चेतन, अर्द्धचेतन अथवा अचेतन।[3]

'किसी विधा को परिभाषित करना एक दुष्कर कार्य है, जिसमे 'उपन्यास' को परिभाषाबद्ध करना और भी कठिन है क्योंकि यह सर्वाधिक रूपातरणीय विधा रही है।[4] जिस प्रकार 'साहित्य अथवा कविता' को परिभाषित करने के अनेक प्रयत्न देश विदेश म किए गये हैं, किन्तु कोई भी एक परिभाषा सम्पूर्णत स्वीकृत नही हुई उसी प्रकार 'उपन्यास' की भी अनेक परिभाषाए अनेक विद्वानो ने दी हैं किन्तु कोई भी एक परिभाषा उपन्यास के सब पहलुओ को सीमाबद्ध नही करती। उपन्यास के सम्बध म भारतीय एव पाश्चात्य विद्वानो की परिभाषाए हम इस प्रकार से देख सकते है।

राल्फ फाक्स ने उपन्यास के सम्बन्ध मे कहा है कि मानव जीवन की विविध सर्वांगीण अभिव्यक्ति उपन्यासो म ही सभव है। उपन्यास केवल गद्य लिखी हुई कथा ही नही है। उसने उसे मानव जीवन का गद्य माना है।[5] वाल्टर एलन का कहना है कि महान उपन्यासो मे महान चरित्रो का रहना अनिवार्य है। बिना महान् चरित्रो के कोई महान उपन्यास नही हो सकता।[6] जार्ज मूर के विचार से, 'उपन्यास समकालीन इतिहास के सिवाय और कुछ नही है। जिस युग मे हम

---

१ जनेन्द्र और उनके उपन्यास, पृ० ३
२ आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास पृ० २०-२१
३ आलोचना (श्रीपतराय का लेख) (७), पृ० ६६
४ आर्टेफ टी० सिप्ल डिक्शनरी आफ नावेल, पृ० २०३
५ राल्फ फाक्स, दि नावेल एण्ड दी पीपुल, पृ० २५
६ वाल्टर एलन, दि इगलिश नावेल, पृ० १५

जी रहे हैं, वह उसके सामाजिक परिवेश का बिलकुल पूर्ण और सही-सही पूर्व निर्माण है।'[1] बाबू श्यामसुन्दर दास की परिभाषा—'उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।'[2] उपन्यासकार प्रेमचन्द ने उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार की है—मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ।'[3] हेनरी जेम्स उपन्यास को जीवन का संघर्षमय चित्र मानते हैं। डा० मूलर के शब्द 'उपन्यास मूलतः मानवीय अनुभव का निरूपण है, चाहे वह यथार्थ हो अथवा आदर्श और इस प्रकार उपन्यास में अनिवार्यतः जीवन की आलोचना रहती है।'[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी उपन्यास लेखन के प्रारंभिक दिनों में अपना मत व्यक्त किया था—'मानव-जीवन के अनेक रूपों का परिचय कराना उपन्यास का काम है। यह उन सूक्ष्म घटनाओं को प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न करता है जिनमें मनुष्य का जीवन बनता है और जो इतिहास आदि की पहुँच के बाहर है।'[4] उपन्यास की काव्यमय व्याख्या करते हुए डी० एच० लारेंस कहते हैं कि—'उपन्यास जीवन की एक उज्ज्वल पुस्तक है। पुस्तकें जीवन नहीं हैं, वे सिर्फ हवा में थरथराहट पैदा करती है, लेकिन उपन्यास एक ऐसी थरथराहट है जो समूचे जीवित मनुष्य को कंपा सकती है। कविता, दर्शन, विज्ञान या किसी भी पुस्तक की थरथराहट से कहीं ज्यादा जबरदस्त उपन्यास की थरथराहट है।'[5] गद्य साहित्य में उपन्यास की महत्ता का मुक्त कंठ से स्वीकारते हुए डॉ० देवीप्रसाद गुप्त ने लिखा है कि—'गद्ययुग का महाकाव्य उपन्यास है।'[7] स्पष्ट है कि भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने उपन्यास के संदर्भ में अपने युग से प्रभावित होकर इसके विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में अपने मंतव्य प्रस्तुत किये हैं। सुषमा प्रियदर्शिनी ने प्रस्तुत परिभाषा में उपन्यास की सभी विशेषताओं को समेटने की चेष्टा की है, 'उपन्यास वैयक्तिक दृष्टि से वास्तवाभासी कल्पित कथा पात्रों को लेकर जीवन के एकांगी या बहुरंगी गतिशील यथार्थ को अंकित करने में नित्य नवल रूप धारण करने में समर्थ, अपेक्षतया बड़े आकार का रोचक वर्णनात्मक गद्य रूप है।'[8]

---

१ एडवर्ड वेनेवेबीट, कैवलकेड आफ इंगलिश नावेल, पृ० २०
२ बाबू श्यामसुन्दरदास, साहित्यालोचन, पृ० १८०
३ प्रेमचन्द, कुछ विचार, पृ० ३८
४ जैनेन्द्र और उनके उपन्यास,
५ पूर्वग्रह ४६ ४७ उपन्यास अंक, पृ०५ (नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १५, जुलाई १५, १९१० में प्रकाशित लेख का पुनः प्रकाशन)
६ वही पृ० १
७ डॉ० देवीप्रसाद गुप्त, साहित्य सिद्धांत और समालोचना, पृ० २११
८ सुषमा प्रियदर्शिनी (सं०), हिन्दी उपन्यास, पृ० ८३

हिन्दी उपन्यास विकासात्मक परिप्रेक्ष्य

सन १८८ से हिन्दी उपन्यास साहित्य का प्रारम्भ माना जाता है। उपन्यास रचना शैली के विकास का आज एक शताब्दी हो चुकी है। सन १८८२ से लेकर १९१८ का काल हिन्दी उपन्यास की प्रथमावस्था का काल था। इस समय म हिन्दी उपन्यास भाँति भाँति के प्रयोगो के माध्यम से अपनी अलग पहचान बनाने मे लगा रहा। उपन्यास की रचना शैली मे निरन्तर परिवर्तन परिलक्षित होते रहे हैं। एक समय तक ऐसा समझा जाता था कि हिन्दी के उपन्यासकार की चेतना केवल मनोरंजन ही को मुख्य उद्देश्य मानती है। सन् १९१८ हिन्दी उपन्यास के लिए सवश्रेष्ठ माना जा सकता है क्योकि इसी वर्ष मुंशी प्रेमचन्द के प्रथम हिन्दी उपन्यास 'सेवा सदन' का प्रकाशन हुआ और हिन्दी उपन्यास जीवन तथा समाज के यथार्थ स्वरूप एवं मानवीय संवेदनाओ के चित्रण का माध्यम बना।'[1] प्रेमचन्द ने अनुभव के वजर को तोडकर जीवन के छोरो को छुए बिना ऊपर से भागी जा रही कथाओ का जीवन स जोडकर एक प्रामाणिक, विश्वसनीय और सार्थक कथा संसार रचा।[2] प्रेमचन्द हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार हैं जिनकी रचनाएँ 'उपन्यास' की कसौटी पर पूरी तरह से खरी उतरती हैं। उपन्यासकार के रूप मे प्रेमचन्द की सवप्रमुख विशेषता यह है कि उन्होने समकालीन यथार्थ को बहुत कलापूर्ण ढग से कथा साहित्य म जोड दिया।[3] समसामयिक यथार्थ को बहुत ही कलापूर्ण प्रामाणिक, विश्वसनीय एव सार्थक रूप से कथा सूत्र मे पिरोने वाले वे प्रथम हिन्दी उपन्यासकार थे।[4] 'प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यासो को एक सवथा नवीन दिशा प्रदान की और उसे शैशव अवस्था से निकालकर प्रगति और विकास की ओर दिशा मुख किया, अत इन्ही के आधार पर काल विभाजन तर्कसंगत माना जाता है।'[5]

हिन्दी उपन्यास का काल विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) प्रेमचन्द पूर्ववर्ती युग	(१८८२ से १९१८ तक)
(२) प्रेमचन्द युग	(१९१८ से १९३६ तक)
(३) प्रेमचन्दोत्तर युग	(१९३६ से १९५० तक)
(४) समकालीन युग	(१९५० से आज तक)

---

१ बुलाकी शर्मा मनोविज्ञानिक पर आधारित उपन्यास (टंकित), पृ० ५

२ डा० रवीप्रसाद गुप्त प्रेमचन्द का अवधारणात्मक (लेख) परिप्रेक्ष्य, वातायन पृ० ११५

३ डा० गोपाल प्रेमचन्द के उपन्यास (लेख), वातायन (वर्ष १६, अंक १० प्रेमचन्द अंक) पृ० २८

४ बाल मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास, पृ० ६

५ डॉ० सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ, पृ० १८

प्रेमचन्द पूर्ववर्ती युग

हिंदी मे कहानियों की नियमित परम्परा उन्नीसवी शताब्दी से नजर आने लगी थी। पहले इन कहानियों मे मौलिकता, विश्वसनीयता और कलात्मकता का पूर्णरूप से अभाव था। तत्पश्चात हिंदी उपन्यास लेखन का क्रम सन १८०० के लगभग प्रारम्भ हुआ। उस समय तक उपन्यास और कहानी के अंतर की स्पष्ट रेखाएं भी नही उभर सकी थी। अत उस समय की कहानी के सीमा क्षेत्र मे ही उपन्यास भी समाहित था। य कथाएं पौराणिक आख्यानो पर आधारित हैं और कथाकार रागात्मक कल्पनाओ से प्रेरित हैं। इस समय हिंदी गद्य के रचनाक्रम मे हमे तीन महत्त्वपूर्ण ग्रथ मिलते हैं। पहला लल्लूलाल का 'प्रेम सागर' (१८०३) दूसरा सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' और तीसरा सयद इशाअल्ला खाँ की (१८०३) 'रानी केतकी की कहानी' (१८०० से १८१० बीच) 'रानी केतकी की कहानी' मौलिक रचना मानी जाती है। प्राय सब पात्र उच्च मध्यवर्गीय है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि— यह कहानी मुस्लिम परम्परा की अंतिम कहानी है।'[1] श्री बुलाकी शर्मा का मत है कि रानी केतकी की कहानी, कहानी और उपन्यास दोनो ही कसौटी पर खरी नही उतरती।[2] हिंदी का प्रथम उपन्यास किसे माना जाए ? इस सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। रामचन्द्र शुक्ल प्रमति आलोचक लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरू' को हिंदी का प्रथम मौलिक एव नये शिल्प मे ढला आधुनिक उपन्यास मानते है। जिसका प्रकाशन सन् १८८२ म हुआ था। डा० माताप्रसाद गुप्त का मत इनसे भिन्न है। उनका कहना है—'हिंदी का पहला उपन्यास 'परीक्षा गुरू' (१८८४ द्वि० स०) माना जाता ह, किन्तु यह धारणा ठीक नही हैं, क्योंकि १८७१ स भी पूर्व उपन्यास रचना के प्रमाण मिलते हैं। इस प्रकार का पहला उपन्यास जिसका उल्लेख मिलता ह—'मनोहर उपन्यास' (१८७१) है जिसके सम्पादक हैं— सदानन्द मिश्र तथा शम्भुनाथ मिश्र। लेखक का नाम नही दिया हुआ ह, किन्तु यह अनुवाद ज्ञात नही होता, क्योंकि यह सम्पादको द्वारा केवल 'सग्रहीत और सशोधित' कहा गया ह। इसकी कथावस्तु के सम्बन्ध मे कोई भी सकेत नही है, *यह अवश्य खेदजनक है।'*[3]

हिंदी के प्रथम उपन्यास के सम्बन्ध मे विचार करें तो हमारे सामने इनके अतिरिक्त और भी रचनाएं सामने आती हैं। इनमे प० गौरीदत्त लिखित 'देवरानी जेठानी की कहानी' (१८७०) मुशी ईश्वरी प्रसाद मुदर्रिस रियाजी' और मुशी कल्याणराव मुदर्रिस अव्वल द्वारा लिखित 'वामा शिक्षक' और दो

---

१ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य

२ बुलाकी शर्मा, वास मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास (टकित), पृ० ६

३ डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिंदी पुस्तक साहित्य, पृ० ३४

भाई और चार बहनो की कहानी' (१८७२) प० श्रद्धाराम फिल्लौरी लिखित 'भाग्यवती' (१८७७) आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। अन्तत सन १८८२ मे प्रकाशित लाला श्रीनिवासदास के उपन्यास 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास स्वीकार किया गया है।[1] 'परीक्षा गुरू' के निवेदन मे कहा गया है कि—'अपनी भाषा मे यह नयी चाल की पुस्तक होगी।'[2] 'परीक्षा गुरू' अपने समकालीन मध्यम वर्ग समाज और देश दशा का विस्तृत परिचय देता है।[3]

उन्नीसवी शताब्दी मे हिन्दी साहित्य मे मौलिक-अमौलिक उपन्यास लिखे गये परन्तु अधिकाश उपन्यासो का उद्देश्य सिर्फ पाठक का मनोरजन करना था। कुछ सामाजिक शिक्षाप्रद उपन्यास भी लिखे गये लेकिन वे मनोरजक उपन्यासो के आगे पसन्द नही किये गये। लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरू' के पश्चात सामाजिक प्रश्नो को लेकर लिखित बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी, 'सौ अजान एक सुजान' राधाकृष्ण के निस्सहाय हिन्दु' राधाकृष्ण गोस्वामी के विधवा विपत्ति मेहता लज्जाराम शर्मा के 'स्वतत्र रमा और परतत्र लक्ष्मी', 'हिन्दु गहस्थ' आदि उल्लेखनीय है। सन १८८८ मे ठाकुर जगमोहनसिंह ने आदश प्रम का चित्रित करने वाली गद्य पद्य मिश्रित कथा कृति 'श्याम स्वप्न' की रचना की। लेखक ने इसे उपन्यास माना लेकिन आज का आलोचक इसे उपन्यास कहना उचित नही मानता ह।

हिन्दी उपन्यास के आरभिक काल मे सामाजिक शिक्षाप्रद उपन्यासो को उतनी लोकप्रियता नही मिली जितनी की तिलस्मी ऐय्यारी और जासूसी उपन्यासो को मिली। हिन्दी उपन्यास के उस प्रारम्भिक युग म पाठको की रुचि निर्माण इ ही उपन्यासो ने किया। केवल जनरुचि को सन्तुष्ट करने के उद्देश्य स काशी से व्यवसायी वर्ग के श्री देवकीनन्दन खत्री ने १८८१ ई० म हिन्दी में एक नय ढग के उपन्यासो की परम्परा चलायी, जिसे तिलस्मी और ऐयारी उपन्यास कहा जाता है। इसके अन्तगत श्री खत्री ने चन्द्रकाता (४ भाग) चन्द्रकाता सतति (२४ भाग) और भूतनाथ' जिसे श्री देवकीनन्दन खत्री के पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री न सपूण किया। गोपालराम गहमरी ने जासूसी और अपराध सबधी उपन्यास सन १९०० मे जासूस नामक पत्रिका म लिखे जिसमे उनकी अनेक जासूसी और अपराधविषयक कथाएँ प्रकाशित हुई। किशोरीलाल गोस्वामी ने

१ (क) रामचद्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४१०
(ख) डॉ० श्रीकृष्ण लाल श्रीनिवास ग्रथावली, पृ० ११
(ग) डॉ० प्रतापनारायण, हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास, प० ३२
(घ) महेन्द्र चतुर्वेदी हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, पृ० १६
२ लाला श्रीनिवासदास, परीक्षा गुरू
३ डॉ० बेचन, आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ० ५४

भी तिलस्मी, ऐय्यारी, ऐतिहासिक, सामाजिक और जासूसी उपन्यास लिखने की क्षमता पाठको के सामने प्रस्तुत की। शुक्ल जी कहते हैं कि—'इनके उपन्यासो मे समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओ के रूप, चित्राकर्षण वर्णन और थोडा बहुत चरित्र चित्रण भी अवश्य पाया जाता है।'[1] उन्होने प्रणयिनी परिणय, हृदयहारिणी, आदर्श रमणी, लीलावती आदि उपन्यास लिखे। गोस्वामी जी ने सन् १८९८ मे 'उपन्यास' नामक मासिक पत्रिका निकाली जिसमे उनके ६५ छोटे बड़े उपन्यास प्रकाशित हुए। किशोरीलाल गोस्वामी ने भावी पीढ़ी के उपन्यासकारो के लिए मार्ग दिखाया है।[2] उन्हें हिन्दी मे ऐतिहासिक रोमांसो का जन्मदाता माना जा सकता है।[3] अतिरंजनाओ के बावजूद जीवन और समाज के कतिपय यथार्थ चित्रण गोस्वामी जी की रचनाओ के द्वारा प्रस्तुत हो सके हैं।

'प्रेमचद से पूर्वकालीन उपन्यासो मे चरित्रो के विकास या उत्थान पतन की ओर बिल्कुल ध्यान नही दिया जाता था, वे सिर्फ मनोरंजक तत्त्वो की ओर ध्यान रखते थे।'[4] प्रेमचद से पूर्व हिन्दी उपन्यास प्रधान रूप से अद्भुत, अलौकिक घटना व्यापारो मे विस्मय विमुग्ध सा उलझा रहा है।[5] प्रेमचद के हिन्दी क्षेत्र मे पदार्पण करने से पूर्व हिन्दी उपन्यासो का मूल उद्देश्य या तो जनता का मनोविनोद था अथवा जनता का सुधार।[6] ऐसी अनिश्चितता की अवस्था मे प्रेमचद ने मार्ग प्रशस्त किया। एक कुशल कलाकार की भाति उन्होने समस्त [illegible] को कांट-छांटकर उपन्यास के लिए सुदर राजमार्ग तैयार कर दिया।[7]

प्रेमचन्द युग

'प्रेमचद का आरभ हिन्दी उपन्यास मे नये युग का [illegible] है। वरन् वास्तविक अर्थ मे उपन्यास-युग आरभ होता है।'[8] [illegible] झोंपडियो मे पुआलों पर पडी तडपती हुई भारतीय [illegible] मे सरस तथा स्वाभाविक यौवन के सौन्दर्य का [illegible] चक्की मे पिसने वाले दीन जनो मे भी [illegible]

१ आलोचना (उपन्यास अक), पृ० ३०
२ डॉ० कृष्णनाग, किशोरीलाल [illegible] विवेचन
आजकल (उपन्यास) [illegible]
४ बाल मनोविज्ञान पर [illegible]
५ डॉ० [illegible]
६ डॉ० [illegible]
७ डॉ० [illegible]
८ डॉ० [illegible]
९. डॉ० [illegible]

नाम से प्रेमचद का पहला उपन्यास प्रकाशित हुआ। प्रेमचद के अपने उपन्यासो के द्वारा एक युगात उपस्थित हुआ। उन्होने दैनिक जीवन की छोटी छोटी घटनाओ और प्रसगो मे माध्यम से बड़ी-बड़ी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओ का मानव की सहज प्रतिक्रिया का पुट देकर रोचक किस्सा गोई म प्रस्तुत किया जो पाठको को तृप्त करने म सक्षम सिद्ध हुई।[1] प्रेमचद ने उपदेशात्मकता का, कही व्यग्यात्मकता का आश्रय लिया है।[2] उन्होने भारतीय जन जीवन-परिवेश और वास्तविकता को नजदीकी से देखा, भोगा और उन्ह अपनी रचनाओ मे उतारा। 'वस्तुत प्रेमचन्द युग म प्रेमचद के साथ-साथ उपन्यास साहित्य मे जो समान सापेक्षता आयी, वह उनकी सबसे बड़ी देन है।'[3] उन्होने जीवन की सच्चाई का आवा, शोषण के खिलाफ सघर्ष किया। डॉ० रामविलास ने कितना सही कहा है—'प्रेमचद का साहित्य बीसवी सदी के हिन्दुस्तान का सच्चा साहित्य है।'[4]

प्रेमचद के समकालीन उपन्यासकारो म सर्वश्री जयशकर प्रसाद, वृन्दावनलाल, निराला, भगवती प्रसाद वाजपेयी, विश्वम्भरनाथ कौशिक, पाडेय बेचन शर्मा उग्र, प्रतापनारायण श्रीवास्तव के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं।

प्रेमचदोत्तर युग

सन् १९४७ मे भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। हिन्दुस्तान बगाल और पाकिस्तान मे विभक्त हो गया। इससे न केवल देश बटा बल्कि सस्कृति, सभ्यता और आर्थिक स्थिति भी बदल गयी। जिसके फलस्वरूप दोनो राष्ट्रो म भयकर बेरोजगारी, गरीबी, कामासक्ता और बर्बरता बढने लगी, जो अभी भी मौजूद है। स्पष्टत लेखक भी इससे अछूता नही रह सकता था, क्योकि वह अन्तत एक सामाजिक प्राणी है, जिस पर परिस्थिति की प्रतिक्रिया होती है। प्रेमचद के पूर्ववर्ती तथा प्रमचद युगीन उपन्यासो मे जिन समस्याओ को अकित किया गया था वे प्रेमचन्दोत्तर काल मे नवीन रूप म विस्तार के साथ प्रस्तुत की गई। इस काल म मनोविश्लेषण तथा यथार्थवाद की प्रवृत्तियाँ प्रधान रूप से मिलती है। इसमें मनोविज्ञान, सास्कृतिक, आर्थिक, वैयक्तिक सामाजिक सभी समस्याए विस्तार से मिलती हैं। प्रेमचद के पश्चात के उपन्यासकारो न पुरुष और नारी के शारीरिक सबधो को सामाजिक तथा नैतिक दायरे तक सीमित न रखकर उसे मानव की सहज प्रवृत्ति के रूप मे ग्रहण किया है। जैसे यशपाल ने सबम

---

१ कुलाश्री शर्मा, बाल मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास, पृ० १०
२ राजेश्वर गुरु प्रेमचद एक अध्ययन, पृ० ११९
३ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, पृ० ५१
४ डॉ० रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, पृ० १५८

और रोटी की आड मे रोमास और प्रणय के उद्दाम रूप को अपने उपन्यासो मे वर्ण्य विषय बनाया है। डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं—'यशपाल के पात्र जन जीवन के प्रतिनिधि नही है वे उस वर्ग के लोग हैं, जिनके लिए सैक्स और आत्म पीडा की समस्याएँ प्रधान हैं।'[१] प्रेमचदोत्तर काल मे मनोविज्ञान का विषय प्रेमचद के काल से अधिक गहरे स्तर तक उभरा है। पात्रो की टूटन, यौन कुण्ठा, चेतना, प्रवाह, प्रकनवाद, तज्जन्य स्वप्न तथा प्रतीकात्मकता का प्रभाव कमोवेश इन उपन्यासो में ज्यादातर मुखर हुआ है। इस युग मे पारम्परिक विषयों और शैली दोनो के प्रति लेखको ने विद्रोह किया है। 'इस दौरान मे समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो का सृजन हुआ।'[२] उपन्यास के इस युग में नयी भूमिका का अन्वेषण किया, नये प्रयोग किये, मानव सत्यो को पकडने के लिए नयी दिशाओ में कदम उठाया। इस युग के प्रमुख उपन्यासकारो में भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, इलाचद्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, रागेय राघव, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृतराय, विष्णु प्रभाकर धर्मवीर भारती, प्रभुदयाल सक्सेना आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

समकालीन औपन्यासिक सरचना

'प्रेमचद के पश्चात हिन्दी उपन्यास पर किसी एक लेखक का प्रभाव न होने से और विभिन्न व्यक्तिगत सफल प्रयोग होने के कारण सन् १९३६ स १९५० के युग का प्रेमचदोत्तर युग या प्रयोग काल की सज्ञा दी गई है। शेष १९५० से आज तक का युग समकालीन युग के नाम से पुकारा जाता है।'[३] इस युग के वैज्ञानिक चितन के परिप्रेक्ष्य मे व्यक्तिवाद का विकास हुआ। व्यक्तिवादियो ने व्यक्ति को लक्ष्य और समाज के निमित्त बनाने वाली विचारधारा को अपनाया। स्वाधीन भारत के हिन्दी उपन्यासो मे व्यक्ति साधन और समाज साध्य की विचारधारा के रूप म उत्तरोत्तर निरूपण हुआ है। नव चेतना विकासजनित स्वातन्त्र्य भावना स स्त्री पुरुष मे पारस्परिक स्पर्द्धा का स्फुटन हुआ है।'[४] हिन्दी के उपन्यास प्राय स्वातन्त्र्य-सघर्ष की पृष्ठभूमि को लेकर लिखे गये किन्तु स्वतन्त्रताजन्य परिस्थितियो मे जिस समृद्ध जीवन की साहित्यकार परिकल्पना करता था, वह यथार्थ के सम्मुख सफलीभूत नही हो सकी। उसे आज जो

१ डॉ० रामविलास शर्मा प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृ० ११९

२ और इसान मर गया, पृ० ६

३ कमल कुमार जौहरी, हिन्दी के स्वच्छदतावादी उपन्यास, पृ० ४५८

४ डा० हेमेन्द्र पानेरी, स्वातन्त्र्य हिन्दी उपन्यासो मे मूल्य सक्रमण, प० १४६-१४७

सामाजिक जीवन निर्णायी पड़ता है, 'वह है व्यापक भ्रष्टाचार, चतुर्दिक नैतिक पतन, राष्ट्र जीवन का सम्पूर्ण विघटन आदि।'[1] यह काल उपन्यासो की संख्या शिल्प की दृष्टि से पुष्कल विकास का युग रहा। आकार सौष्ठव और अनुभव की गहराई प्राप्त करने के ध्येय से अनेक प्रयोग इस काल मे किये गये।[2] इला चन्द्र जोशी, अज्ञेय, जनेन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित वैयक्तिक उपन्यास तथा नागार्जुन, रेणु, यज्ञदत्त आदि द्वारा पुनर्जीवित सामाजिक उपन्यास दो प्रकार की सशक्त धाराएं एक साथ इस युग म प्रवाहित हुई। इन साहित्यिक भूमिकाओ तथा स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् विकसित सामाजिक मनोवृत्तियो के परिवेश में उपन्यास को पर्याप्त सामाजिक व्यापकता और मनोवज्ञानिक गहनता अर्जित करने का सुयोग प्राप्त हुआ। आधुनिक बोध को लेकर आगे आने वाले लेखकों में राजेन्द्र यादव, नागार्जुन, रेणु नरेश मेहता आदि प्रमुख हैं। १९६० के पश्चात् हिन्दी उपन्यास क्षेत्र के प्रमुख लेखक हैं—कमलेश्वर, मोहन राकेश, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, निमल वर्मा, हिमाशु जोशी, राजेन्द्र अवस्थी, शलेश मटियानी, राही मासूम रजा, मन्नू भण्डारी, श्रीलाल शुक्ल, शानी, उषा प्रियवदा, शिवानी, मनोहर श्याम जोशी आदि की रचनाए समकालीन भाव बोध की रचनाएँ हैं। वतमान की कथा राजनीतिक प्रचारवादिता का बयान, गरीबी और आजीविका का प्रश्न, ग्रामीण जनता म शक्षिक और सांस्कृतिक चेतना का प्रश्न तथा यथाथ के नये कदमो को अभिव्यक्त करने म लेखकीय प्रतिभा अनुभव की प्रामाणिकता को लेकर आगे बढी है।[3] इस युग की कृतियो मे व्यवस्था का एक विक्षिप्ततापूर्ण विरोध मिलता है और विकृतियो, उन्मादपूर्ण, विक्षोभ, अति रजकवाद तथा वहशीपन, आतंक आदि इस काल की प्रधान विशेषताए हैं।[4]

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासो मे राजनीतिक चेतना का स्वरूप

हिन्दी उपन्यासो की रचना का यथार्थवादी युग प्रेमचद से ही शुरू होता है। हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासो मे राजनीतिक दृष्टिकोण सवथा वाछित विषय था। स्वतत्रता के पश्चात राजनीतिक उपन्यासो की विपुल परिमाण मे रचना हुई लेकिन आलोचको का मत है कि उस समय हिन्दी मे राजनीतिक उपन्यासो

१ डा० महेन्द्र चतुर्वेदी हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, पृ० १८०
२ शिवदानसिंह हिन्दी उपन्यास के अस्सी वर्ष पृ० १०६ १०७
३ डा० ज्ञानचन्द गुप्त, हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, पृ० २९८
४ डॉ० विजय मोहनसिंह, आधुनिक उपन्यास मे प्रेम की परिकल्पना, पृ० ३८२

की कोई सुव्यवस्थित परम्परा नही थी। प्रेमचद के पूववर्ती उपन्यासो मे राजनीतिक चर्चा प्राय नही के बराबर थी और अग्रेजी शासन काल मे यह सभव भी नही था। प्रेमचद ही प्रथम उपन्यासकार थे, जिन्होने राजनीतिक पष्ठभूमि पर उपन्यासो की सरचना की।

राजनीतिक उपन्यास की परिभाषा अभी तक निर्धारित न होने का कारण यही है कि आलोचक व इतिहासकार उसका पृथक रूप से अस्तित्व मानने मे हिचकते रहे हैं। राजनीतिक प्रभाव को दष्टिगत रख कर ही किसी उपन्यास को 'राजनीतिक उपन्यास' की सज्ञा देना सर्वथा उपयुक्त है। ऐसे राजनीतिक उपन्यासो मे सम सामयिक राजनीतिक घटनाओ, राजनीतिक पात्रा अथवा राजनीतिक सिद्धातो का प्राधान्य एव अकन रहता है। हिन्दी मे राजनीतिक उपन्यास का जन्म परिस्थितिजन्य है, जो सामाजिक उपन्यास की परिसीमा से आगे बढ़ा हुआ एक साहसिक कथा प्रयास कहा जा सकता है। हिन्दी उपन्यास का शैशव अति क्षीण सामाजिक एव राजनीतिक वातावरण मे आरभ हुआ था। प्रेमचद का 'प्रेमाश्रम' उपन्यास हिन्दी का प्रथम राजनीतिक उपन्यास माना जाता है। 'रगभूमि' 'कमभूमि' मे गाधीजी के आन्दोलना का वणन मिलता है। सियारामशरण गुप्त ने 'गोदें' 'नारी' और 'अतिम आकाक्षा' उपन्यास मे गाधी वाद के तात्विक स्वरूप को ग्रहण कर उसके सत्य और अहिंसा का प्रतिष्ठापन कर हृदय परिवर्तन से सामाजिक सुधार की परिकल्पना की है। जैनेन्द्र के सुनीता' 'सुखदा' 'विवर्त' आदि उपन्यासो मे गाधीवाद को बौद्धिक रूप से स्वीकार किया गया है। गादान' म मजदूर आन्दोलन और समाजवादी चेतना का वणन किया गया है। यशपाल ने दादा कामरेड, दशद्रोही, पार्टी कामरेड' मनुष्य का सच, झूठा सच आदि राजनीतिक उपन्यासा की सरचना की। सन् १६६० के पश्चात् राजनीतिक विषयो पर जा प्रमुख उपन्यास लिखे गये, उनका परिचयात्मक विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

एक और मुख्यमत्री (१६६६)

श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' रचित 'एक और मुख्यमत्री' मे स्वतत्रता के पश्चात् देश की राजनीति के विघटनशील परिवेश और पतनशील नतृत्व का यथाथ चित्र अकित किया गया है। कथाकार ने हमारे बदलते हुए समाज को पेश किया है, जिसका मूल आधार राजनीति है। हमारा आज का सामाजिक जीवन वसे ही राजनीतिक प्रधान हो गया है, पर इसमे तो मूलत वे ही पात्र उठाए गए है जो पूरी तरह राजनीति मे डूबे हुए हैं।[1] प्रस्तुत उपन्यास मे स्वाथपरता, भ्रष्टाचार, दल-बदलू, धूत्तता एव खोखले आदर्शों से युक्त राजनीतिक

१ नया शिक्षक, अक्टूबर-दिसम्बर १६७२, पृ० ३२६

स्वरूप का प्रस्तुत करने मे लेखक पूर्णतया सफल रहा है। उपन्यास का नायक अरविंद मध्यमवर्गीय परिवार का सुशिक्षित महत्वाकांक्षी युवक है। उसकी महत्वाकांक्षा ही उसे राजनीतिक क्षेत्र की ओर खीच ले जाती है। और वह आज के राजनीतिज्ञो की भांति हथकण्डे अपनाता हुआ प्रदेश का मुख्यमत्री भी बन जाता है और अपने पद का खुलकर दुरुपयोग करता है। वह शासन की प्रत्येक व्यवस्था को अपने कब्जे मे करने मे लग जाता है। शची, सत्या आदि न जाने कितनी सामाजिक एव राजनीतिक क्षेत्र म कार्यरत नारियो से उसके अनैतिक सबध हैं। यह अनैतिकता वर्तमान सामाजिक माहौल म आम बात बन चुकी है। वह शची को मुख्यमत्री बना देता है। शची के मुख्यमत्री बनने से अरविंद की शक्ति कम हो जाती है। विरोधी पक्ष का भय उसके मन म इतनी गहराई से उतर जाता है कि वह मानसिक रोगी बन जाता है और आत्म हत्या कर अपने राजनीतिक जीवन को समाप्त कर लेता है। रत्नलाल शर्मा का कहना है कि इस उपन्यास म यथार्थ जीवन का चित्रण है कल्पना सिर्फ इस बात को सजाने की है। कथाकार की पकड बडी मजबूत और उसकी दृष्टि सूक्ष्म है।'[1]

सबहि नचावत राम गोसाई (१९७०)

भगवती चरण वर्मा के उपन्यास 'सबहि नचावत राम गोसाइ' मे सामाजिक और राजनीतिक जीवन के परिवेश के अतिरिक्त स्वतत्र भारत की सच्ची और यथार्थपूर्ण तस्वीर प्रस्तुत की गई है। इस उपन्यास मे उनकी अपनी पुरानी किस्सागोई ही अपने फार्म म लौटती नही दिखती वरन एक अच्छे व्यग्य लेखक के रूप मे भी उभरते दीखते हैं। इस उपन्यास मे स्वतत्र भारत की जीवन धारा के दो पहलुओ का विशेष रूप से उदघाटन किया गया है। एक तरफ पूजीपति वर्ग के विकास का वर्णन है तो दूसरी तरफ नेता और मत्रियो के उदय का। आधुनिक युग म हमारी आज की भारतीय जिन्दगी भी इतनी विसगतियो से भरी है कि इसका साक्षात्कार व्यग्य दृष्टि अपनाये बिना शायद किया ही नही जा सकता। हमारा समसामयिक जीवन इतनी निराशा, कुठा और तनाव से भरा हुआ है कि उस पर व्यग्य के अतिरिक्त और किसी चोट का कदाचित कोई असर नही पड सकता। भगवती बाबू के पास यह व्यग्य दृष्टि है। उनके किसी भी पूर्ववर्ती उपन्यास मे व्यग्य प्रभावशाली रूप मे नही उभर पाया है। 'सबहि नचावत राम गुसाई इस दृष्टि से रोचक और पठनीय उपन्यास है।'[2]

---

१ रत्नलाल शर्मा समाज कल्याण, अतिम पृष्ठ से उद्धृत

२ डॉ० गोपालराय, समीक्षा, जुलाई १९७०, पृ० २-

काली आंधी (१९७४)

श्री कमलेश्वर कृत 'काली आंधी' उपन्यास मे कमलेश्वर ने इस उपन्यास मे यह उद्घाटित करने का प्रयास किया है कि स्वतन्त्रता से पहले भारतीय नारी के साथ एक बहुत ही प्राचीन मूल्य जुडा हुआ था, वह था पति की सेवा करना और बच्चो की देखभाल करना। यही सनातन काल से स्त्री का धर्म माना जाता था। स्वतन्त्रता के बाद इस पर प्रहार किया जाने लगा, जिसके फलस्वरूप नारी घर से बाहर राजनीतिक क्षेत्र मे आई और विपरीत परिस्थितियो का सामना कर समाज मे अपना स्थान बनाया। आधुनिक नारी की इसी गाथा को कमलेश्वर ने 'काली आंधी' मे चित्रित किया है। नारी के इस द्वन्द्व का लेखक ने मार्मिक चित्रण किया है। आज की भ्रष्ट राजनीति की ओर भी लेखक ने सकेत किया। यह उपन्यास नये परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करता है क्योकि इसका कथानक देश की ऐसी समसामयिक राजनीति से प्रभावित है जिसमें नैतिक मूल्यो का ह्रास हुआ और भ्रष्टाचार पनपा। राजनीति में चलने वाली उठक पटक को पूरी जीवतता के साथ 'काली आंधी' के पात्रो ने जिया है। ईमानदारी से कही गई यह कहानी यथार्थ के इतने नजदीक है कि पाठक आद्योपात इसका रस लेता है। इस उपन्यास पर फिल्म भी बन चुकी है, यह इसकी लोकप्रियता का एक और प्रमाण है।[1]

राग दरबारी (१९७५)

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग दरबारी' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। व्यग्य शैली मे लिखे इस उपन्यास में आज की राजनीति के क्रूर एव घृणित पक्षो को बडी ईमानदारी से लेखक ने उजागर किया है। इस उपन्यास के सम्बन्ध मे डा० लक्ष्मीनारायण दुबे लिखते हैं कि—'श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'राग दरबारी' रचना हिन्दुस्तान के गावो की हालत, इस दुनिया की पुलिस, थानो, अफसरो, स्कूलो, विद्यार्थियो, प्राचार्यों, ग्राम के राजनीतिज्ञो और उनके चगुल मे पडी सहकारी सस्थाओ सबके घृणित कारनामो एव पक्षो को बडी ईमानदारी के साथ उभारती है।'[2] हिन्दी उपन्यास परम्परा मे 'राग-दरबारी' पहली रचना है जिसमे व्यग्य को इतने विस्तृत फलक पर रचा गया हो। यह परम्परागत हिन्दी के औपन्यासिक शैली मे एक नया प्रयोग है और यही इसकी निजता एव वैशिष्ट्य भी है।

---

१ कमलेश्वर—काली आंधी, मुख पृ० से उद्धृत,

२ डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे—मधुमती, अप्रैल ८२, पृ० ४६

कटरा बी आर्जू (१९७८)

राही मासूम रजा के उपन्यास 'कटरा बी आर्जू' में आपातकाल और उसके अन्त की पृष्ठभूमि को अंकित किया गया है। 'कटरा बी आर्जू' आज के राजनीतिक जीवन की मार्मिक गाथा है। आपातकाल में सामान्य जनता पर किए गये अमानवीय अत्याचार, विरोधी स्वर को दबाने के लिए दमनपूर्ण नीति, नगरों की खूबसूरती के नाम पर बर्बर ज्यादतियाँ, जबरदस्ती नसबंदी और परिवार नियोजन के नाम पर अफसरों में इनाम की लूट खसोट आदि का राही मासूम रजा ने 'कटरा बी आर्जू' में यथार्थ चित्र खींचा है। इस उपन्यास में पाठक के समक्ष आपातकाल का वीभत्स एवं भयावह स्वरूप चलचित्र की भाँति उजागर हो जाता है जिसका असर उसके दिमाग पर अमिट रहता है। इसमें छोटे तबके और निम्नवर्गीय समाज के पात्रों को प्रस्तुत किया गया है। मानवीय संवेदनाओं, परस्पर प्यार एवं सहानुभूति, आकांक्षाओं और छोटी-बड़ी आर्जुओं एवं स्वप्निल संसार में विचरते और साथ ही अभावों से भरी जिन्दगी जीते इस समाज का राही ने मार्मिक अंकन किया है। 'यह आपातकाल और उसके बाद की राजनीतिक स्थिति पर करारा व्यंग्य है जिसका जोड़ मिलना मुश्किल है। इस व्यंग्य की धारा ने कटरा बी आर्जू' को महत्त्वपूर्ण दस्तावेज बना दिया है।'[1]

महाभोज (१९७९)

मन्नू भण्डारी के उपन्यास 'महाभोज' में आपातकाल के बाद कांग्रेस की पराजय और जनता पार्टी के शासन काल की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। 'आपका बंटी' के बाद 'महाभोज' मन्नू भण्डारी का दूसरा उपन्यास है। 'महाभोज' का परिवेश हमारा आधुनिक राजनीतिक जीवन है। वर्तमान में व्याप्त कुर्सी राजनीति को लेखिका ने इस उपन्यास में खूबी से बांधा है। इस कृति का राजनीतिक परिवेश अत्यन्त भ्रष्ट, घिनौना और लज्जित करने वाला है। देवतुल्य 'राजनेताओं' के बीच कुर्सी की लड़ाईयाँ हो रही हैं। ज्योतिषियों की महत्त्व, अगूठियों का प्रचलन इत्यादि नाना प्रकार के अंधविश्वास हमारे मंत्रियों और राजनेताओं के व्यक्तित्व के अंग बन गए हैं। इतना ही नहीं, आज की राजनीति में गाली-गलौज, हुड़दंग गुण्डागर्दी और हत्या तक मान्य हो गयी है। वोटों के लिए राजनीति, लड़ाने भिड़ाने, काले को सफेद और सफेद को काला करने की राजनीति आज जोरों पर है। इस कटु यथार्थ को 'महाभोज' में उद्घाटित किया गया है। देश में फैली राजनैतिक भ्रष्टता के अन्य रूपों को भी इसमें समेटने का प्रयास किया गया है। आज के राजनेताओं द्वारा आश्वासनों तथा इन्क्वारी के ढोंग और उनकी असलियत की भी पड़ताल इस उपन्यास में की गई है। हिन्दी

---

१ गोपालराय—समीक्षा, मार्च-अप्रैल १९७९, पृ० ३१

उपन्यास परम्परा मे शुद्ध राजनीतिक उपन्यासो की संख्या नगण्य सी है। हिन्दी के श्रेष्ठ राजनीतिक उपन्यासो मे मन्नू भण्डारी के 'महाभोज' का विशिष्ट स्थान है।

जगलतन्त्रम (१९७९)

श्री श्रवणकुमार गोस्वामी के 'जगलतन्त्रम' उपन्यास मे जानवरो को प्रतीक बनाकर वर्तमान राजनीति और समाज मे व्याप्त भ्रष्टाचार, चोर बाजारी, रिश्वतखोरी आदि को चित्रित किया गया है तथा आज के राजनेताओ द्वारा आश्वासन देने की प्रथा का सुन्दर चित्र खीचा गया है इसमे सिंह 'राजनेता', नाग 'पूजीपति', मोर 'प्रशासक', चूहा 'आम आदमी' के रूप मे प्रतीक माने गये हैं। 'जगलतन्त्रम' मे पच्चीस सालो को पच्चीस रातो की कहानी के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। जगल और जानवरो की यह कथा ऊपरी तौर पर बच्चो के लिए लगती है लेकिन प्रतीको पर गहराई से दृष्टिपात करने पर हमारी राजनीति और राजनेताओ की परत दर परत कलई खोल कर रख देती है।

महामहिम (१९८०)

प्रदीप पत के 'महामहिम' मे जनता पार्टी के शासन काल को व्यग्यात्मक शैली में चित्रित किया गया है। इसमे आज के राजनीतिज्ञो के चरित्रहीन व्यक्तित्व को उजागर करने का सफल प्रयास हुआ है। आज की राजनीति मे कैसे छुटभैये-छुटभैये लोग नेता बन जाते हैं ? उस विडम्बना का प्रत्यक्ष चित्र अकित किया गया है। इसमे राजनीति के नियमो से अनभिज्ञ मुख्यमत्री की छवि प्रस्तुत की गई है। यह उपन्यास जनता शासन पर लागू न होकर प्रत्येक सरकार पर लागू होता है क्योकि सत्ताहीन महामहिमो की नीयत सदैव से जनता का शोषण करने की ही रही है, सिर्फ चेहरे बदलते रहते हैं। वर्तमान राजनीति मे व्याप्त अमानवीयता, सिद्धातहीनता और भाई भतीजावाद पर लेखक ने करारी चोट की है।

हजार घोडो का सवार (१९८१)

श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का 'हजार घोडो का सवार' उपन्यास शोषित एव दलित वर्ग की उपेक्षा, व्यथा, सामाजिक स्थितियो पर चित्रण करने वाला महाकाव्यात्मक उपन्यास है। समीक्ष्य उपन्यास मे तत्कालीन समाज मे जातीय अत्याचारो, सामाजिक अत्याचार, बेगार प्रथा, सूदखोरी का लेखक ने मार्मिक चित्रण किया है। 'लेखक का अन्य उपन्यासो से भिन्न इस उपन्यास का फलक काफी विस्तृत है लेकिन एकाध स्थलो को छोडकर इसके गठन मे कही भी हमे किसी तरह का बिखरापन नजर नही आता और पाठक की दिलचस्पी मे कही

भी कमी नही होने देता।'[1] आचलिक पात्रो की भाषा मारवाडी तथा हिन्दी का मिश्रण है, पाठको की सुविधा के लिए। वैसे पूर्ण रूप से उनकी भाषा स्टाइबेक, यूजीन ओनील रेणु और राही मासूम रजा की भाति रखी जा सकती है।'[2] समीक्ष्य उपन्यास एक ऐसी सघर्षशील व्यक्ति की गाथा है, जो वतमान समाज व्यवस्था को मानवीय सवेदनाओ की मूल्यवत्ता के परिप्रेक्ष्य मे वर्ग चेतना से मुक्ति के अहसास मे विश्लेषित करता है।

दारूल शफा (१९८१)

श्री राजकृष्ण मिश्र कृत 'दारूल शफा' आज की सत्ता लोलुप राजनीति और उसके अवमूल्यन का कच्चा चिटठा खोलने वाला यथार्थपरक उपन्यास है। इसकी कहानी कुछ घण्टो मात्र की कथा है। यह कहानी विधायक निवास 'दारूल शफा' के इद गिर्द घूमती रहती है। इसमे विधायको और मत्री बनने के इच्छुक लोगो की कारगुजारियो को बडे ही सजीव ढग से प्रस्तुत हुई है। आज की शासन-व्यवस्था म सत्ता प्राप्ति के लिए जो क्रूर और घृणित काय किए जाते है, उसका 'दारूल शफा' प्रामाणिक दस्तावेज है। इस उपन्यास मे एक राज्य के मुख्यमत्री के चुनाव और उसके लिए विधायको की खीचातानी, गुटबाजी धन प्रलोभन देना आदि इस उपन्यास की पृष्ठभूमि है। प्रस्तुत उपन्यास म आज की राजनीति म उखाड पछाड की घटनाओ के साथ साथ राजनीतिक जीवन मे व्याप्त अनुचित सेक्स सम्बन्धो और चारित्रिक नतिक विकृतियो को भी उपन्यासकार ने उजागर किया है। 'दारूल शफा' आज की जिन्दगी का असली दस्तावेज है।'[3]

समय एक शब्द भर नही है (१९८१)

धीरेन्द्र अस्थाना का 'समय एक श० भर नही है' उपन्यास म युवा पीढी के जन आन्दोलन तथा युवा पीढी के नक्सली आन्दोलन और सत्ता का अधापन दर्शाया गया है। आज के जीवन मे भ्रष्ट राजनीति के दवाव से नयी पीढी किस तरह तबाह हो रही है इसमे मुख्यत वर्णित किया गया है। उपन्यास की घटनात्मकता और विवरणात्मकता म भी मन को छूने वाले अनुभव है। किसी गहराई को न पाने पर भी समकालीन सच्चाई से सीधी टक्कर सी हो जाती है। अपने समय की चेतना से लस एक विचारगत चमक रचनाकार ने पदा की है।'[4] धीरेन्द्र अस्थाना का यह उपन्यास अपनी समग्रता मे रचनात्मक प्रबुद्धता और

---

१ सुरेश उनियाल—नया शिक्षक टीचर टूडे प० १०१
२ योगेन्द्र किसलय, शिविरा माघ १९८३, पृ० ४५७
३ श्रीलाल शुक्ल—उपन्यास के प्रथम फ्लेप से
४ कृष्णदत्त पालीवाल—समीक्षा, अप्रैल जून १९८३, पृ० ४८

परिवेशगत जागरूकता का जीवन्त परिचय देता है।

शांति भंग (१९८२)

मुद्राराक्षस का 'शांति भंग' उपन्यास आपातकाल के तीन साल के क्रूर इतिहास पर आधारित है। यह कृति सच्चे अर्थों में तत्कालीन मनुष्य की सम्पूर्ण मानसिकता को उद्घाटित करने का प्रयत्न है। 'इस उपन्यास में कथा नहीं है। कथा के नाम पर आपातकाल के रूप में आदमी पर पड़ने वाली मार का विवरण है और हर आदमी की पीड़ा को अलग-अलग चित्रों में उभारा गया है।'[1] इस उपन्यास में विभिन्न पात्रों के माध्यम से आपात्काल की सम्पूर्ण वीभत्सता को मार्मिक रूप में उद्घाटित किया गया है। इस कृति में लेखक ने वर्तमान राजनीति में राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट चरित्र को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। आपातकाल के जीवन के इस रूप की आवेगहीन रपट प्रस्तुत करने वाली यह रचना निश्चय ही एक उपलब्धि है। शिल्प की सहजता तथा विवरणों की प्रामाणिकता के कारण यह उपन्यास आपात्काल के ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में याद रखा जाएगा।

प्रजाराम (१९८३)

श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' कृत 'प्रजाराम' में आपात्काल और जनता पार्टी के शासन के छह महीनों को आधार बनाया गया है। जहाँ एक ओर आपातकाल का अत्याचार भयावह आतंक और सन्त्रासपूर्ण चित्रण लेखक ने किया है तो दूसरी ओर समृद्धि शान्ति और विकास का चित्रण लेखक ने किया है। इस उपन्यास का नायक प्रजाराम सर्वथा प्रतीक मात्र है जो आपात्काल की मानसिकता का द्योतक है। इंजीनियर आशुतोष अपने स्वार्थ के लिए अनेक भ्रष्टाचार, गलत मस्टोल बनाता है, सीमेन्ट के मामले में धाधली करता है तथा और भी अनेक भ्रष्ट तरीके अपनाकर लाखों का वारा-न्यारा करता है। ऐसा भ्रष्टाचार अधिकारी वर्ग साधिकार करते आये हैं। आशुतोष का बड़े नेताओं के साथ मेल जोल होने के कारण उसका कोई भी विरोध करने वाला नहीं था। अफसर पुरस्कार लेने हेतु जबरदस्त नसबंदी करने लगे थे। शहरों की सुन्दरता के नाम पर मकानों पर बुलडोजर चलाये जा रहे थे। ऐसी अनेक घटनाओं का यथार्थपरक चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। आपातकाल की पृष्ठभूमि पर लिखे गए उपन्यासों में 'प्रजाराम' का अपना विशिष्ट स्थान है।

सुराज

श्री हिमांशु जोशी कृत 'सुराज' कम पृष्ठों में सिमटा हुआ वृहद् कथा को

---

१ डा० आदर्श सक्सेना—समीक्षा, अप्रैल-जून १९८३, पृ० २९

अपने मे समाहित किए हुए है। इसमे लोकतान्त्रिक समाजवादी व्यवस्था के सच्चे मगर कडवे यथार्थ को चित्रित किया गया है। आज की शासन व्यवस्था मे समानता के नाम पर निम्न वर्ग किस तरह पीडामय जिन्दगी भोग रहा है। उसके लिए कानून, न्याय, समानता इत्यादि निरर्थक हैं। लडाई का अगुआ कथा-नायक काका की हत्या कर दी जाती है। काका की हत्या साधारण हादसा न होकर गांधीवादी सिद्धान्तो की हत्या है। गरीबो को नयी सुबह की बराबर तलाश है। निश्चय ही हिमाशु जोशी की यह कृति भ्रष्ट राजनीति द्वारा गरीबो के सूखते आसुओ का यथार्थ दस्तावेज है।



२ | समीक्ष्य उपन्यासो की सृजनात्मक प्रेरणाएँ

सृजन शाब्दिक विवेचन

सृजना या सरजना का अर्थ है—सृष्टि करना, बनाना।[1] साहित्य मे सृजन का अर्थ हुआ मौलिक एव नूतन वचारिक धरातल पर लेखन कार्य किया जाना।

सृजनात्मक प्रेरणा ही साहित्यिक कर्म की जन्मदात्री है। लेखक के अन्तर में कुछ खदबदाता है, वह उस खदबदाहट से इतना विह्वल हो जाता है कि उस विह्वलता को कागजो पर उतारना आवश्यक हो जाता है। ऐसा लेखन ही ईमानदारीपूर्ण कहलायेगा।

लेखक यथास्थितिवादी नही बन सकता। वह मानवीय मूल्यो का अवमूल्यन सामाजिक जीवन मे भ्रष्टाचार और आदर्शों की हत्या देखकर चुप नही रह सकता। वह मानवीय मूल्यो की स्थापना के लिए, सामाजिक जीवन मे सुधार के लिए एव आदर्शो की रक्षा के लिए बराबर जूझता है। ये स्थितियाँ उसके सृजन को प्रेरणा प्रदान करती हैं।

औपन्यासिक सृजन की प्रवृत्तिया

उपन्यास लेखन वृहद स्तर के सोच एव अनुभव पर आधृत होता है। उपन्यासकार इतिहास का अध्ययन करता है। अतीत की ऐतिहासिक स्थितियो एव व्यवस्था का वर्तमान से तुलनात्मक विवेचन करके निष्कर्ष देता है कि परिवर्तन समाज के लिए कितना हितकर रहा है। सामाजिक परिवेश सृजन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। समाज के बदलाव, उसकी परिवेशगत स्थितियो मे बदलाव की वजह इनके सहारे भी सृजनात्मक प्रेरणा मिलती है।

उपन्यास या कहानी यथार्थ भूमि पर आधारित होकर नीरस न हो जाए, उसमे कथा तत्त्वो का निर्वाह किया जाना आवश्यक है, जिससे कथा का रसास्वादन मिल सके। उसके लिए लेखक कल्पना-तत्व का ध्यान रखता है। वह यथार्थ की पतीली चूल्हे पर चढाकर नीचे कल्पना की आच देता है। इस

प्रक्रिया मे जो मजन होता है वह यथार्थ पृष्ठभूमि के साथ साथ रजक तत्व भी लिए रहता है। साठोत्तर राजनीति उपन्यासो की सृजना के पीछे जो आधार रहा है वह इसी तरह है।

एक और मुख्यमन्त्री
(यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र')

सन १९६३ में श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का उपन्यास 'एक और मुख्यमंत्री' देश के राजनीतिक जीवन की २० साल की गाथा पर आधारित उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के सभी पात्र राजनीति मे डूबे हुए लगते हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री चन्द्र जी ने गद्य साहित्य के विविध रूपों का सृजन किया है। आपने लगभग ६० उपन्यास, १५ कहानियों के सग्रह तीन नाटक और पचास उच्च स्तरीय बाल साहित्य उपन्यास तथा अनेक रेखाचित्र, निबंध, रिपोर्ताज आदि साहित्यिक विधाओं मे सृजन किया। आपके राजस्थानी भाषा मे दो उपन्यास तीन नाटक तथा एक कहानी-सग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। उपन्यासो मे प्रमुख हैं – सन्यासी और सुन्दरी (१९६४), दिया जला दिया बुझा (१९५५) नया इसान (१९५६) खम्मा अन्नदाता (१९५८) सपना, खून का टीका (१९५९), नयना नीर भरे (१९५९) बड़ा आदमी (१९६१), सावित्री (१९६३) ठकुराणी सावन आँखो मे (१९६४) एक और मुख्य मत्री (१९६६), घूघट और घुघरू (१९७०) जनानी ड्योढी (१९७०), कोमल कुंजकली, हजार घोडो का सवार (१९८१) प्रजाराम (१९८३)। प्रमुख कहानी सग्रह हैं—अब-ढन खोल दिल्ली कब बन गई जनक की पीड़ा, राम की हत्या, पीटर बहुत बोलता है आदि। नाटको मे आन के दावेदार शराब खराब है, ताश का घर, वह अन्य बाल उपयोगी रचनाओ की सृष्टि श्री चन्द्रजी ने की है।

श्री चन्द्र जी के उपन्यासो म शिल्प और कथ्य का सुन्दर रूप देखा जाय तो उनमे एक और मुख्यमत्री सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है। इस उपन्यास मे स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय राजनीति मे व्याप्त धनता भ्रष्टाचार राष्ट्र-द्रोहिता स्वार्थपरता, दल बदलू राजनीति की विडम्बनाओ नृशसताओ, क्रूरता, खोखला पादर्श व्यभिचारो एव हमारे बनावटी जीवन से सम्बन्धित घटना क्रम को प्रस्तुत करने मे लेखक को प्रभूत सफलता मिली है। उपन्यास में आज के राजनेताओ की मक्कारी शक्लो को देखा जा सकता है। अरविंद के लम्बे सवाद से कथानक मे शिथिलता उत्पन्न होती है। घटना पर घटना घटित होती है जो पाठक के मस्तिष्क पर अमिट छाप छोडती है। 'कही वर्णनात्मक, कही नाटकीयता तो कही पूर्व दीप्ति शैली मे कथानक के प्रस्तुतीकरण से कथानक मे सरसता एव रोचकता की निरन्तर अभिवृद्धि होती है।'[1] इन विशेषताओं के आधार

१ डा० देवदत्त शर्मा, हिन्दी के सामती चेतनापरक उपन्यास, पृ० ७०

पर कहा जा सकता है कि चन्द्रजी के कथा कृतियो मे 'एक और मुख्यमंत्री' एक सवश्रेष्ठ रचना है। लेखक उपन्यास लिखने की प्रेरणा के बारे मे कहते हैं कि—'मैं सन् ५८ से अपने स्वर्गीय मित्र सासद श्री पन्नालाल बारूपाल के साथ रहा। नाथ एवेन्यू मे। वहा विभिन्न राजनेताओ से मिलता था तथा ससद भी जाया करता था। वहा मुझे चरित्र मिले तथा देश की राजनीति से मेरा निकटतम, परोक्ष सक्रिय सम्बन्ध रहा—सम्पूर्ण देश की राजनीति का चरित्र और पात्रो की प्रेरणा ही इसका सजन प्रेरणा स्रोत है।'[1] कथाकार ने हमारे बदलते हुए समाज को पेश किया है जिसका मूल आधार राजनीति है। हमारा आज का सामाजिक जीवन वसे ही राजनीति प्रधान हो गया है, पर इसमे जो मूलत वे ही पात्र उठाये गए हैं जो पूरी तरह राजनीति मे डूबे हुए हैं।[2] प्रस्तुत उपन्यास की रचना का मुख्य उद्देश्य स्वातन्त्र्योत्तर भारत की राजनीति के विघटनशील परिवेश और पतनशील नेतृत्व का यथाथ चित्रण करना है।[3] इस उपन्यास मे यथाथ जीवन का चित्रण है, कल्पना सिर्फ इस बात का सजाने की है। कथाकार की पकड बडी मजबूत और उसकी दृष्टि सूक्ष्म है।[4] देश की राजनीति के परिवर्तित परिवेश का व्यापक रचनाफलक पर प्रस्तुत करने वाले उपन्यासो मे 'एक और मुख्यमंत्री' मूर्धन्य स्थान का अधिकारी है।

सबहि नचावत राम गोसाई
भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी के जाने माने उपन्यासकार श्री भगवतीचरण वर्मा का 'सबहि नचावत राम गोसाई' उपन्यास का प्रथम सस्करण १९७० म प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास मे श्री वर्मा जी ने स्वतत्रता के पश्चात् समाज की सच्ची, मजेदार और व्यग्यपूण तस्वीर पेश करने का सफल प्रयास किया है। उन्होने अपने रचनाकाल मे अनेक विषयो पर असख्य उपन्यासो का सृजन किया था। प्रेमचद के समय उपन्यासो मे समाज की मूलभूत समस्याओ का चित्रण किया जाता था। उनके बाद वर्मा जी ने इस परम्परा को नयी गति प्रदान की। इस विषय के अतगत उन्होने जिन उपन्यासो का सृजन किया उनम प्रमुख है—आखिरी दाँव, भूले बिसरे चित्र, वह फिर नही आई, टेढे मेढे रास्ते, अपने खिलौने, रेखा, सबहि नचावत राम गोसाई आदि। इन्होने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर 'चित्रलेखा'

---

१ यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' से साक्षात्कार
२ रत्नलाल शर्मा, नया शिक्षक, अक्टूबर दिसम्बर ७२, पृ० ३५६
३ श्रीमती बसती पत, हिन्दी उपन्यास रचना विधान और युग बोध, पृ० ४३
४. रत्नलाल शर्मा, समाज कल्याण, अतिम कवर से उद्धृत

और 'पतन' नाम के उपन्यासो की रचना की। श्री वर्मा जी न अपने उपन्यासों मे अतीतोन्मुखी तथा विकासोन्मुखी विचारो के सघप को उपस्थित किया है। देश के विभाजन ने जो नई कथा सामग्री जुटाइ, उस पर भी कई उपन्यास रचे हैं। इसके अतिरिक्त वर्मा जी ने—थके पाँव, घुप्पल, मार्चाउदी, तीन वप आदि उपन्यासो की रचना की थी। भगवतीचरण वर्मा ने सामाजिक और मनोवैज्ञानिक ध्वनि रूपको की रचना की है। इनका राख और चिंगारी' बहुत सुन्दर ध्वनि-रूपक है। इसके अतिरिक्त और भी ध्वनि रूपको की रचना इन्होंन की है।

भगवती बाबू के उपन्यासो मे व्यक्तियो की ही नही, पूरे परिवेश की प्रधानता होती है। व्यक्ति प्राय उस पूरे परिवेश का अग होता है, वह कही भी उस पर हावी नही होता। इस उपन्यास की सजना के पीछे उनका यह उद्देश्य है कि आज के आधुनिक समाज मे जो विसगतियाँ आ गयी हैं जो आदमी-आदमी के परस्पर सबधो को तोड़ रही है, आर्थिक समानता, पद का दुरुपयोग आज समाज मे आदमी की सच्चाई को किस प्रकार दबा दिया जाता है उसका चित्रण करना है। हमारा समसामयिक जीवन इतनी निराशा, कुठा और तनाव से भरा हुआ है कि उस पर व्यग्य के अतिरिक्त और किसी चाट का कदाचित कोई असर ही नही पड़ सकता। इसीलिए वर्मा जी ने व्यग्य शली को लेकर ही इस उपन्यास का सृजन किया है। इसके पीछे डा० गापालराय का मत है कि भूल बिसरे चित्र' मे १८६० से १९३० ई० के कालखण्ड को उपन्यास की पृष्ठभूमि के रूप म चुना गया है। 'सीधी सच्ची बातें' मे १९३९ से १९४८ के भारत का चित्र प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि उपन्यासकार के रूप मे, इस उपन्यास मे भगवती बाबू को सफलता नही मिली, यानि वे इसमे कल्पित ससार का विश्वसनीय, सार्थक और जीवन्त चित्र नही बना पाये हैं। सर्वाहि नवावत राम गोसाई इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि 'सीधी सच्ची बात' से भगवती बाबू के कृतित्त्व के प्रति जो निराशा उत्पन्न हुई थी, वह इससे दूर ही नही होती, उनकी सभावनाओ के प्रति भी आस्था जगती-सी दिखाई देता है। इस उपन्यास मे उनकी अपनी पुरानी किस्सागोई ही अपने पूरे 'फाम' मे लौटती नहीं दीखती, वरन् वे एक अच्छे व्यग्य लेखक के रूप मे भी उभरते दीखते है।[1]

काली आँधी

(कमलेश्वर)

श्री कमलेश्वर कृत 'काली आँधी' म स्वतत्रता के पश्चात् भारतीय नारी का राजनीति मे प्रवश व उसके इस क्षेत्र मे विशिष्ट स्थान बनाने का क्रमिक

---

१ गोपाल राय, समीक्षा, जुलाई १९७०, पृ० २

विकास दर्शाया है। भारतीय नारी के साथ प्राचीन काल से यह प्राचीन मूल्य जुड़ा रहा कि पति की सेवा करना और बच्चो की देखभाल करना ही नारी का धर्म माना गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् नारी ने राजनीतिक क्षेत्र मे प्रवेश किया। उसे घर और घर के बाहर अनेकों संघर्षों का सामना करना पड़ा। राजनीति में सफलता के लिए नारी अनेक व्यक्तियो की शरण मे गयी, अनेक तिकड़मो के आधार पर सफलता प्राप्त करती रही। राजनीति मे प्रवेश करने के बाद नारी का अपने बच्चो और पति से संबंध कटता सा गया है। सुपरिचित उपन्यासकार श्री कमलेश्वर जी ने अपने उपन्यास 'काली आंधी' मे आधुनिक नारी के इसी संघर्ष को प्रस्तुत किया है। इसमे लेखक ने आज की भ्रष्ट राजनीति की ओर भी संकेत किया है। इस उपन्यास के अतिरिक्त श्री कमलेश्वर ने अनेको उपन्यासो की सृजना की है जिनमे प्रमुख हैं—'समुद्र मे खोया आदमी' 'तीसरा आदमी' आगामी अतीत, 'वही बात' 'डाक बंगला'। 'सुबह दोपहर शाम' उपन्यास मे कमलेश्वर ने स्वातन्त्र्य पूर्व की तनावपूर्ण स्थितियो का चित्रण किया है। अंग्रेजी शासन में भारतीयो की मानसिकता, राष्ट्रीयता की भावना, स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए क्रांतिकारियो की भूमिका और तत्कालीन परिस्थितियो का प्रतिबिम्ब तो है ही, ग्रामीण व्यवस्था, गांवो मे फले संस्कारो का मार्मिक चित्रण है। कमलेश्वर हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार हैं। उनके कई उपन्यासो को आधार बनाकर फिल्म भी बन चुकी हैं। जिनमे से 'काली आंधी' का नाम भी लिया जा सकता है। उपन्यास की नायिका मालती अपने पति के प्रोत्साहन से ही राजनीति मे प्रवेश करती है, पर धीरे धीरे राजनीति उस पर हावी हो जाती है और उसका पति और परिवार पीछे छूट जाते हैं। कमलेश्वर ने इस उपन्यास की सृजनात्मक प्रेरणा कहाँ से प्राप्त की, इसका उल्लेख नही किया है। लेकिन उपन्यास का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि सृजना के पीछे आज की राजनीति में आधुनिक नारी ने अपने दायित्वो को भुला कर, उन सनातन मूल्यो को समाप्त कर अनेक संघर्षों के बाद आज की राजनीति मे प्रमुख स्थान बना लिया है। उससे प्रभावित होकर लेखक ने इस उपन्यास की सृजना की है।

'काली आंधी' का कथानक देश की ऐसी समसामयिक राजनीति से प्रभावित है, जिनमे नैतिक मूल्यो का ह्रास हुआ है और भ्रष्टाचार का विकास हुआ है। पात्रो की मनोवैज्ञानिक क्षणो की पकड़ मे कमलेश्वर सफल रहे हैं। इस कथ्य के माध्यम से कमलेश्वर ने आज के राजनीतिक भ्रष्टाचार की ओर भी संकेत किया है।

राग दरबारी

(श्रीलाल शुक्ल)

श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग दरबारी' उपन्यास सातवें दशक में सर्वाधिक चर्चा का विषय रहा है। इसी परम्परा का उपन्यास शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी' के नाम से प्रकाशित हुआ। इन दोनों उपन्यासों ने पाठकों को अपनी ओर इतना आकृष्ट किया जितना कि दस बारह सालों में किसी और उपन्यास ने नहीं किया। उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले श्रीलाल शुक्ल एक व्यंग्यकार के रूप में हिन्दी-साहित्य में अपना 'अंगद का पाँव' जमा चुके थे। अतः उपन्यास की शैली को अपना लेना उनके लिए बड़ा स्वाभाविक और उनके रचनाकार का सहज विकास ही कहा जायगा। इतने बड़े पैमाने पर व्यंग्य को उठाने का यह हिन्दी में पहला ही प्रयास है। परम्परागत हिन्दी की औपन्यासिक शैली में यह एक नया प्रयोग है और यही इसकी निजता एवं वशिष्ट्यता भी। स्वतन्त्रता के बाद हमारे जीवन मूल्यों का ह्रास, घुटन, कुण्ठा, पलायन आदि मूल्यहीन अवस्था का अंग बन गया। हमारे परिवेश की सामाजिक विद्रूपताओं और कुरूपताओं के साथ उपजी बुद्धिजीवी के संकट बोध की पीड़ा की प्रासंगिक सार्थकता को उनके यथार्थ की प्रामाणिकता में बूझन पहचानने की कोशिश और रेखांकन ही राग दरबारी की रचना का उद्देश्य है।

श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' के अतिरिक्त जिन उपन्यासों की सृजना की उनमें प्रमुख हैं—आदमी का जहर, मकान और सीमा उपन्यास अज्ञातवास' है, जो अपराध शैली में लिखे गये रोचक और उत्तेजक उपन्यास में 'राग दरबारी' की सामाजिक चेतना अपनी स्थूलता के बावजूद परिवेश एवं स्थितियों के अन्तर्विरोध को निर्ममता से उद्घाटित करने वाली उसकी व्यंग्य दृष्टि 'अज्ञातवास' में गायब है। लेखक ने उपन्यास की सर्जन प्रेरणा का उल्लेख नहीं किया है। उपन्यास के पठन के बाद लेखक की सृजना के बारे में कहा जा सकता है कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत के जनतान्त्रिक व्यवस्था की विफलताओं ने हमारे जीवन-मूल्यों आस्थाओं आदर्शों, विश्वासों एवं सांस्कृतिक परम्पराओं की नींव हिलाकर रख दी है। सरकारी योजनाएं भ्रष्टाचार की उत्स (उपज) हैं। नैतिक मूल्यों का ह्रास हमारे जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना है। जनतन्त्र में चुनावों की महत्ता एवं पवित्रता मात्र एक छलावा, धोखा और मखौल बन कर रह गयी। नेता, समाज सेवक, सरकारी नौकर सेवा के नाम पर समाज को लूट रहे हैं। भाई-भतीजावाद, तिकड़म, साजिश घूसखोरी, सत्ता मोह स्वार्थपरता कुनबा परस्ती, झूठ, धाँधली अन्याय आत्मरति आदि हमारी मूल्यहीनता और चरित्र-विघटन की देन है। रचनाकार ने इन दृष्टियों को लेकर अपनी कौशलता के साथ प्रसंगों को विस्तार दिया है। जिससे उसके रगे-रगे को उधड़ा जा सके।

इस तरह ,लेखक ने, इन विचारों से प्रभावित होकर 'राग दरबारी' की रचना की है।

श्रीलाल शुक्ल की यह रचना हिन्दुस्तान के गाव की हालत, इस दुनिया की पुलिस, थानो, अफसरो, स्कूलो, विद्यार्थियो, प्राचार्यों, ग्राम के राजनीतिज्ञो और उनके चगुल मे पडी सहकारी सस्थाओ, सबसे घृणित कारनामा एव पक्षो को बडी ईमानदारी के साथ उभारती है।[1] डॉ० आदित्यनाराण त्रिपाठी का मत है कि—'राग दरबारी' की रचना हास्य कोटेड व्यग्य की धार पर खडी है। हिन्दी उपन्यास मे पहली बार व्यग्य का इतना विस्तार मिला। यह कहना गलत न होगा कि सभवत 'राग दरबारी' हिन्दी उपन्यास की पहली रचना है जिसमे वृहद स्तर पर व्यग्य को निरन्तर बनाये रखा जा सका है।"[2]

कटरा बी आर्जू
(राही मासूम रजा)

राही मासूम रजा ने अपने पहले उपन्यास 'आधा गाँव' के विशेष चर्चित होने के बाद सन्' १९७८ मे कटरा बी आर्जू' उपन्यास की रचना की। यह उपन्यास आपातकाल से पहले की पृष्ठभूमि से शुरू होता है और 'जनता राज' मे उदय पर आकर समाप्त होता है। इसके अतिरिक्त रजा के प्रसिद्ध उपन्यासो मे 'आधा गाँव' मे पूर्वी उत्तर प्रदेश के मुसलमानो और सम्बद्ध वातावरण तथा पात्रो को उन्मुक्त गतिशील और जीवन्त चित्रण किया गया है। 'दिल एक सादा कागज' मे ढाका, गाजीपुर और बम्बई की त्रिकोण कहानी कही गयी है। 'ओस की बूद' साम्प्रदायिक दगा को लेकर लिखा गया और 'सीन ७५' मे बम्बई की फिल्म नगरी की आतरिक स्थिति को खीचा गया है। अगर कथ्य और शिल्प की दृष्टि से देखा जाय तो रजा के उपन्यास मे 'कटरा बी आर्जू' एक सर्वश्रेष्ठ रचना कही जा सकती है। समीक्ष्य उपन्यास मे कुछ ऐसे लाक्षणिक और आलकारिक प्रयोग हुए हैं जो तुरन्त ध्यान आकर्षित करते हैं और पाठक को बाँध लेत है। जसे माँ की आँखो मे ममता की जगह मोतिया[3] हर डिब्बे मे उस परिवार की भूख आयी थी।[4] इन लाक्षणिक प्रयोगो म मानवीकरण सबसे अधिक है इसे राही की गद्य शैली की प्रमुख विशेषता माना जा सकता है। ऐसी प्रवाहपूर्ण लाक्षणिक वैचित्र्य से परिपूर्ण चित्रात्मक गद्य मे लिखे गये 'कटरा बी

---

१ लक्ष्मीनारायण दूबे, मधुमती, अप्रैल ८२, पृ० ४६

२ डॉ० आदित्यकुमार त्रिपाठी, औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षाएँ, पृ० १२८

३ राही मासूम रजा, कटरा बी आर्जू, पृ० ४३

४ वही, पृ० ४४

आजू' जैसे उपन्यास हिन्दी मे कम ही हैं। स्थानीय बोली को रचनात्मक ढंग से प्रयोग किया है।

पात्रो की मानसिकता, सोच विचार, भावना को इस प्रकार से भाषा के माध्यम से लेखक ने व्यक्त किया है कि पात्रों के व्यक्तित्व से भाषा को अलग किया जा सके। इस सबध मे गोपालराय का मत है—'यह भाषा इन पात्रो की जिन्दगी का, उनके पूरे व्यक्तित्व का पर्याय हो गयी है। इतनी अटपटी, हिन्दी व्याकरण की दृष्टि से बेतरतीब, अपभ्रष्ट शब्दो से युक्त भाषा को इतना व्यग्य-पूर्ण, अर्थवान, व्यजनायुक्त, सटीक, सजनात्मक भाषा बनाना राही जैसी श्रेष्ठ प्रतिभा के ही बूते की बात है।'[1] उक्त विशेषताओ के आधार पर निस्सकोच कहा जा सकता है कि यह उपन्यास रजा की कथाकृतिया मे विशिष्ट स्थान रखता है।

लेखक ने उपन्यास लिखने की प्रेरणा का उल्लेख नही किया। इस उपन्यास के अध्ययनोपरात इसकी सृजनात्मक प्रेरणा के बारे मे कहा जा सकता है कि रजा ने इस उपन्यास के माध्यम से आपातकाल मे सामान्य जनता के साथ ऊचे तबके के द्वारा हुए अमानवीय व्यवहार, उनके निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु किए अत्याचार, स्थानीय नेताशाही और नौकरशाही ने जिस प्रकार खुलकर आपात्-काल मे अत्याचार का खुला खेल खेला, उससे प्रभावित होकर रजा के उपन्यास के रूप मे प्रस्तुत हुआ है। इस उपन्यास के सम्बन्ध मे जुगमिन्दर तायल का मत है कि—'कटार की आजू मानवीय पीडा या जिजीविषा का मार्मिक चित्रण करने वाली रचना नही बन पायी है आपात स्थिति के अत्याचारो का नाटकीय चित्रण करने वाली रचना हो गई है। अनेक स्थलो पर अति नाटकीयता के कारण यह कृति सवेदना जगाने के स्थान पर खीझ और झुझलाहट भी उत्पन्न करती है।'[2] निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि राही कृत 'कटरा बी आजू' कथ्य और शिल्प की दृष्टि से विशिष्ट कथा कृति है।

महाभोज
(मन्नू भण्डारी)

'महाभोज' का प्रथम सस्करण सन् १९७९ में प्रकाशित हुआ। इसमें आपात-काल के बाद काग्रेस की पराजय और जनता पार्टी के शासन काल के समय को आधार बनाया गया है। 'महाभोज मन्नू भण्डारी के 'आपका बटी' के बाद लिखा गया दूसरा उपन्यास है। मन्नू भण्डारी ने अपने प्रथम बहुचर्चित उपन्यास

१ डॉ० गोपालराय समीक्षा, मार्च अप्रैल १९७९, पृ० ३२
२ जुगमिन्दर तायल—समीक्षा, मार्च-अप्रल, १९७९, पृ० ३४

'आपका बंटी' मे एक बच्चे की मानसिकता के विभिन्न स्तरो को बहुत सफलता से उद्घाटन किया है।[1]

'महाभोज' आज की राजनीतिक जीवन मे आयी तिकडमबाजी, शैतानियत, मूल्यहीनता और सडाध का चित्रण करने वाला उपन्यास है। आज की राजनीति को पूजीवादी व्यवस्था ने किस प्रकार भ्रष्ट और निकम्मा बना दिया है उसका प्रत्यक्ष चित्रण इस उपन्यास मे किया गया है। 'महाभोज' की रचना मे जिन दो उपकरणो को मुख्य आधार बनाया गया है वे हैं बिसेसर नामक एक पिछडी जाति के युवक की हत्या और इस हत्या की पृष्ठभूमि मे विधायक के चुनाव की प्रक्रिया। महाभोज सामाजिक उत्पीडन और उस पर टिकी हुई व्यवस्था पोषक राजनीति के विरुद्ध सवेदनशील रचनाकार की विनम्र किन्तु साहसपूर्ण प्रतिक्रिया है।[2] मन्नू भण्डारी लेखन की दशा म अपने बनाये प्रतिमानो को लाघने मे सफल हुई है फिर भी 'महाभोज निश्चय ही अच्छा उपन्यास है। यह पाठक को पूरा उपन्यास पढने के लिए बाध्य करता है। उपन्यास के अनेक स्थल पाठक के मस्तिष्क को झकझोरने मे सफल होते हैं। शुरू से अत तक उपन्यास रोचक बना है।

लेखिका ने इस उपन्यास की सृजनात्मक प्रेरणा के सम्बन्ध मे स्वय कुछ भी उल्लेख नही किया है, फिर भी इस कृति को पढने के बाद कहा जा सकता है कि लेखिका के समक्ष आडम्बरयुक्त राजनीतिज्ञो के प्रपच, उनकी स्वार्थपरता और आदर्शहीनता, अमानवीयता एव निर्ममता रही और उसी से अभिप्रेत होकर उसका नग्न चित्रण लेखिका ने अपनी इस कृति म किया है। लेखिका को अपने व्यक्तिगत दुख-दद, अन्तद्व द्व या आतरिक नाटक' को देखना बहुत महत्वपूर्ण सुखद और आश्वास्तिदायक तो लगता है, मगर जब घर मे आग लगी हो तो सिफ अपने अन्तर्जगत मे बने रहना या उसी का प्रकाशन करना क्या खुद ही अप्रासगिक, हास्यास्पद और किसी हद तक उपन्यास के पीछे यही लगन लगता ? सभवत इस उपन्यास के पीछे यही प्रश्न रहा हो। इसे लेखिका अपने व्यक्तित्व और नियति को निर्धारित करने वाले परिवेश के प्रति ऋण शोध के रूप में देखती है।

महाभोज' आज की राजनीति मे आयी हुई मूल्यहीनता के साथ पूजीवाद ने आज की आम व्यवस्था को किस प्रकार भ्रष्ट और दूषित बना दिया है। लेखिका ने इसी राजनीतिक व्यवस्था का चित्रण किया है। डा० गोपालराय का

---

१ बुलाकी शर्मा—बाल मनोविज्ञान पर आधारित हिन्दी उपन्यास (टकित) पृ० ६६

२ अजय तिवारी—आलोचना, जन० मार्च, ६४ ६५, अक, पृ० ६७

मत है कि—'महाभोज' मे आज की राजनीति मे व्याप्त भ्रष्टाचार, अनतिकताएँ, तिकडमबाजी का यथाथ चित्र प्रस्तुत किया है। आज की राजनीति मे धन, गुण्डा गर्दी और छल प्रपच का प्राधा य हो गया है। उप यास लेखिका का राजनीतिक जीवन का अनुभव उसका निजी भोगा या उसने बीच मे गुजरा अनुभव न भी हो, उसने उसे इस कौशल से प्रस्तुत किया है कि उसमे कही भी अविश्वसनीयता नही नजर आती है।[1] श्री बुलाकी शर्मा ने भी अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि—मनू भण्डारी अपने पात्रो के अ तससार को अभिव्यक्त करने म बहुत मोहक एव लुभावनी शैली का सहारा लेती हैं।

जगल तत्रम
(श्रवणकुमार गोस्वामी)

श्री श्रवणकुमार गोस्वामी कृत 'जगल तत्रम' उप यास का प्रथम सस्करण १९७८ म प्रकाशित हुआ। इसमे लेखक ने जानवरो के प्रतीको के माध्यम से आज की राजनीति और समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, चोर बाजारी आदि शोपणो को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। सिंह 'राजनेता', मोर प्रशासक, चूहा 'आम आदमी' और नाग पूजीपति' का प्रतीक है। इस उप यास के अतिरिक्त श्री श्रवणकुमार गोस्वामी के दो प्रमुख उप यासो मे एक 'सेतु' है जिसमे फिल्मी दुनिया म नायक और नायिकाओ की निजी जीवनी मे झाकने का प्रयास किया है। फिल्म नायिकाएँ और नायक स तान की जरूरत कब और किन परिस्थितिया मे महसूस करत हैं, और स तानोत्पत्ति के प्रश्न को लेकर उनके दाम्पत्य जीवन मे कितन उतार चढाव आते हैं, इन सब बातो पर प्रकाश डालना इस उप यास का अभिप्रेत रहा है, इसमे फिल्मी दुनिया मे व्यावसायिक दावपेंच रोचक ढग से प्रस्तुत किए गए है। दूसरा उप यास जो अभी हाल ही मे प्रकाशित हुआ है भारत बनाम इडिया'। स्वतन्त्रता के बाद भारत मे आर्थिक विकास का लाभ मुटठी भर लोगो और बडे-बडे नगरो तक ही सीमित रह गया। लाखों गाव, कस्बा की हालत ज्यो की त्यो बनी हुई है। लगता है भारत दो हिस्सो मे विभक्त हा गया है। शहर यानि 'इडिया और गाव यानि भारत'। अब इडिया की हुकूमत भारत पर चल रही है'। इसम लखक ने इस सामाजिक आर्थिक विसगति को दष्टिगत रख उप यास का ताना बाना बुना है। गांव और शहरो के अ तर, अमीरी गरीबी के फर्क, शोपक और शोपिता के अ तर को लेखक इस कृति के माध्यम स उघाडन म सफल रहा है।

---

१. डा० गोपालराय—समीक्षा, अक्टूबर दिसम्बर ८०, अक ४, पृ० ३२

'जगल तन्त्रम' श्रवणकुमार गोस्वामी का प्रथम उपन्यास है। यह इनकी सृजन परम्परा मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है और यह अन्य उपन्यासो से भिन्न विषय को लेकर लिखा गया है। उपन्यास की सृजना के बारे मे लेखक उपन्यास के तीन पृष्ठ पर 'मुझे कुछ नही कहना है' के अन्तगत लिखता है—'केवल यह कहना है कि 'जगल तन्त्रम' आपात स्थिति की उपज नही है। सन १९७३ मे भारत जब स्वतन्त्रता की रजत जयन्ती मनाने की तैयारी मे मग्न था, तभी २६ फरवरी और २५ मई के बीच इस उपन्यास का सृजन किया गया।'[1] इसमे लेखक ने कथा के पच्चीस सालो को पच्चीस रातो के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसमे आज की राजनीति के तहत चलने वाली तथा-कथित लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली मे यथाथ चित्रायन मे भारतीय राजनीति के परखचे उडाए हैं। नाग पूजीपति का प्रतीक है जिसके जाल मे छटपटाते हुए आम आदमी का वणन लेखक ने किया है। 'जगल तन्त्रम' मे जगल और जानवरो की कथा बच्चों की सी लगती है। प्रतीको पर ध्यान जाते ही आज के राजनीतिज्ञो की परत-दर-परत कलाई खोलकर रख देती है। पच्चीस वर्षों के इतिहास को यथाथ को ऐसी स्वाभाविक, सहज सरल भाषा शैली में साथक प्रतीकात्मकता के आद्योपान्त निर्वाह के साथ व्यक्त किया है कि देश का पूरा नक्शा सजीव हो उठा।[2] 'जगल तन्त्रम' मे बुद्धिवादी के प्रतीक के रूप मे गिरगिट, अवसरवादी आयाराम गयारामों के प्रतीक रूप मे सियार भेडिया आदि भी आते हैं। 'उपन्यासकार ने स्थानो और पात्रो के नाम बदल कर अखबारी घटनाओ का सिलसिलेवार वणन समसामयिक राजनीति के रूप मे भाषा समस्या, बैंक राष्ट्रीयकरण, जीप घोटाला काण्ड, पब्लिक स्कूल रिलीफ के कार्यों मे घपला, न्यायपालिकाओ मे हस्तक्षेप, जूनियर की मुख्य न्यायाधीश पद पर नियुक्ति व्यापार का राष्ट्रीयकरण मगलवाद की घोषणा, पडोसी से युद्ध, जीत, समझौता आदि को प्रस्तुत कर दिया है।'[3]

महामहिम

(प्रदीप पत)

'महामहिम' प्रदीप पत का आज की राजनीति पर लिखा हुआ व्यग्यात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रथम प्रकाशन १९८० मे हुआ। इस उपन्यास के अतिरिक्त लेखक ने अन्य उपन्यास भी लिखे हैं, जिनमे प्रमुख हैं— एक अस

१ श्रवणकुमार गोस्वामी —जगल तन्त्रम, प० ७

२ बजनाथ राय—समीक्षा, अक्टूबर दिसम्बर १९८०, पृ० ३८

३ डा० लक्ष्मीनारायण दुबे—समकालीन हिन्दी उपन्यासो मे राजनतिक मनोविज्ञान के स्वर (मधुमती अप्रल ८३, पृ०५२-५३)

भव मृत्यु, 'अन्तराल में याद' और 'आम आदमी का शव' नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ है। 'मैं गुट निरपेक्ष हूं', 'प्राइवेट सेक्टर का व्यंग्यकार' नामक पुस्तक में लेखक के व्यंग्य लेखों एवं कहानियों का संकलन है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से 'महामहिम' एक सुन्दर कृति कही जा सकती है। आज की राजनीति में छुटभये गुटभये और टुच्चे लोग किस तरह नेता बन जाते हैं उसका लेखक ने आखा देखा हाल प्रस्तुत किया है। लेखक ने जनता सरकार के शासन काल को आधार बनाया है। व्यंग्य शैली में लेखक ने वर्तमान राजनीति का नग्न चित्र प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। यह जनता सरकार पर लागू न होकर सभी सरकारों पर लागू होता है। उपन्यास की कथा में रोचकता और प्रवाह है। यह उपन्यास मूल्यहीनता पर प्रहार करते हुए गलत ढंग की राजनीति का विरोध करता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रदीप पंत का यह उपन्यास हमारे राजनीतिक जीवन और उसके आस पास के परिदृश्य की सशक्त अभिव्यक्ति होने के कारण एक जीवंत कथाकृति है। जिसमें सिद्धांतहीन और अमानवीय राजनीति की अन्तर्कथा बड़े बेबाक ढंग से प्रस्तुत की गई है।[1]

लेखक उपन्यास लिखने की प्रेरणा के बारे में कहता है कि —'एक छुटभैये और गुटभैये नेता से मेरा परिचय है। मार्च ७७ के बाद उनकी आन बान में मैंने निराले परिवर्तन होते देखे। उनकी आवाज बदल गई, तेवर बदल गये और रहन सहन बदल गया। उनसे जब भेंट होती, कुछ लिखने का मन होता और आखिरकार यह उपन्यास लिखा गया। यद्यपि इसमें उनका चरित्र कहीं नहीं है, लेकिन उनके जैसा चरित्र है। यद्यपि इस उपन्यास में घटनाएं पूर्णतः सच्ची नहीं हैं लेकिन वे सच पर आधारित हैं। उपन्यास की रचना करते समय कुछ नोट्स भी काम आ गए जिन्हें मैं पिछले अनेक वर्षों से संजोता गया था।[2]

हजार घोड़ों का सवार
(यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र)

समीक्ष्य उपन्यास का प्रथम प्रकाशन १९८१ में हुआ। इसमें बीकानेर के गहन गह्वरों में पड़े शोषित सजीव चरित्रों व वस्तुओं को उजागर करने का लेखक ने प्रयास किया है। यह उपन्यास पेशेगत बनी हुई शोषित जातियों के उत्पीड़न व शोषण की गाथा है। बीसवीं सदी के आरम्भ से लेकर १९५२ के आम चुनाव तक की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियों का बेबाक और

---

१ प्रदीप पंत, महामहिमा, कवर के प्रथम फ्लेप से उद्धृत

२ प्रदीप पंत, महामहिम, दो शब्द में से उद्धृत

यथार्थपूर्ण चित्र इस उपन्यास मे प्रस्तुत हुआ है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री चन्द्रजी ने गद्य-साहित्य के विविध रूपो का सृजन किया है। आपने लगभग ६० उपन्यास, १५ कहानी सग्रह तीन नाटक और पचास उच्च स्तरीय बाल साहित्य उपन्यास तथा अनेक रेखाचित्र, निबध, रिपोर्ताज आदि साहित्यिक विधाओ मे सृजन किया है। आपके राजस्थानी भाषा मे दो उपन्यास, तीन नाटक तथा एक कहानी सग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। उपन्यासो मे प्रमुख हैं—सन्यासी और सुन्दरी (१९६४), दिया जला दिया बुझा (१९५५), नया इन्सान (१९५६), खम्मा अन्नदाता (१९५८), सपना, खून का टीका, नयना नीर भरे (१९५९), बड़ा आदमी (१९६१), सावित्री (१९६३), ठकुराणी, सावन आखो मे (१९६४, एक और मुख्यमन्त्री (१९६६), घूघट और घुघरू (१९७०), जनानी ड्योढ़ी (१९७२), दौलत कुंजकली (१९८०), प्रजाराम (१९८३) आदि। प्रमुख कहानी-सग्रह-जकडन, खोल, दिल्ली कब्र बन गई, जाब भी पीडा राम की हत्या, पीटर बहुत बोलता है आदि। नाटको मे आन के दावेदार, शराब खराब है आदि का चन्द्रजी ने सृजन किया है।

मीरां पुरस्कार और फणीश्वरनाथ रेणु पुरस्कार प्राप्त 'हजार घोडो का सवार' उपन्यास चन्द्र जी की कथाकृतियों मे विशिष्ट स्थान रखता है। समीक्ष्य उपन्यास में तत्कालीन समाज में व्याप्त जातीय अत्याचारो एव सामाजिक अत्याचारो, बेरोजगारी, सूदखोरी, आदि विकृतियो का मार्मिक चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में आचलिक शब्दो के प्रयोग से पाठक तत्कालीन समाज से जुड जाता है। यह कृति साधारण मनुष्य के शोषण और उत्पीडन के खिलाफ यातनापूर्ण सघर्ष-यात्रा का दस्तावेज है। गीधू के चरित्र को देखकर यह आश्चर्य होता है कि मनुष्य कसी-कैसी स्थितियो से गुजरता है और कितनी पीडाओ को झेलकर भी जिन्दा रहता है। यह रचना मनुष्य की इसी अदम्य जिजीविषा को रेखांकित करती है। इसमें क्रूर सामती पूजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सर्वाधिक दलित शोषित लोगो के सूक्ष्म रचनात्मक तटस्थता के साथ यथार्थ अकन से लेखक ने जबरदस्त प्रभाव उत्पन्न किया है। अमानवीय स्थितियो में जीवन जीने वाले की कथा के साथ ही इसमें लेखक ने राजस्थान के सामाजिक जीवन का ही नही सारे देश के सामाजिक, राजनीतिक जीवन की पर्तें उदघाटित कर दी हैं। गीधू की सघर्ष यात्रा पाठक के हृदय को कपा जाती है। लेखक उपन्यास की सृजनात्मक प्रेरणा के बारे में अपना मत इस तरह व्यक्त कर रहे हैं—'हजार घोडो का सवार' की सजना प्रेरणा मुझे मेरे स्वर्गीय दोस्त भूतपूर्व ससद सदस्य श्री पन्नालाल बारूपाल के जीवन में मिली है। बारूपाल जी का जीवन सघर्षों और मानव जीवन के सभी आयामो को स्पर्श करता था। उसमें चढावो-उतारो का सिलसिला था। उनके जीवन की अनेक घटनाओ को मैंने आधुनिक परिवेश की स्थितियो को जोडकर बीकानेर के पिछले ५० साल का सम्पूर्ण जन साधा-

भव मत्यु, 'अन्तराल के याद' और 'आम आदमी का शव' नामक
प्रकाशित हुआ है। 'मैं गुट निरपेक्ष हूं', 'प्राइवेट सेक्टर का व्यंग्य
पुस्तक मे लेखक के व्यग्य लेखों एव कहानियों का सकलन है। कर
की दृष्टि से 'महामहिम' एक सुन्दर कृति कही जा सकती है।
नीति मे छुटभये गुटभये और टुच्चे लोग किस तरह नेता बन
लेखक ने आखो देखा हाल प्रस्तुत किया है। लेखक ने जनता स
काल को आधार बनाया है। व्यग्य शैली में लेखक ने मतमा
नग्न चित्र प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। यह
लागू न होकर सभी सरकारो पर लागू होता है। उपन्यास
और प्रवाह है। यह उपन्यास मूल्यहीनता पर प्रहार कर
राजनीति का विरोध करता है। सक्षेप मे कहा जा सकता
यह उपन्यास हमारे राजनीतिक जीवन और उसके
सशक्त अभिव्यक्ति होने के कारण एक जीवत दस्ता
हीन और अमानवीय राजनीति की अन्तकथा कहे
गई है।[1]

लेखक उपन्यास लिखने की प्रेरणा के बारे मे
और गुटभये नेता से मेरा परिचय है। मात्र ८
मैंने निराले परिवतन होते देखे। उनकी आवाज
रहन सहन बदल गया। उनसे जब भेंट होती,
आखिरकार यह उपन्यास लिखा गया। यद्यपि
लेकिन उनके जैसा चरित्र है। यद्यपि इस उप
हैं लेकिन वे सच पर आधारित हैं। उ
नोटस भी काम आ गए जिन्हे मैं पिछले

वक्तव्य है—'इस उपन्यास में वर्णित पात्र उत्सुकदास गुरुपद स्वामी, सोबीराम जैसे पात्रो के पीछे मुझे उनके असली चेहरे भी अक्सर नजर आये, जिससे यह अनुमान लगा कि श्री मिश्र ने वर्षों तक असली दारुल शफा के फेरे लगाकर इन राजनीतिक शतरंज के मोहरा की उठा पटक को बहुत बारीकी से देखा होगा।'[1] श्रीलाल शुक्ल का मत है कि 'दारुल शफा' एक बस्ती भी हो सकती है और संस्था भी, और काल्पनिक होते हुए भी आज की जिन्दगी में उस जगह है, जहा आपा धापी, हिंसा, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता और चापलूसी का हमारा जाना पहचाना यथार्थ, अपने विवरण की प्रखरता के कारण, बिल्कुल अजनबी ढंग से उभरता है और हमारी सामाजिक चेतना पर हमला बोलता है। दारुल शफा' आज की जिन्दगी का असली दस्तावेज है।[2] रामचन्द्र तिवारी का मत है कि 'दारुल शफा' राधाकृष्ण मिश्र का आज की सत्तालोलुप राजनीति और उसके अवमूल्यन का कच्चा चिट्ठा खोलने वाला यथार्थपरक उपन्यास है। इसकी कहानी कुछ घटा की है और उसका केन्द्र है—'दारुल शफा'। दारुल शफा ही एक प्रकार से इस उपन्यास का नायक भी है। दारुल शफा' एक स्थान न होकर एक विशेष प्रकार की भोग प्रधान संस्कृति का जीवन्त प्रतीक है।[3] आज की राजनीति में जिस प्रकार विचारो और आदर्शों के स्तर से नीचे उतर कर सत्ता प्राप्ति के लिए किए जाने वाले क्रूर और घृणित जोड़-तोड़ की राजनीति रह गयी है 'दारुल शफा' इसका प्रमाणित दस्तावेज है।

समय एक शब्द भर नही है
(धीरेन्द्र अस्थाना)

पिछले दिनो हिन्दी मे छोटे और अच्छे उपन्यास न सिर्फ सख्या मे अधिक लिखे गए, बल्कि उनमे बड़े आकार और फलक वाले उपन्यासो की तुलना मे समकालीन जिन्दगी का अधिक विश्वसनीय चित्रण किया गया है। इसी ढग का एक छोटा उपन्यास है—धीरेन्द्र अस्थाना का 'समय एक शब्द भर नही है' जिसमे युवा पीढी के जन आन्दोलन या युवा पीढी का नक्सली असंतोष और सत्ता का अधापन दिखलाया है। इस उपन्यास मे नक्सली आन्दोलन के कारणो व उसके मूल स्रोत को टटोलने का प्रयास किया गया है।

इस कृति के अतिरिक्त श्री धीरेन्द्र अस्थाना की अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियो मे 'आदमखोर' (उपन्यास) लोग। हाशिए पर (कहानी सग्रह) तथा 'कथा खण्ड

---

१ अमृतलाल नागर, दारुल शफा, भूमिका पृ० ५
२ श्रीलाल शुक्ल, दारुल शफा, फ्लेप (कवर) से अवतरित
३ रामचन्द्र तिवारी, समीक्षा, अप्रेल जून १९८३ पृ० ३९

एक' (सम्पादित कहानी सकलन) के नाम लिए जा सकते हैं।

'समय एक शब्द भर नही है' की सजन प्रेरणा के पीछे लेखक की नक्सली आन्दोलन की भावना रही होगी। इसमे लेखक ने नक्सली आन्दोलन के कारणो व मूल स्रोत को ढूंढने का प्रयास किया है। इसमे लेखक ने एक निश्चित विचार धारा को समथन प्रदान किया है। लेखक ने नक्सली आन्दोलन को जन समुदाय की सहानुभूति दिलाने का प्रयास किया है। भ्रष्ट राजनीत के नीचे आज की युवा पीढी किस तरह तबाह हो रही है। इन्ही विचारधारा से प्रभावित होकर लेखक ने इस उपन्यास की रचना की है। डा० देवेश ठाकुर का इस उपन्यास के सम्बन्ध म मत ह कि 'धीरेन्द्र अस्थाना ने जिस बेलौस तरीके से नक्सली सघष का समथन किया है, वह नए पुराने स्वेच्छाचारी लेखको के मुह पर एक तमाचा तो जडता ही ह साथ ही उन समीक्षको, आलोचको के षडयन्त्र की भी पोल खोल देता ह जो आज जसे विसगतिपूण समाज म भी साहित्य को जीवन से असपृक्त करके उसके कलागत सौन्दर्य को देखने-परखने की बात कहते हैं। इस छोटी सी कृत न यह प्रमाणित कर दिया है कि जीवन से निरपेक्ष साहित्य का कोई सौन्दय नही होता और जीवन का यथाथ और उसका सघष ही अतत साहित्य का वस्तुगत सौन्दय बन सकने की क्षमता से सम्पन्न होता ह।'[1]

शाति भग
(मुद्राराक्षस)

सन् १९८२ मे मुद्राराक्षस के 'शान्ति भग' का प्रथम सस्करण प्रकाशित हुआ। इसमे आपातकाल के तीन सालो के घणित इतिहास का वणन किया गया है तथा आज की भ्रष्ट राजनीति और राजनीतिज्ञो की घिनौनी और क्रूर शक्लो का लेखक ने मार्मिक एव यथाथ चित्र इस उपन्यास मे किया है। इस उपन्यास के अतिरिक्त लेखक ने साहित्य की अनेक विधाओ में साहित्य सजन किया है। विशेषकर नाटको मे इनका नाम प्रमुख नाटककारो मे लिया जाता है। नाटक प्रमुख है—'गुफाएं'। निबध—'सुनो भई साधो' के अतिरिक्त उन्होंने जो उपन्यास लिखे हैं उनमे प्रमुख हैं—अचला एक मन स्थिति, मसाराम भगोडा और कहानी सग्रह शब्द दश के नाम से प्रकाशित हुआ है। 'शान्ति भग' मुद्राराक्षस की कृतियो मे प्रमुख रचना कही जा सकती है। क्योकि इसमें लेखक ने आपात्काल के दौरान सामान्य जनजीवन व दलित वग पर किए गए शोषणा व अत्याचारो का वणन करने मे किसी भी प्रकार की कमी नही आने दी है। 'अपना' की सजना में लेखक ने कल्पना का सहारा लेकर आपातकाल को विभी-

१ डा० देवेश ठाकुर, सचेतना, पृ १३

पिका का वर्णन किया है। सर्जना के बारे मे कहा जा सकता है कि आपात्-काल मे उच्च वग द्वारा, सामान्य वर्ग पर किए गए अमानवीय व्यवहार निजी स्वार्थों के लिए अत्याचार किया जाना, स्थानीय नताशाही और नौकरशाही किस तरह खुलकर आपात्काल म खेली, निर्दोप व्यक्ति किस तरह से दडित किये गये। इससे प्रभावित होकर लेखक ने इस उपन्यास की रचना की। 'शान्ति-भग' के सम्बन्ध मे डा० आदश सक्सेना का मत ह कि —"शान्ति भग' आपात्-काल के जीवन की विभीषिका का पूर्वाग्रह मुक्त परन्तु मार्मिक आकलन प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया गया है। यद्यपि इसमे इतिहास कही नही है परन्तु वह है सब जो उन तीन वर्षों के घृणित इतिहास का आधार है।"[1] इसमे कोई कथा विशेष नही है। आपातकाल म सामान्य जन जीवन पर पडने वाली मार का विवरण है जो अनेक आदमी की पीडा अनेक चित्रो मे उभर कर हमारे सामने आई है। डा० सक्सेना का मत है कि—'फिर भी यह उपन्यास राजनीतिक उपन्यास नही, बल्कि एक ऐसा सामाजिक उपन्यास है जो समाज के राजनीतिक उत्पीडन की कथा कहता है, इस उत्पीडन के दशन का वाचक बना है।[2]

प्रजाराम
(यादवेद्र शर्मा चन्द्र)

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र रचित उपन्यास 'प्रजाराम' का प्रथम सस्करण १९८३ मे प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में आपात्काल और जनता शासन के छह मास के समय को आधार बनाया गया है। इस उपन्यास मे जहा आपातकाल के आतक, सत्रास, अत्याचार का वणन है तो वही आपातकाल की उन अच्छाइयो का वर्णन भी है जिसमे आम आदमी को कुछ समय के लिए राहत मिली थी। बहुमुखी प्रतिभा के धनी चन्द्र जी ने गद्य साहित्य के विविध रूपो का सजन किया है। चन्द्रजी ने लगभग ६० उपन्यास, १५ कहानी सग्रह, तीन नाटक और पचास उच्चस्तरीय बाल साहित्य उपन्यास तथा अनेक रेखाचित्र, निबध, रिपोताज आदि साहित्यिक विधाओ का सृजन किया। उपन्यासो मे प्रमुख हैं—'सन्यासी और सुन्दरी (१९६४), दिया जला दिया बुझा (१९५८) नया इन्सान (१९५६), खम्भा अन्नदाता (१९५८), सपना, खून का टीका (१९५९), नयना नीर भरे (१९५९), बडा आदमी (१९६१), सावित्री (१९६३), ठकुराणी, सावन आखो मे

---

१ डा० आदश सक्सेना, समीक्षा, अप्रैल जून ८३, पृ० २२

२ वही पृ० २२

'प्रजाराम' की सजनात्मक प्रेरणा पर श्री चन्द्रजी कहते

'प्रजाराम' की प्रेरणा व रचना काल आपातकाल के आरम्भ के छह मा[illegible] दौरान इसका सृजन हुआ था। उसकी प्रेरणा मुझे तत्कालीन प्रत्यक्ष [illegible]नाओं से हुई। मैंने सोचा कि एक ऐसा उपन्यास लिखा जाय जो नायक तथा तटस्थता से अन्वेषी दृष्टि से लिखा गया हो बस मैंने सजन आरम्भ किया और एक ऐसा उपन्यास जो उस काल को बताता है—लिख दिया। उपन्यास में मेरा निजी नजरिया है, जो यथार्थ को अपने ढंग से स्पष्ट करता है[1]

स-राज
(हिमांशु जोशी)

श्री हिमांशु जोशी कृत 'सु राज' कम पृष्ठों मे लिखा गया वृहद कथा को लिए हुए उपन्यास है। इस रचना मे लेखक ने वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था के सच्चे मगर कड़वे यथार्थ का चित्रण किया है। समानता की दुहाई देती इस व्यवस्था मे निम्न वर्ग कितनी पीड़मय जिन्दगी भोग रहा है। इसके लिए कानून, न्याय, समानता इत्यादि शब्द निरर्थक हो गये हैं। स्वयं लेखक के शब्दों मे सत्ता, शक्ति सम्पन्नता न्याय ये शब्द मात्र कुछ ही लोगो तक सीमित रह गए हैं। [illegible]न प्रतिदिन बढ़ती अर्थ की महत्ता अनेक अनर्थों के द्वार खोल रही है। राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक शिष्टाचार का पर्याय बन गया है।[2] कथानायक [illegible] अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाता है लेकिन उच्च तबके द्वारा उसकी

---

१ यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' से साक्षात्कार [illegible]

२ हिमांशु जोशी, सु राज, पृ० ४

आवाज पूर्ण रूप से दबा दी जाती है।

श्री हिमांशु जोशी अपनी पीढ़ी के अग्रणी कथाकार हैं। इनकी रचनाएँ सहज, सरल, मार्मिक आदि विशेषताएँ लिए हुई मिलती हैं। इनके प्रमुख उपन्यास हैं—अरण्य, महासागर, छाया मत छूना मन, समय साक्षी है, तुम्हारे लिए आदि। 'कगार की आग' पहाड़ी जीवन के इस उपन्यास मे जोशी जी ने समाज के सम्पन्न लोगो के मानसिक स्तर पर तीखा प्रहार किया है। कहानियो के क्षेत्र मे भी इनका कम महत्वपूर्ण योगदान नही है। अन्तत रथचक्र, मनुष्य चिह्न, जलते हुए डैने हिमांशु जोशी की विशिष्ट कहानियाँ तथा कहानी सग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं।

'सु-राज' की सजनात्मक प्रेरणा के बारे मे लिखते हैं—'सु राज जब लिख रहा था तो लगा कि बिना अधिक विस्तार दिए ही, रचना स्वय समाप्त हो गई। इसका घटनाक्रम बहुत लम्बा है, अत किसी भी सीमा तक इसे विस्तृत किया जा सकता था, किन्तु कम से कम शब्दो मे अधिक से अधिक समेटने के सहज प्रयास के कारण उपन्यास बनते बनते यह उपन्यासिका बन गई।' मनुष्य और मनुष्य के बीच की दूरी निरन्तर बढ रही है। ऐसी विकट स्थिति मे जो ईमानदार है, ईमानदार बने रहना चाहता है। वह कसे जिए ? जो असमर्थ है—असहाय, वह दुबल पाँव आस्था की किस धरती पर कहाँ टिकाए ? 'सु राज' का 'गागि का या देव' के जीवन की क्या यही विडम्बना नही ? जो विचार या साहित्य समाधान नही दे सकता वह पगु होता है गूगा। दृष्टि होते हुए भी दृष्टि हीन होता है। जब स्थिति ऐसी है तो क्या साहित्य का दायित्व कुछ और अधिक बढ जाता ? मेरा जीवन आरम्भिक काल कुमाऊ के पर्वतीय प्रदेश हिमाचल की तराई तथा नेपाल की सीमा रेखा के समीप बीता है। 'सु राज' मे कुमाऊ पर्वतीय क्षेत्र की पृष्ठभूमि पर लिखा है। कहानी का उद्देश्य जीवन सघर्ष को प्रदर्शित करना है। जिन्दा रहने के लिए मरना का।'[1]

कथानायक गागि गरीबो की लडाई का अगुआ है। जिस कारण उसकी हत्या कर दी जाती है। उनका बेकसूर बेटा देवा हत्या और डकैती के जुल्म मे जेल में ठूस दिया जाता है। 'गागि की हत्या साधारण हादसा न होकर पूरे शोषित समाज की हत्या थी। गरीबो को हर वक्त शापित की रात समाप्त होने का इतजार है। निश्चय ही हिमांशु जोशी की यह कृति भ्रष्ट राजनीति द्वारा गरीबो के सूखते आँसुओ का यथार्थ दस्तावेज है।

(१९६४), एक और मुख्य मत्री (१९६९) घूघट और घुघट (१९७०), जनानी ड्योढी (१९७२), ढोलन कुजक्ली हजार घोडा का सवार (१९८१) प्रजाराम (१९८३)। प्रमुख कहानी सग्रह— जकडन खोल दिल्ली कब्र बन गई जनक की पीडा, राम की हत्या पीटर बहुत बोलता है आदि। नाटको मे आन के दावदार, शराब खराब है, तास का घर तथा अन्य वाल उपयोगी रचनाओ की सृष्टि चन्द्र जी ने की है।

'प्रजाराम' कथ्य और शिल्प की दृष्टि से एक उत्तम रचना कही जा सकती है। उपन्यास की कथा सरपट-सी भागती सी नजर आती है। इसकी घटना एक दूसरे से इतनी करीब और एक दूसरे से इतनी जुडी है कि पाठक उसमे मग्न-सा हो जाता है। आपातकाल के विषय को लेकर लिखे गए उपन्यासो मे 'प्रजाराम' एक विशिष्ट स्थान बनाए रखता है। इसकी भाषा सरल, सुबोध ललित एव रोचक है। सवाद पात्रानुकूल हैं।

'प्रजाराम' की सजनात्मक प्रेरणा पर श्री चन्द्रजी का कहना है कि— 'प्रजाराम' की प्रेरणा व रचना काल आपातकाल के आरम्भ के छह माह है। उसी दौरान इसका सृजन हुआ था। उसकी प्रेरणा मुझे तत्कालीन प्रत्यक्ष घट नाओ से हुई। मैंने सोचा कि एक ऐसा उपन्यास लिखा जाय जो नायकहीन हो तथा तटस्थता से अपनी दृष्टि से लिखा गया हो बस मैंने सजन आरम्भ कर दिया और एक ऐसा उपन्यास जो उस काल को बताता है—लिख दिया। इस उपन्यास मे मेरा निजी नजरिया है, जो यथार्थ को अपने ढग से स्पश करता है।'[1]

स-राज
(हिमाशु जोशी)

श्री हिमाशु जोशी कृत 'सु राज' कम पृष्ठो मे लिखा गया वृहद कथा को लिए हुए उपन्यास है। इस रचना मे लेखक ने वतमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था के सच्चे मगर कडवे यथार्थ का चित्रण किया है। समानता की दुहाई देती इस व्यवस्था मे निम्न वग कितनी पीडमय जिन्दगी भोग रहा है। इसके लिए कानून न्याय, समानता इत्यादि शब्द निरथक हो गये हैं। स्वय लेखक के शब्दो मे सत्ता शक्ति सम्पन्नता न्याय ये शब्द मात्र कुछ ही लोगो तक सीमित रह गए हैं। दिन प्रतिदिन बढती अथ की महत्ता अनेक अनर्थों के द्वार खोल रही है। राजनीतिक भ्रष्टाचार सामाजिक शिष्टाचार का पर्याय बन गया है।'[2] कथानायक गाणि अत्याचारो के विरद्ध आवाज उठाता है लेकिन उच्च तबके द्वारा उसकी

---

१ यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' से साक्षातकार के दौरान उद्घाटित विचार।
२ हिमाशु जोशी, सु राज, पृ० ४

आवाज पूर्ण रूप स दबा दी जाती है।

श्री हिमाशु जोशी अपनी पीढ़ी के अग्रणी कथाकार हैं। इनकी रचनाएँ सहज, सरल, मार्मिक आदि विशेषताएँ लिए हुई मिलती हैं। इनके प्रमुख उपन्यास हैं—अरण्य, महासागर, छाया मत छूना मन, समय साक्षी है, तुम्हारे लिए आदि। 'कगार की आग' पहाड़ी जीवन के इस उपन्यास म जोशी जी ने समाज के सम्पन्न लोगो के मानसिक स्तर पर तीखा प्रहार किया है। कहानियो के क्षेत्र मे भी इनका कम महत्वपूर्ण योगदान नही है। अन्तत रथचक्र, मनुष्य चिह्न, जलते हुए डने हिमाशु जोशी की विशिष्ट कहानियाँ तथा कहानी सग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं।

'सु-राज' की सर्जनात्मक प्रेरणा के बारे मे लिखते हैं—'सु राज जब लिख रहा था तो लगा कि बिना अधिक विस्तार दिए ही, रचना स्वय समाप्त हो गई। इसका घटनाक्रम बहुत लम्बा है, अत किसी भी सीमा तक इसे विस्तृत किया जा सकता था, किन्तु कम से कम शब्दो मे अधिक से अधिक समेटने के सहज प्रयास के कारण उपन्यास बनते बनते यह उपन्यासिका बन गई।' मनुष्य और मनुष्य के बीच की दूरी निरन्तर बढ रही है। ऐसी विकट स्थिति मे जो ईमानदार है, ईमानदार बने रहना चाहता है। वह कसे जिए? जो असमर्थ है—असहाय, वह दुबल पाव आस्था की किस धरती पर कहा टिकाए? 'सु राज का गागि का या देब' के जीवन की क्या यही विडम्बना नही? जो विचार या साहित्य समाधान नही दे सकता वह पगु होता है गूगा। दृष्टि होत हुए भी दृष्टि हीन होता है। जब स्थिति ऐसी है तो क्या साहित्य का दायित्व कुछ और अधिक बढ जाता? मेरा जीवन आरम्भिक काल कुमाऊ के पवतीय प्रदेश हिमाचल की तराई तथा नेपाल की सीमा रेखा के समीप बीता है। 'सु राज' म कुमाऊ पवतीय क्षेत्र की पृष्ठभूमि पर लिखा है। कहानी का उद्देश्य जीवन सघष का प्रदर्शित करना है। जिन्दा रहने के लिए मरने का।'[1]

कथानायक गागि गरीबो की लडाई का अगुआ है। जिस कारण उसकी हत्या कर दी जाती है। उनका बेकसूर बेटा देवा हत्या और डकैती के जुल्म मे जेल मे ठूस दिया जाता है। 'गागि' की हत्या साधारण हादसा न होकर पूरे शोषित समाज की हत्या थी। गरीबो को हर वक्त शोषित की रात समाप्त होने का इतजार ह। निश्चय ही हिमाशु जोशी की यह कृति भ्रष्ट राजनीति द्वारा गरीबो के सूखते आँसुओ का यथार्थ दस्तावेज है।

□

३ कथ्य-विश्लेषण

औपन्यासिक कथ्य सैद्धांतिक स्वरूप-विवेचन

उपन्यास के रचना विधान के सम्बन्ध में अधिकांश विद्वानों ने छह तत्व—कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, देशकाल, भाषा शैली एवं उद्देश्य स्वीकार किये हैं। इन तत्वों में कथानक को उपन्यास का प्रमुख तत्व माना गया है। इसके लिए अनेक शब्द प्रचलित हैं। यथा कथावस्तु, विषय वस्तु, इतिवृत्त कथा, वस्तु, वृत्त आदि। कथा के अभाव में उपन्यास का अस्तित्व ही संभव नहीं है। कहानी ही उपन्यास का विषय है। उपन्यास अन्ततः एक कहानी है एक कहानी की तरह ताजी दिलचस्प और कथनीय।[1] डा० प्रतापनारायण टण्डन कथानक को उपन्यास की नींव कहते हुए लिखते हैं—'कथानक ही वह वस्तु होती है जिस पर उपन्यास का भवन खड़ा होता है।'[2] पश्चिम के प्रसिद्ध समालोचक फास्टर ने भी उपन्यास में कथानक की ही प्रधानता को स्वीकार किया है।[3] कथानक ही वास्तव में उपन्यास का वास्तविक आधार ही उपन्यासकार अपनी कथाकृति की सृजना करता है। कथानक के आधार पर ही उपन्यास का ढांचा निर्मित होता है।

कथ्य-चयन के विविध स्रोत

डा० प्रताप नारायण टंडन ने हिन्दी उपन्यास के प्रेरणा-स्रोत के रूप में प्राचीन भारतीय कथा साहित्य को प्रमुख माना है तथा कथा साहित्य में कथा

---

१ विलियम हनरी हडसन एन इन्ट्रोडक्शन एन टू द स्टडी आफ लिट्रेचर (१९५४), पृ० १३६

२ डा० प्रतापनारायण टंडन, हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास (१९५९) पृ० ७५

३ ई० एम० फास्टर, आस्पेक्ट आफ द नाविल, पृ० २७

शिल्प के विभिन्न रूपों का आधार धार्मिक, पौराणिक, नीति प्रधान, लोक तत्व प्रधान ऐतिहासिक एवं कल्पनात्मक माना है।[१] कथावस्तु के चार प्रमुख स्रोत होते हैं। इतिहास, पुराण, सम सामयिक घटना चक्र और लेखकीय कल्पना।[२] इस परिप्रेक्ष्य में आज के उपन्यासों का अध्ययन-अनुशीलन किया जा सकता है।

कथानक के प्रकार एवं कथात्मक संयोजन की विशेषताएं

उपन्यास के कथानक का सृजन किस प्रकार होना चाहिए तथा उसमें क्या-क्या गुण एवं विशेषताएँ होनी चाहिए, इस संदर्भ में साहित्य शास्त्रियों ने विशद् विवेचन प्रस्तुत किया है। डॉ० टंडन ने सम्बद्धता, मौलिकता निर्माण कौशल, सत्यता और रोचकता को अच्छे कथानक के गुण माने हैं।[३] हडसन ने उपन्यास के कथा चयन में उसके प्रस्तुतीकरण की विधि और व्यवस्था की दृष्टि से उपन्यास के कथानक का दो प्रकार से माना है—सुव्यवस्थित और अव्यवस्थित।[४] डॉ० रामदत्त भारद्वाज के मतानुसार कथानक के संगठन और विन्यास में कार्य कारण सम्बन्ध, मनोवैज्ञानिक क्षण, उत्कंठा, संघर्ष, भविष्य संकेत, चर्मोत्कर्ष और सत्याभास का होना सामान्यतः आवश्यक है।[५] डॉ० कैलाश प्रकाश के अनुसार व्यवस्था एवं अन्विति कथा वस्तु के मुख्य गुण हैं, घटनाओं का उपयोगी चयन, सहज विकास, स्वाभाविक गति, अकृत्रिम क्रम बंधन और निश्चेष्ट परिणति कथावस्तु को सफल बनाते हैं।[६] औत्सुक्य भी उपन्यास के कथानक की एक विशेषता होनी चाहिए। रिचर्ड चर्च के अनुसार कथानक की सजीवता इसमें है कि वह पग पग पर पाठकों को चकित करता जाए।[७] डॉ० श्यामसुन्दरदास ने सुगमता, स्वाभाविक एवं मनोमुग्धता को श्रेष्ठ कथानक के गुण स्वीकार किए हैं।[८] उपन्यास के कथानक को प्रस्तुत करने के लिए अनेकों शैलियों का प्रयोग किया जाता है जैसा आत्म कथात्मक वर्णनात्मक, डायरी शैली, पत्रात्मक आदि। इस विवेचन के आधार पर हम कथानक की निम्नलिखित विशेषतायें निर्धारित कर सकते है—

१ कथानक का स्वाभाविक विकास हो।

---

१ हिन्दी उपन्यास मे कथाशिल्प का विकास, पृ० १३६
२ डॉ० देवीप्रसाद गुप्त, हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य, पृ० २४
३ हिन्दी उपन्यास मे कथा शिल्प का विकास, प० ७६ ७६
४ डब्ल्यू०एच० हडसन, द स्टडी आफ प्रोज फिक्सन पेज, पृ० १४४
५ डॉ० रामदत्त भारद्वाज, काव्यशास्त्र की रूपरेखा, पृ० २११
६ डा० कैलाश प्रकाश, प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास, पृ० २५
७ रिचर्ड चर्च—द ग्रोथ आफ इंगलिश नाविल पृ० १६७

२ कथानक मे औत्सुक्य एव रोचकता का सुन्दर समन्वय हो।
३ कथानक का समायोजन कल्पना शक्ति का प्रयोग करते हुए सर्वथा मौलिक हो।
४ घटनाओं मे सुसम्बद्धता हो।

समीक्ष्य उपन्यासो का कथ्य-विश्लेषण

एक और मुख्यमंत्री

कथासार

'एक और मुख्यमंत्री' उपन्यास का कथानक वर्तमान भारतीय राजनीतिक परिवेश है। इस उपन्यास का प्रमुख आधार नायक अरविंद को बनाया गया है। अरविंद एक मध्यम वर्गीय परिवार का सुशिक्षित महत्वाकांक्षी किन्तु बेरोजगार नवयुवक है। वह पारिवारिक जीवन के प्रति लापरवाह है।[1] इसी बेकारी के पीछे व्यंग्य बाण सहने पड़ते हैं वह आहत हो जाता है—'जमाना आने दो भाभी, आकाश के तारे भी तोड़कर ले आऊंगा।'[2] इतना कहकर अरविंद हमेशा के लिए सोना (भाभी) निम्मा और अपने पिता तुल्य भाई चाद को छोड़कर चला जाता है। बाद मे सोना को अपनी भूल का अहसास होता है तब तक अरविंद दूर जा चुका होता है। जिस भाभी के तानों से घर छोड़ना पड़ता है, बस यही उसके लिए वरदान हो गया।[3] अरविंद अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए हिन्दू महासभा का नेता बन जाता है। वह दिन भर समिति के कार्यों मे व्यस्त रहता है और रात को विभिन्न जन नेताओं के साथ अरविंद अपनी ओजपूर्ण वाणी के सहारे हिन्दू महासभा का प्रमुख नेता बन जाता है। अरविंद के राजनीतिक जीवन की पहली विजय ठाकुर नरेन्द्रसिंह को हत्या के आरोप से मुक्त करवाना। इससे उसकी अपने समुदाय मे इज्जत बढ़ी बल्कि आर्थिक लाभ की प्राप्ति भी हुई।

अरविंद अवसरवादी पात्र है। वह अपनी महत्वकांक्षाओं की पूर्ति के लिए और शरणार्थियों के वोट प्राप्त करने हेतु गुलाब नाम की अपहृता शरणार्थी युवती से विवाह करके वह न केवल उसके पिता मनराम की अपार सम्पत्ति का स्वामी बन जाता है अपितु शरणार्थियों का प्रिय नेता भी। इस प्रकार शादी मे भी राजनीति और दान मे भी राजनीति का खेल खेला।[4] अरविंद वाक-पटुता,

---

१ डॉ० देवदत्त शर्मा हिन्दी के सामंती चेतनापरक उपन्यास पृ० ६६
२ एक और मुख्यमंत्री, पृ० ६
३ सरिता (पाक्षिक), द्वितीय (सितम्बर, १९७१) से उद्धृत
४ रतनलाल शर्मा, नया शिखर, अक्टूबर दिसम्बर, ७२, पृ० ३५७

दूरदर्शिता, कर्मठता और प्रतिभा के बल पर हिन्दू महासभा से त्यागपत्र देकर कांग्रेस की सदस्यता प्राप्त कर चुनाव लडता है और बहुमत से विजयी हो जाता है।[1] अरविंद अपने मे मुख्यमत्री बनने की अदम्य आकाक्षा लिए हुए है। इसके लिए वह विभिन्न प्रकार के भ्रष्टाचार, हिंसा, अनाचार, तिकडम करता है। मुख्यमत्री बनने की आकाक्षा और तीव्र होती जाती है। वह चाहता था कि—'सब पर उसका कब्जा हो, कॉंग्रेस की सारी मशीनरी पर उसका कब्जा हो, सब उसके इशारो पर चलें।'[2] मुख्यमत्री बनने की अदम्य आकाक्षा को लिए हुए सब प्रकार की तिकडमी और दुष्चाइयो को काम मे लेकर वह मुख्यमत्री बन जाता है।[3] अरविंद अपने बचन की सहपाठी और पहली प्रेमिका शची को आड मे अनेक घृणित हथकडे अपनाता है और अनेक राजनीतिज्ञो को अपदस्य करता है। गुलाब जैसी सुन्दरी और पतिव्रता नारी के होते हुए भी—शची और सरया (रेवन्यू मत्री श्री सरोज की पुत्री) व न जान कितनी अन्य सामाजिक एव राजनीतिक क्षेत्र मे तथाकथित प्रगतिशील नारियो के साथ देह व्यापार करता है।[4] अरविंद के प्रयत्न स्वरूप शची मुख्यमत्री बन जाती है जिससे उसके विरोधियो को मुह की खानी पडती है। वह शची को अपने हाथ की कठपुतली रखना चाहता था पर वसा नही हुआ।[5] और शची को अपदस्य कर फिर से मुख्यमत्री बन जाता है। विरोधियो का भय उसके मन म इतना गहराई से समा जाता है कि वह मानसिक रोगी बन जाता है।[6] अनेक प्रकार के राजनीतिक कुचक्रो और जघन्य कृत्यो की ममव्यथा अरविंद के मस्तिष्क मे ऐसी हीन ग्रथियो और कुण्ठाओ को जन्म देती है कि वह अन्तत आत्मघात करके अपने सत्तालोलुप महत्वाकाक्षी एव विलासी जीवन का अन्त कर लेता है।[7]

कथ्य विश्लेषण

प्रस्तुत उपन्यास की रचना का मुख्य उद्देश्य स्वातन्त्र्योत्तर भारत की राजनीति के विघटनशील परिवेश और पतनशील नतत्व का यथाथ चित्रण करना है।[8] उपन्यासकार के शब्दो मे—'देश के राजनैतिक जीवन को बीस वर्षों की

१ वसती पत हिन्दी उपन्यास रचना विधान और युग बोध, प० ३८
२ यादवचन्द्र शर्मा चन्द्र, एक और मुख्यमत्री, पृ० ६६
३ हिन्दी उपन्यास रचना विधान और युग बोध, पृ० ३८
४ हिन्दी उपन्यास रचना विधान और युग बोध, पृ० ३८
५ रत्नलाल शर्मा—नया शिक्षक, अक्टूबर-दिसम्बर, ७३, पृ० ३५७
३ सरिता, सितम्बर द्वितीय, प० १६७१
७ हिन्दी उपन्यास रचना विधान और युग बोध, पृ०३८
८ वही, प० ४३

यह गाथा है—मेरा उपन्यास।"[1] हमारे देश की स्वातन्त्र्योत्तरकालीन राजनीति मे व्याप्त धूर्तता भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, राष्ट्र द्रोहिता, दल-बदल राजनीति की विडम्बनाओ, नृशसताओ, खोखले आदर्शों, व्यभिचारो एव हमारे बनावटी जीवन से सम्बन्धित घटना क्रम को प्रस्तुत करने मे लेखक को प्रभूत सफलता मिली है।[2] कथाकार ने हमारे बदलते हुए समाज को पेश किया है जिसका मूल आधार राजनीति है। हमारा आज का सामाजिक जीवन वैसे ही राजनीति प्रधान हो गया है, पर इसमे तो मूलत वे ही पात्र उठाए गए हैं जो पूरी तरह राजनीति मे डूबे हुए हैं।[3]

'एक और मुख्यमत्री' इस दृष्टि से भी एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है कि इसने राजनीति की मक्कार शक्ल के बारे मे विशद सूचनाएँ देने का प्रयास किया है।[4] अरविन्द के लम्बे सवादो से कथानक मे शिथिलता उत्पन्न होती है। एक घटना के बाद दूसरी घटना घटती रहती है जो पाठक के मस्तिष्क पर अमिट छाप छोडती है। कही वर्णनात्मक, कही नाटकीय तो कही पूर्व दीप्ति शैली मे कथानक के प्रस्तुतीकरण से कथानक मे सरसता एव रोचकता की निरन्तर अभिवृद्धि होती है।[5] अगर हिन्दी के दस बारह श्रेष्ठ उपन्यासो का नाम लिया जाए तो 'एक और मुख्यमत्री' उनमे से एक है।[6] एक और मुख्यमत्री एक महाकाव्यात्मक श्रेष्ठ उपन्यास है।[7] इस उपन्यास मे यथार्थ जीवन का चित्रण है, कल्पना सिर्फ इस बात को सजाने की है। कथाकार की पकड बडी मजबूत और उसकी दृष्टि सूक्ष्म है।[8]

सबहि नचावत राम गुसाई

कथासार

भगवती बाबू के इस उपन्यास मे स्वतन्त्र भारत की एक सच्ची, मजेदार और व्यग्यपूर्ण तस्वीर पेश की गयी है।[9] प्रस्तुत उपन्यास मे पात्रो के चरित्रो, मनोभावो को उजागर विस्तृत फलक पर किया गया है। भगवती बाबू के उपन्यासो

---

१ मैं इतना ही कहूगा (एक और मुख्यमत्री की प्रस्तावना से उद्धृत)
२ हिन्दी के सामती चेतनापरक उपन्यास पृ० ७०
३ नया शिक्षक, अक्टूबर दिसम्बर ७२, पृ० ३२६
४ प्रभातकुमार त्रिपाठी—ज्योत्स्ना, पृ० ५८
५ डॉ० देवदत्त शर्मा—हिन्दी के सामती चेतनापरक उपन्यास, पृ० ७०
६ नया शिक्षक, अक्टूबर-दिसम्बर ७२, पृ० ३२६
७ डॉ० देवीप्रसाद गुप्त—उपन्यास के अतिम फ्लैप से उद्धृत
८ रत्नलाल शर्मा—समाज कल्याण अतिम पृष्ठ
९ डॉ० गोपालराय—समीक्षा पत्रिका, पूर्णांक १३, जुलाई ७०, पृ० २

मे व्यक्तियो की नही पूर परिवेश की प्रधानता होती है, व्यक्ति प्राय उस पूरे परिवेश का अग होता है, वह कही भी उस पर हावी नही होता।'[1] भगवतीचरण वर्मा ने आधुनिक युग का चित्र प्रस्तुत किया है जो आज विसगतिया से भरा पड़ा है। उसको उन्होने व्यग्यात्मक शैली मे प्रस्तुत किया है।

उपन्यासकार ने उपन्यास को चार भागो मे विभक्त करके अपनी बात को क्रमबद्ध रूप से विस्तार दिया है। प्रथम भाग 'राधेश्याम-वृद्धि' अध्याय मे आज का व्यापारी किस तरह पूजीपति और उद्योगपति बनता है, उसके विकासक्रम को आधार बनाया गया है। घासीराम की परचून की दुकान है और उसका एक मात्र पुत्र मेवालाल पढाई के साथ-साथ रुपयो के लेन देन का काम भी करता है। राधेश्याम जो घासीराम का पोता था, राधेश्याम के अन्नप्राशन सस्कार के समय पुरोहित जी को दक्षिणा देने के सम्बन्ध मे बाप बेटो मे झगडा हो जाता है और मेवालाल घासीराम के थप्पड मार देता है। मेवालाल के इस व्यवहार से दुखी होकर अपना सब कुछ उसे देकर तीर्थ यात्रा पर निकल पडता है। घासीराम के जाने के बाद उसने रकम लेन देन का काम शुरू कर दिया। तिकडम भिडा कर वह अपने घर के सामने वाली हवेली खरीद लेता है और वहाँ मेवालाल एण्ड सन्स के नाम से कम्पनी खोल लेता है। लेखक उसके चरित्र को प्रकट करता हुआ कहता है—'अगर घासीराम डाडी मारने मे कुशल थे तो मेवालाल जालसाजी और तिकडमबाजी मे आस पास के किसी तिकडमबाजी जालसाजी से कमजोर नही पडता था।'[2] मेवालाल का काम चल पडता है। साल भर होने के बाद भी घासीराम नही लौटता है तो तो वह (मेवाराम) उसकी (घासीराम) इच्छानुसार नगरपालिका के पार्क पर कब्जा कर मन्दिर बना लेता है। वह जातीयता और धर्म के नाम पर चन्दा इकट्ठा कर मन्दिर का विस्तार करवा देता है। घासीराम डेढ साल बाद लौट आता है। अपने पोते राधेश्याम को शिक्षा देने लगता है। मेवालाल ने नकली खाते बही बनाने का काम शुरू किया जिससे उसकी आय बहुत अधिक होने लगी। मेवालाल राधेश्याम को पढ़ाने के लिए विलायत भेज देता है, वहाँ उसकी मुलाकात जैसुखलाल से होती है, वह उससे सौदा करके एक फ्लावर मिल की मशीन खरीद लेता है जिसे कानपुर मे स्थापित कर लेता है। राधेश्याम की शादी हीरालाल की पुत्री गगा से कर दी जाती है। गगा के आगमन से उसका व्यापार चरम बिन्दु की ओर बढने लगा, जिसस उसकी गणना देश के ही नही बल्कि विश्व के उद्योगतियो मे होने लगी।'[3] पहला खण्ड जिसमे राधेश्याम के पितामह, पिता और स्वय उसके विकास

---

१ डा० गोपालराय—समीक्षापत्रिका, पूर्णांक १३, जुलाई ७०, पृ० २
२ भगवतीचरण वर्मा—सबहि नचावत राम गुसाई, पृ० १५
३ सबहि नचावत राम गुसाई, पृ० ५१

की कहानी कही गयी है किस्सागोई की दृष्टि से रोचक होने के साथ साथ पूंजीवादी विकास का चित्र प्रस्तुत करती ह ।[1]

दूसरे भाग का नाम 'भाग्य' है । नाहरसिंह जो डकत है, उसकी वीरता देख कर महिधर अपनी जमीदारी नाहरसिंह का सौंप कर कलकत्ता चला जाता है । नाहरसिंह को राठौर वश का वशज घोषित कर दिया जाता है । वह अपने मित्र गनेशी को लेकर डाका डाला करता है जिससे वह अपना भरण-पोषण करता है । वह अपनी पुरानी प्रेमिका भमरी स शादी करके उस ठकुराइन भानमती बना देता है । साल भर के बाद उसके पुत्र केहरसिंह होता है । ओतारीलाल के घर डाका डालते वक्त गोली लगने से नाहरसिंह मृत्यु को प्राप्त होता है । केहरसिंह जमीदारी का स्थान ग्रहण कर लेता है । उसकी शादी रघुराजसिंह आगरा वाले की पुत्री लक्ष्मी के साथ कर दी जिससे जबरसिंह नाम का लडका उत्पन्न होता है । उस पढाने के लिए आगरा भेज दिया जाता है । वहाँ वह कांग्रेस म शामिल हो जाता है । वह तिकडम लगाकर शहर का प्रमुख नेता बन जाता है । जब्बरसिंह अपनी कूटनीतिक चाल और गुण्डागर्दी स विधायक बना जाता है और बाद म राज्य का गृहमन्त्री ।

तीसरा अक जिस लखक ने 'भावना' नाम दिया है । गोपालराय के अनुसार व रामलोचन का जनमत कहना अधिक पसन्द करेंगे । भावना की सज्ञा अगर किसी का देनी ह तो जब्बरसिंह की पत्नी शान्तकौर को दी जा सकती है ।[2] राजा पृथ्वीपाल की शादी शलजा स करवा दन पर रामसमझु को कुछ गावो की जमीदारी पृथ्वीपाल द देता ह । रामसमझु ब्राह्मण होत हुए भी शराब और मांस मछली का शौकीन ह । कमलनयन अपनी पुत्री नन्दनी की शादी रामसमझु से कर देता ह । जिसस रामसिंहासन नाम का पुत्र उत्पन्न होता है । उच्च शिक्षा ग्रहण कर यह ताल्लुके का भार सभाल लता है । राम सजीवन को पढने के लिए विलायत भज दिया जाता है । इसका सारा खच प्रभादेवी (रामसिंहासन की पत्नि) देती है । वह लौटते वक्त एक अग्रेज मम से शादी कर आता है । रामसमझु की मृत्यु क पश्चात् वह जायदाद का हिस्सा मागने लगता है और कोट मे इसके लिए मुकदमा दायर कर देता है । रामसिंहासन के तीन पुत्र हैं । राम उदित रामानुज और रामलोचन । रामलोचन को छाड दोनो ऐय्याशी हैं । रामानुज कला प्रमी है और रशीदा नाम की लडकी को अपन साथ बम्बई भगा ले जाता है । रामलोचन के सामने ही उसकी दुनिया नष्ट हो रही थी इस मुकद मेबाजी, रामउदित की फिजूलखर्ची तथा रामानुज के बीस हजार रुपये लेकर गायब हो जाने के फलस्वरूप उसके पिता सिंहासन पर पचास हजार का कर्जा

---

१ गोपालराय—समीक्षा, अक-१३ जुलाई ७०, पृ० ३
२ वही, पृ० ३

हो जाता है।[1] राजा पृथ्वीपाल का पोता महिपालसिंह रामलोचन को गृहमंत्री जब्बरसिंह से मिलवाता है। उसकी पत्नी धनवंत कुवर उसकी भुआ निकल आती है तथा उसी की सहायता से रामलोचन थानेदार और बाद मे शहर का कोतवाल, डी० एस० पी० बन जाता है।

इस उपन्यास का महत्त्वपूर्ण भाग 'उठा-पटक' है जिसमे उद्योगपतियो और कांग्रेस मंत्रियो की साठ गांठ मंत्रियो की आपसी फूट और उनकी शतरंजी चालें, मजदूर संघों के नेताओ के खोखले व्यक्तित्व साहित्यिक गोष्ठियो मे होने वाली खुशामद और झूठी तारीफों आदि का व्यंग्यात्मक चित्र अंकित किया गया है।[2] सेठ राधेश्याम जबरसिंह की सहायता से कृषि अनुसंधानशाला और ट्रैक्टर की फैक्टरी खोलने के नाम पर जमीन प्राप्त कर लेता है साथ ही लाख एक करोड रुपयों के शेयर भी सरकार को भेंज देता है। लेकिन किसानो के विरोध के कारण वह भूमि पर कब्जा नही कर पाता है। जबरसिंह के भाई हिम्मतसिंह को कृषि अनुसंधानशाला का मैनेजर बना दिया जाता है। रामलोचन शहर कोतवाल का स्थान ग्रहण कर लेता है और वह पद अपनी गरिमा और ईमानदारी से निभाता है। जबरसिंह का आदमी और धनवंतकौर का भतीजा होने के कारण रामलोचन निरन्तर उन्नति करने लगा। राधेश्याम की पत्नी गंगा देवी द्वारा धनवंत कुवर का अपमान किए जाने पर रामलोचन राधेश्याम को गिरफ्तार करने की ठान लेता है। राधेश्याम ब्लैक मार्केटिंग, तस्करी व अन्य अवैध गैर-कानूनी कार्य करता है। कृषि अनुसंधानशाला के उद्घाटन वाले दिन वारंट रद्द होने के बाद भी रामलोचन राधेश्याम को गिरफ्तार कर लेता है। रामलोचन की इस हरकत से जबरसिंह उससे नाराज हो जाता है और उसको सस्पैण्ड कर दिया जाता है। प्रभावती के कहने पर वह नौकरी से इस्तीफा देकर चुनाव लडने की ठान लेता है। वह जबरसिंह के सामने आगरा क्षेत्र मे खडा हो जाता है और वह जबरसिंह से बारह सौ नौ वोटो से जीत जाता है। रामलोचन विरोधी पक्ष का महत्त्वपूर्ण सदस्य और विधायक बन जाता है। लेखक रामलोचन का व्यक्तित्व व्यक्त कर कहता है, 'सब विधायक उसका आदर करते हैं, सब अफसर उसका आदर करते हैं। साथ ही उससे लोग डरते भी है क्योंकि गाली गलौज और मार पीट मे वह किसी से कम नही पडता था।'[3] जबरसिंह को कौंसिल का मैम्बर बना दिया जाता है।

कथ्य विश्लेषण

'सबहिं नचावत राम गोसाईं' मे स्वतंत्र भारत की एक एक सच्ची, मजेदार

१ सबहिं नचावत राम गुसाईं, पृ० १३७
२ गोपालराय—समीक्षा अंक १३, जुलाई ७०, पृ० ३
३ सबहिं नचावत राम गोसाईं, पृ० २८३

और व्यंग्यपूर्ण तस्वीर पेश की गई है। भगवतीचरण वर्मा ने अपने उपन्यासों में व्यापक सामाजिक राजनीतिक चित्रफलक पर व्यक्ति पात्रों के मनोभावों को उभारने का प्रयास करते हैं। इसी बात को उन्होंने अपने इस उपन्यास के सभी पात्रों के आंतरिक व बाह्य मनोभावों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। उन्होंने इस उपन्यास को व्यंग्यात्मक शैली में लिखा है। उनके किसी भी पूर्ववर्ती उपन्यास में व्यंग्य प्रभावशाली रूप में नहीं उभर पाया है। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' इस दृष्टि से एक पठनीय उपन्यास है। डा० गोपालराय का मत है कि—'कलात्मक उपलब्धि की दृष्टि से कदाचित इस उपन्यास को बहुत ऊँचा दर्जा न दिया जा सके, पर यह एक पठनीय उपन्यास है।'[२]

काली-आंधी

कथासार

कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'काली आंधी' में आधुनिक नारी का राजनीतिक क्षेत्र में योगदान व उसकी सफलता का चित्र अंकित किया है। उनकी अपने लिए निर्धारित सनातन मूल्यों से घोर टक्कर होती है। उन्हें घर और बाहर के संघर्षों का सामना करना पड़ता है। राजनीतिक क्षेत्र में सफलता के लिए उन्हें अनेक तिकड़मों की शरण लेनी पड़ती है और वे भी कार्य करने पड़ते हैं जो परम्परागत दृष्टि से नारी के लिए निषिद्ध समझे जाते हैं। राजनीति में स्त्री के आने से पति और संतान से सम्बन्ध नाम मात्र के रह जाते हैं। स्त्री के सफलता प्राप्त करने के बाद पति पत्नी में परस्पर वैमनस्य और ईर्ष्या प्रज्वलित हो जाती है। कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'काली आंधी' में आधुनिक नारी के इसी संघर्ष को प्रस्तुत किया है। उपन्यास की नायिका मालती अपने पति जग्गी बाबू द्वारा निरंतर प्रोत्साहन देने के कारण वह राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कर लेती है। जग्गी बाबू मालती को भाषण लिखकर देते थे। इस तरह मालती भाषण देने के अभ्यास के कारण एक सफल राजनीतिक वक्ता बन गई। जग्गी बाबू खजुराहो में अपना होटल चलाते थे। जिला परिषद के चुनाव मालती की पहली राजनीतिक विजय थी और यहीं से जग्गी बाबू को अपना छोटापन व अपमानित होना पड़ा था। मालती के स्वागत समारोह के वक्त मंच पर जाते वक्त एक वालंटियर द्वारा रोका जाना ही उनकी जिन्दगी का पहला अपमान इस जीत के कारण सहना पड़ा था। जग्गी बाबू के होटल के कारण मालती को बदनाम किया जाने लगा। इस बात को लेकर मालती और जग्गी बाबू में झगड़ा होता है और जग्गी बाबू अपनी एक मात्र पुत्री लिली को लेकर कहीं और चले जाते हैं। वे जाते वक्त अपना होटल भी बन्द कर जाते

---

२ गोपालराय, समीक्षा, जुलाई १९७०, पृ० ३

हैं। जग्गी बाबू लिली को पंचमढ़ी के स्कूल और वहीं के होस्टल मे भर्ती कर भोपाल के गोल्डन सन होटल के असिस्टेंट मैनेजर और फिर बढते-बढते मैनेजर हुए और वही रहने लगे। लिली पचमढी मे पढती रही। उसे अपनी माँ से मिलने का मौका ही नही मिला और मालती जी चुनाव जीतती जीतती एक दिन मिनिस्टर हो गई। इस बार ससद के चुनावो मे भोपाल क्षेत्र मिला था। वे वहाँ कुछ प्रभावशाली स्थानीय सामाजिक और राजनीतिक लोगो से सम्पर्क आरम्भ करती है। उन्हे आत्मविश्वास हो जाता है कि वे इस चुनाव को अवश्य जीत पायेंगी। वे जातिगत मोहल्ला के प्रभावशाली व्यक्तियो को अपना मुख्य कार्यकर्ता बना लेती हैं। बनिया के वोट प्राप्त करने के लिए वे लाला दामोदर को खड़ा कर देती है जो बाद मे मालती के समर्थन मे बैठ जाता है। मालती जी अपने कार्यकर्ताओ के साथ होटल गोल्डन सन मे निवास करने आती है, तो वहाँ जग्गी बाबू को देखकर चौक पडती है। वह गुरुसरन के माध्यम से लिली और जग्गी बाबू के हाल चाल ज्ञात करती है। मालती को देखकर जग्गी बाबू रात भर टैरेस मे टहलते रहे और मालती जी भी रात को अच्छी तरह से सोई नही। जग्गी बाबू मालती जी की पसद का खाना होटल मे बनाने लगे थे उनके सोने आदि की व्यवस्था भी उनकी रुचि के आधार पर कर दी जो सम्बन्ध बिगडने से पहले उन्हे ज्ञात थे। अगले रोज से मालती जी ने चुनाव के कार्यक्रमो मे रुचि लेना आरम्भ कर दिया।

विरोधी लोग जातिवाद के नामपर वोट इकट्ठे करने लगे थे। इस्लाम खतरे में कहकर वोट इकट्ठे किए जा रहे थे। शहर में साम्प्रदायिकता के दगे भड़कने आरम्भ हो गए थे। मालती जी के चुनाव कार्यालयो पर हमले विरोधियो द्वारा किये जाने लगे। फिर भी वे झुकने को तैयार नही थी। जग्गी बाबू और मालती के सम्बन्धों को लेकर विरोधियो द्वारा पर्चे बाँटे जाने लगे। मालती जी ने जग्गी बाबू को सभा मे ले जाकर सबके सामने स्पष्ट रूप से जग्गी बाबू की तरफ इशारा कर कहा कि—'जी ! यही है मेरे पति। पति परमेश्वर, मेरे दोस्त मेरे प्रेमी और मेरे यार। जो कुछ भी हैं, यही हैं। और ये मेरे साथ आपकी अदालत म मौजूद हैं।'[1] यह कहकर मालती जी ने अपनी जीत का पक्का रास्ता बना दिया था।

छुट्टिया होने की वजह से जग्गी बाबू लिली को भोपाल ले आये थे। लिली चुनाव देखकर मस्त सी रहने लगी थी। चुनाव नजदीक आते जा रहे थे। सब लोग इसमे व्यस्त से नजर आ रहे थे। आखिर चुनाव हो गये। पहले तो विरोधी गुट के लोग आगे चल रहे थे। लेकिन भाग्य ने ऐसा पल्टा खाया कि मालती जी की अपने निकटतम प्रतिद्वन्दी से सात हजार वोटो मे जीत हुई। स्वागत समारोह म लिली मालती जी से आटोग्राफ लेने जाती है, लेकिन वे उसको पहचान नहीं पाती हैं। पता लगते ही उनका ममता रूपी हृदय पिघल सा जाता है। वे

१ कमलेश्वर, काली आँधी, पृ० ६१ ६२

लिली से मिलने के लिए आतुर हो उठती हैं। लिली से मिलते ही उसको अपनी गोदी मे उठा लेती हैं और उसके मुह पर चुम्बनो की बौछार लगा देती हैं। खुशी के मारे आँखो से दो चार अश्क भी बह निकलते हैं। लेखक ने यहा पर मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। वे लिली व जग्गी बाबू को दिल्ली ले जाना चाहती थी, लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी नही थी कि वे उनको अपने साथ ले जाती। लिली आगे पढने के लिए पचमढी फिर चली जाती है।

कथ्य विश्लेषण

कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'काली आँधी' मे आज की राजनीतिक क्षेत्र की नारी की विवशता जो उसने इस क्षेत्र मे प्राप्त की है नारी को राजनीतिक क्षेत्र मे सफलता के लिए किन परम्परागत नियमो को तोडना पडता है, पति और सन्तान से सम्बन्ध विच्छेद करने पडते हैं आदि परिस्थितियो का मार्मिक चित्रण किया है। मालती और जग्गी बाबू के सम्बन्ध विच्छेद से उत्पन्न स्थिति से उपजे द्वन्द्व का बढ़िया चित्रण किया है।' 'काली आँधी' का कथानक देश की ऐसी समसामयिक राजनीति से प्रभावित है, जिसमे नैतिक मूल्यो का ह्रास हुआ और भ्रष्टाचार का विकास हुआ। पात्रो के मनोवैज्ञानिक क्षणो की पकड मे भी कमलेश्वर सफल रहे हैं। इसकी सफलता इसके फिल्मीकरण व उसकी प्रसिद्धि से लगाई जा सकती है। गोपालराय का मत है कि काली आँधी' को कोई श्रेष्ठ औपन्यासिक कृति नही माना जा सकता। कमलेश्वर ने समस्या को रोमानी अन्दाज मे ही प्रस्तुत किया है और मध्यमवर्गीय सिने दर्शक और पाठक की भावुकता को जगाने मे भी वे नही चूके हैं। इस कथ्य के माध्यम से कमलेश्वर ने आज के राजनीतिक भ्रष्टाचार की ओर भी सकेत किया है, पर यह सकेत मात्र से आगे नहीं जा सका है। एक फिल्मी कहानी के लिए इससे अधिक की आवश्यकता भी शायद नही थी।[1] आज की राजनीति मे चलने वाली उठक पटक का पूरी सजीवता के साथ 'काली आँधी' के पात्रो ने जिया है। यह ईमानदारी से कही गई कहानी यथार्थ के इतने नजदीक है कि पाठक आद्योपात इसका रस लेता है।

राग-दरबारी

कथासार

साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास-लेखन मे भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् राजनीतिक जन जीवन को मुख्य मुद्दा बनाया गया है और उसके सामाजिक मनोविज्ञान को बडे सशक्त स्वरो मे उभारा एव निखारा गया है। इस दृष्टि से सर्वा

१ गोपालराय, समीक्षा, मई-अगस्त १९७५, पृ० ७२

धिक महत्वपूर्ण उपन्यास श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' (१९६८) है। जो आज की राजनीति के घृणित, क्रूर कारनामों एवं पक्षों को बड़ी ईमानदारी के साथ उभारती है। डा० आदित्यप्रसाद त्रिपाठी का कहना है कि—'राग-दरबारी' औपन्यासिक परम्परा की हदों को तोड़ती हुई अपनी शिल्पगत प्राविधि की 'टोन' में व्यंग्यात्मकता के नयेपन की नोक पर सृजनात्मकता की नई सरहदों का स्पर्श करती है जो इस विधा के सम्प्रेषण की कलात्मकता में एक नया मोड़ है, जिससे व्यंग्य के सामर्थ्य की पहचान गहरी होती है।'[1]

कृति के कथा केन्द्र में शिवपालगंज है जो न गाँव है, और न ही कोई कस्बा। उसकी शख्सियत दोनों के बीच की है। चाहे तो इसे हम कस्बानुमा गाँव कह सकते हैं। 'राग दरबारी' के कथ्य के सम्बन्ध में डॉ० चन्द्रकान्त बांदिवडेकर का कथन है कि शिवपालगंज—राजनीति के बलात्कार से कलंकित हुआ है और उसकी कलंक गाथा ही 'राग-दरबारी' का कथ्य है।'[2] इसे विशुद्ध गाँव मानने में कठिनाई यह है कि यहाँ थाना, कालेज, कोआपरेटिव यूनियन, मिठाई एवं पसारियों की दुकानें हैं। ये सब मिलकर इसे एक सामान्य भारतीय गाँव की शक्ल नहीं देते हैं। वास्तव में यह सब एक कस्बे की निशानी है। टाउन एरिया वाली दर से ज्यादा टैक्स देने के भय से शायद इसे गंजहों ने गाँव ही रहने दिया। यहाँ के लोगों को गंजहा कहा जाता है। लोग-बाग इन गंजहों को मुँह लगाना नहीं चाहते, क्योंकि ये गंजहे साले बड़े लुच्चे व कांइयाँ किस्म के लोग होते हैं। ये लोग अपने आप पर भी भरोसा नहीं करते हैं।

शिवपालगंज के केन्द्र में वैद्यजी और उनकी कोठी आबाद है। वैद्यजी इस कृति के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। इनकी 'पहुँच' बहुत व्यापक और हाथ लम्बे हैं। परिवेश की विकृतियों को उभारने में रचनाकार ने वैद्यजी के व्यक्तित्व और उनकी मानसिकता को गहराई एवं विस्तार से उठाया है। इन्हीं की छत्र छाया में कालेज गुटबंदी का अखाड़ा बना हुआ है, कोआपरेटिव यूनियन पर इनका कब्जा है, ग्राम प्रधान इनकी इच्छा पर नियुक्त होता है। इनकी कोठी सामंतों के दरबार की प्रतीक है। ये जीवन से निराश युवकों को आशा का संदेश देते हैं। वे हर बीमारी का कारण व्यक्ति का वीर्य-क्षय होना बताते है। उनके कथन में गीता, गाँधीवाद, धर्मयुद्ध, प्रेम, अहिंसा प्रजातन्त्र आदि समाहित हैं।

कालेज के प्रिंसिपल साहब वैद्य जी के आदमी हैं अध्ययन-अध्यापन में जाहिल किस्म के आदमी हैं। पूरा व्यक्तित्व तिकड़म वाला है। खन्ना विरोधी लेक्चरार है। हमेशा इन दोनों में तना-तनी का मौसम कायम रहता है। खन्ना और मालवीय गुट का प्रधान भीखम खमेड़ी और गयादीन है। कालेज में

१ डॉ० आदित्यप्रसाद त्रिपाठी, औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षाएँ, पृ० १३३
२ डा० चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, उपन्यास स्थिति और गति, पृ० २८५

मैनेजर का चुनाव तमचे के बल पर पुन वैद्यजी प्राप्त कर लेत हैं । इसकी शिकायत सभी विरोधी लोग शिक्षा विभाग तक लिख भेज देत हैं । छोटा पहलवान जो वैद्य जी के बडे लडके बद्री पहलवान का चेला, शिष्य है । वह एक दिन अपने बाप कुसहर प्रसाद की पिटाई कर देता है और कुसहर छोटे पर मुकदमा ठोक देता है । यहाँ के लोगो का सामाजिक पेय 'भाग' मानी जाती है । इसम बदाम, पिस्ता, किसमिस मिला कर पीसी जाती है ।

शिवपालगज की कोआपरेटिव यूनियन मे गबन की योजना वैद्यजी इस लिए बनाते हैं ताकि उनकी ईमानदारी पर शक न किया जा सके । इधर कुछ दिनो के बाद वद्यजी की रुचि गाँव सभा म और जाग लगी थी । प्रधान के लिए वैद्यजी ने मगलदास उफ सनीचरा को इस पद के लिए योग्य समझा । वद्य जी की कृपा और चुनाव की महिपालपुर वाली पद्धति के सहारे सनीचरा गाँव सभा का प्रधान बन गया । बिना दुम का बन्दर, मूख, मसखरा, शिवपालगज का एक निठल्ला गाँव सभा का प्रधान सनीचरा था । सनीचरा की विजय लोकतान्त्रिक मूल्यो एव प्रणाली के खोखले हो जान का सबूत है । लगड जो नकल प्राप्त करने की लगा तार कोशिश कर रहा है । हर बार उसे असफलता ही प्राप्त होती है क्योकि वह बाबू को रिश्वत देना नही चाहता है । बिना रिश्वत आज के समाज मे कोई काय असम्भव है । रिश्वत आज सवमान्य मूल्य बन चुका है। ऐसे कामो से वद्य जी के भानजे रगनाथ को बेहद घणा होती है । बद्री पहलवान गयादीन की पुत्री बेला से शादी करना चाहता था । लेकिन गयादीन को यह पसन्द नही था । उसकी शादी कही और पक्की करने की सोचने लगा । खन्ना और प्रिंसिपल मे कालेज मे हाथा पाई हो जाती है । पुलिस मे रिपोट दज करा कर इसकी शिकायत डिप्टी डायरेक्टर को की जाती है । वे समझौता कराने आने वाले थे । उससे पहले ही वैद्य जी खन्ना से इस्तीफा लिखवा लेते हैं । प्रिंसिपल इस पद के लिए रगनाथ को ग्रहण करने का कहता है पर तु वह साफ इकार कर देता है । 'राग दरबारी' उपन्यास मे गाँवो म चलने वाली राजनीति व उसके हथकण्डो का मार्मिक तथा यथाथ चित्रण किया गया है ।

कथ्य विश्लेषण

श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'राग दरबारी' रचना जिन्दगी, हिन्दुस्तान के गाव की हालत इस दुनिया की पुलिस, थानो, अफसरो स्कूलो विद्यार्थियो, प्राचार्यो ग्राम के राजनीतिज्ञ और उनके चगुल मे पडी सहकारी सस्थाओ सबके घणित करनामो एव पन्नो को बडी ईमानदारी के साथ उभारती ह ।[1] राग दरबारी की रचना हास्य 'कोटेड' व्यग्य की धार पर खडी ह । हिन्दी उपन्यास

---

१ डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे, मधुमती, अप्रैल ८२, पृ० ४६

मे पहली बार व्यग्य को इतना विस्तार मिला। यह कहना गलत न होगा कि सम्भवत 'राग दरबारी' हिन्दी उपन्यास की पहली रचना है जिसमे वृहद स्तर पर व्यग्य को निरन्तर बनाये रखा जा सका है।[1] इतने बडे पैमाने पर व्यग्य को उठाने का यह हिन्दी मे पहला ही प्रयास है। परम्परागत हिन्दी की औपन्यासिक शैली मे एक नया प्रयोग है और यही इसकी निजता एव वशिष्टयता भी है। इसकी भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है जो पाठक के मस्तिष्क पटल पर अपना विशिष्ट स्थान रख जाती है। पाठक की जिज्ञासा लगातार क्रियाशील रहती है।

कटरा बी आर्जू

कथासार

'कटरा बी आर्जू' आपातकाल (जून १९७५ मार्च १९७७) की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास है। 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास के रूप में एक [illegible] राजनीतिक टिप्पणी है। 'कटरा बी आर्जू' मे आपातकाल में [illegible] पर किये गए अमानवीय अत्याचार, विरोधी स्वर दबाने को [illegible], पुलिस का अत्याचार जेल मे सामान्य व्यक्ति के साथ [illegible], नगरो की खूबसूरती के नाम पर अत्याचार, ज्यादतियो और [illegible] और परिवार नियोजन प्रसार आदि अत्याचारो का राही [illegible] 'कटरा बी आर्जू' मे हृदयस्पर्शी सरल और सुबोध भाषा मे [illegible] करने का प्रयास किया है। जिसमे वे पूर्ण रूप से सफल भी हुए हैं। [illegible] मे आपातकाल का आँखो देखा हाल प्रस्तुत किया [illegible] है। [illegible] को पढकर आपातकाल को भूल पाना कठिन होगा।[2]

रजा ने प्रस्तुत उपन्यास में निम्न [illegible] पात्रो के माध्यम से प्रस्तुत किया है। [illegible] (नन्हू) को सरल ज्यादा अभावो के बावजूद [illegible], [illegible] की और सहानुभूति, आशाओ आकाक्षाओ [illegible] परस्पर प्यार जिन्दगी का राही मासूम रजा ने [illegible] दोनो से भरी इमर्जेंसी का माहौल खडा करते है। [illegible] है। इसके बाद रजा इर्द गिर्द इस उपन्यास का [illegible] है। [illegible] है जिनके देशराज रहते है जो [illegible] है। [illegible] नुक्कड पर पहलवान [illegible] है। 'कटरा [illegible]' [illegible] है। यही [illegible]

---

१ डॉ० [illegible] और [illegible]
२ डॉ० [illegible] पृ० ८

व्यक्ति का आना जाना है लेकिन वह इस मौहल्ले मे नही रहता है। पेशे से पत्रकार और वामपथी है। बिल्लो जो पहलवान की भानजी है जो यहाँ पर 'जनता लाण्डरी' नाम से लाण्डरी चलाती है। वह देश से प्रेम करती है और वह उससे शादी इसलिए करना नही चाहती है कि उसका अपना निजी मकान नहीं है। वह मकान बनाने की खातिर एक एक पैसा दाँत से पकड इकट्ठा कर रही है। मम्मू मिया के दो लडकियाँ हैं महनाज और शहनाज। महनाज बेवा (विधवा) हो चुकी है, बाद मे उसका निकाह जोखन मियाँ के साथ होता है और यह नसबन्दी और परिवार नियोजन का प्रसार करती करती नेता बन जाती है। शहनाज मास्टर बदल हसन पर फिदा है। आपातकाल की घोषणा पहलवान देशराज और बिल्लो के सरल स्वभाव को ताडकर रख देती है। देशराज, बिल्लो तथा शहनाज और मास्टर बदल हसन के सपने धूल म मिल जाते हैं। प्रेमा जो आशाराम की प्रेमिका है, किसी बात को लेकर इन दोनो मे अलगाव हो जाता है। प्रेमा आकाशवाणी मे न्यूज रीडर है। आपातकाल के कारण देशराज और दूसरी तरफ प्रेमानारायण जैसे सहज विश्वासी युवको को अमानवीय अत्याचारों का सामना करना पडता है। इस आपातकाल मे शहनाज और जोखन मियाँ जैसे टुच्चे लोग नेता बन जाते हैं। चालाक राजनीतिज्ञ की तरह फायदा उठाते हैं। नगरो के सौन्दर्य के नाम पर मकानो पर बुलडोजर चला दिया जाता है। जब बिल्लो के मकान पर बुलडोजर चलाया जाता है तो वह उसके आगे आकर शहीद हो जाती है। बदल हसन की जबदस्ती नसबन्दी कर दी जाती है जबकि वह शादी शुदा नही होता है। पुलिस के घोर अमानवीय अत्याचारो के कारण देशराज पागल हो जाता है।

रजा ने प्रस्तुत उपन्यास मे आपातकाल की कडी आलोचना की है। पर उनकी राजनीतिक दृष्टि धुधली नही है। उन्होंने उपन्यास के अन्त मे तथा कथित सम्पूर्ण क्रांति के नाम पर दल बदल कर जनता पार्टी मे होने वाले स्वार्थी नेताओ की असलियत की ओर सकेत किया है। आपातकाल के उपरान्त इन्दिरा गाँधी की पराजय हुई और जनता पार्टी का शासन स्थापित हुआ, पर जल्दी ही इस पार्टी के अन्तर्विरोध उभर कर सामने आने लगे। थोडे ही दिनो मे पार्टी टूट गयी। आज इस पूजीवादी अथ व्यवस्था ने राजनीति को पूर्ण रूप से दूषित और भ्रष्ट बना दिया है। आज की राजनीति धन, गुण्डागर्दी और छल प्रपच पर आधारित है।

कथ्य विश्लेषण

'कटरा बी आर्जू' आपातकाल (जून १९७५ मार्च १९७७) की घटना पर आधारित उपन्यास है। 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास के रूप मे एक मार्मिक राज-

नीतिक टिप्पणी है ।[१] राही मासूम रजा कुशल कथाकार हैं वे अपनी कहानी को बड़े करीने और मौलिकता के साथ नियोजित करते हैं । किस्सागोई मे वे बड़े दक्ष हैं यदि उनके उपन्यासो मे थोडी सी भावुकता और थोडा सा रोमास होता तो वे हिन्दी के इतने लोकप्रिय कथाकार होते कि विमल मित्र जसो को कोई पूछता नही ।'[२] यह इमरजेंसी और उसके बाद की राजनीतिक स्थिति पर करारा व्यग्य है, जिसका जोड मिलना कठिन है । इस व्यग्य की धारा ने 'कटरा बी आज' को महत्वपूण उपन्यास बना दिया ह ।[३] इस उपन्यास मे रोचक सवादो की भरमार है । सवादो की रोचकता राही की अपनी शैली का चमत्कार है । बात कहने की उनकी अपनी अदा ह ।[४] इसकी भाषा इन पात्रो की जिन्दगी का, उनके पूरे व्यक्तित्व का पर्याय हो गयी ह । इतनी अटपटी, हिन्दी व्याकरण की दष्टि से बेतरतीब अपभ्रष्ट शब्दो से युक्त भाषा को इतना व्यग्यपूण, अथवान व्यजना-युक्त और सटीक सजनात्मक बात भाषा बनाना राही जैसे प्रतिभा के ही बूते की बात है ।[५] एक ओर समीक्षक उनकी सफलता बता रहे हैं तो दूसरी ओर जुग-मन्दिर तायल इसे एक असफल रचना घोषित करते हुए कहते हैं—आपात-स्थिति के तनाव भरे वातावरण मे बुलडोजर ड्राईवर मकान तोडते समय अपने साथ ट्राजिस्टर भी रखते थे, यह विश्वसनीय नही लगता है ।[६] 'कटरा बी आजू' मानवीय पीडा या जिजीविषा का मार्मिक चित्रण करने वाली रचना नही बन पायी है, आपातस्थिति के अत्याचारो का नाटकीय चित्रण करन वाली रचना हो गयी है । अनेक स्थानों पर अति नाटकीयता के कारण यह कृति सवेदना जगाने के स्थान पर खीझ और झुझलाहट भी उत्पन्न करती है ।'[७] इस तरह समीक्षकों ने उपन्यास के सदभ मे अपने कथन कहे । निष्कपत यह कहा जा सकता है कि मानवीय सवेदना, आजू ओ, आपातकाल के अत्याचारो का यथाथ चित्र प्रस्तुत करने मे रजा सफल हुए है ।

महाभोज

कथासार

मन्नू भण्डारी ने 'महाभोज' मे आपातकाल के बाद कांग्रेस की पराजय

१ गोपालराय, शिविरा दस्तावेज २, सन् ८१, पृ० ८

२ हरदयाल, समीक्षा, माच अप्रैल ७६, अक ११ १२, पृ०२७ ३१

३ गोपालराय, समीक्षा, माच अप्रैल ७६,, अक ११-१२

४ हरदयाल, वही, पृ० २८

५ गोपालराय वही, पृ० ३२

६ जुगमन्दिर तायल, वही, पृ० ३४

७ जुगमन्दिर तायल, समीक्षा, मार्च-अप्रैल अक ११-१२, पृ० ३४

और जनता पार्टी के शासन काल के समय को उपन्यास का आधार बनाया है। यह मन्नू भण्डारी का 'आपका बंटी' के बाद का व उनका दूसरा उपन्यास है। 'महाभोज आज के राजनीतिक जीवन म आयी हुई मूल्यहीनता, तिकड़मबाजी, शतानियता और सड़ाध का चित्रण करने वाला उपन्यास है।[1] आज की राज नीति ने जीवन का अर्थहीन और विषाक्त बना दिया है। इसी पूंजीवादी व्यवस्था न राजनीति को पूणत भ्रष्ट और दूषित बना दिया ह। मन्नू भण्डारी ने महाभोज मे इसी राजनीति का वणन किया है।[2]

'महाभोज यथार्थवादी उपन्यास है। इसम बिसेसर की हत्या और उसस जो लोग राजनीतिक लाभ उठा रहे है उसका वणन किया गया है। बिसेसर जिसकी हत्या कर दी जाती है। हत्या के कुछ दिनो बाद चुनाव होन वाले हैं। बिसेसर का गाव सुकुल बाबू के चुनाव क्षेत्र मे आता है। ये भूतपूव मुख्यमत्री हैं और काग्रेस के टिकट से चुनाव लड रहे ह। उनका लखन से सीधा मुकाबला है, जिस तत्कालीन मुख्यमत्री दा साहब का समथन प्राप्त है। लखन दा साहब के सम्मुख हत्या का आरोप अपने ही गुट के सदस्य जोरावर पर लगाता है और उसे भय है कि यही बात उसकी पराजय का कारण बन सकती है क्योकि बिसू हरिजन वग से सम्बंधित था। इस बात को लेकर उसम और दा साहब में बहस होती ह, वह उस समय आवेश म आ जाता है तो दा साहब उस नम्रता से समझाते हैं। आवेश राजनीति का दुश्मन ह राजनीति मे विवक चाहिए। विवेक और धीरज।[3] उधर सुकुल बाबू बिसू की हत्या का ज्यादा से ज्यादा राजनीतिक लाभ उठाना चाहते हैं। वे दा साहब स पहले बिसू के गाव मे सभा करना चाहते हैं और जल्द सेजल्द उन्होने सभा का आयोजन किया लेकिन बिसू का बाप हीरा शहर जा चुका होना है। हीरा के न होन के कारण उनका आना सफल सिद्ध नही हुआ। दा साहब ने दत्ता का सरकारी विज्ञापन, कागज का डबल कोटा देकर उसके पत्र 'मशाल' को अपना राजनीतिक हथियार बना लिया और दूसरी तरफ त्रिलोचनसिंह दा साहब के विरुद्ध अपनी स्थिति मजबूत करने मे लगा था। उसे विश्वास था कि वह जल्द ही विधान सभा म दा साहब के विरुद्ध अविश्वास रखने वाला है और उसमे विजयी होगा। लेकिन दा साहब ने विरोधी विधायको का महत्वपूण पद देकर त्रिलोचन का स्वप्न भग कर दिया। अब दा साहब जल्द से जल्द बिसू के गाव म सभा करने की योजना बनाने लग। उस गाँव मे उन्होने घरेलू उद्योग योजना का प्रसार किया। उनकी सुरक्षा का समुचित व्यवस्था की। मतक बिसू के पिता हीरा से लघु उद्योग योजना का

२ गोपाल, समीक्षा, अक्टूबर दिसम्बर ८०, अक-४, पृ० ३२

३ गोपालराय, शिविरा दस्तावेज २, सन् ८१, पृ० ६

१ मन्नू भण्डारी, महाभोज, पृ० १८

उद्घाटन कराके उसका हृदय जीत लिया। बिन्दा जो बिसू का दोस्त है वह एक मात्र व्यक्ति था जो सभा मे व्यवधान उत्पन्न करता है। दा साहब एस० पी० सक्सेना को बिसू की हत्या के सम्बन्ध मे बयान लेने भेजते हैं तो दा साहब उसे बतलाता है कि वहाँ पुलिस वाला रवैया न अपनाकर उनके साथ उदारता और नम्रता के साथ बयान लिया जाय। दा साहब कहते हैं—'देखो सक्सेना किसी के साथ जोर जबरदस्ती या सख्ती न हो, मिठास से पेश आओ' लोगो मे हिम्मत और हौसला जगे और व अपनी बात कहे बिना डर के कहें खुल कर कहे। गाँव वालो को लगना चाहिए कि उन्हें बोलने का मौका मिला है। हमे उन लोगो की विश्वास जीतना है।[१] इस बात को सक्सेना पूर्णरूप से निभाता है और बहुत से व्यक्तियो से यह बयान लेता है। वह बिसू का केस आत्म-हत्या का घोषित कर देता है। गाँव वाले इसका विरोध करते हैं तो पुन जाच होती है और पता चलता है बिसू की हत्या बिन्दा और उसकी पत्नी रुक्की द्वारा की गई है। इस उपन्यास म अनक चेहरे दिखलाये गय हैं जो सत्ता की लड़ाई म लड रहे है।

कथ्य विश्लेषण

'महाभोज' मे आज की राजनीति मे व्याप्त भ्रष्टाचार, अनतिकताए, तिकड़मबाजी का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। आज की राजनीति मे धन, गुण्डागर्दी और छल प्रपच का प्राधान्य हो गया है। उपन्यास लेखिका का राजनीतिक जीवन का अनुभव उसका निजी भोगा या उसके बीच मे गुजरा अनुभव न भी हो, उसन उस इस कौशल से प्रस्तुत किया है कि उसमे कही भी अविश्वसनीयता नही नजर आती है।[२] उपन्यास मे दा साहब राव चौधरी, सुकुल जी आदि राजनीतिक प्रतिनिधित्व करते है जो तरह तरह के चेहरे धारण किये सत्ता की लड़ाइ लड रह है तो दूसरी ओर हीरा, लोचन, एस० पी० सक्सेना व्यवस्था म पिस रहे है। इस प्रकार बुर्जुआ राजनीति के घिनौने चेहर को बेनकाब करने म मन्नू भण्डारी को अपने उपन्यास म सफलता मिली है।[३] सबसे खतरनाक शतान वह होता है जो ऊपर से सत दिखता है। दा साहब सत के एक नही अनक चहर एक पर एक चढाये रहते हैं, जिसके नीचे उनकी शतानियत खुलकर खेलती है। दा साहब की सफलता का यही राज है।[४] मन्नू भण्डारी उपन्यास लेखन की दिशा मे अपन बनाये प्रतिमानो को लाघन मे सफल हुई है, फिर भी 'महाभोज' निश्चय ही एक 'अच्छा' उपन्यास है, यानि

१ मन्नू भण्डारी, महाभोज, पृ० ६७
२ गोपाल, समीक्षा अक्टूबर दिसम्बर ८०, अक-४, पृ० ३२
३ गोपालराय, शिविरा दस्तावेज २ सन् ८१, पृ० ६
४ गोपाल, समीक्षा, अक्टूबर-दिसम्बर ८०, अक-४, पृ० ३२

इस उपन्यास को दोबारा पढ़ा जा सकता है। उपन्यास में अनेक स्थल पाठक को झकझोरने में सफल हैं और रोचकता तो शुरू से अन्त तक बनी रहती है। इसमें घटना एक दूसरे से जुड़ी हुई है जो पाठक को पूरा उपन्यास पढ़ने को विवश करती है जैसे चिगू की हत्या का रहस्य अन्त तक बना रहता है। इसलिए कहा जा सकता है कि महाभोज पाठक को शुरू से अन्त तक पढ़ने को विवश कर देता है।

जंगल तन्त्रम्

कथासार

'जंगलतन्त्रम्' उपन्यास में जानवरों को प्रतीक बनाकर लेखक ने आज की राजनीति और समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, चोर बाजारी आदि शोषणों को जानवरों के माध्यम से प्रस्तुत किया है तथा आज की राजनीति में नेताओं द्वारा भाषणों में आश्वासन देने की प्रक्रिया का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। समीक्ष्य उपन्यास में सिंह 'राजनेता' मोर 'प्रशासक' नाग 'पूंजीपति' चूहा 'आम आदमी' का प्रतीक और लोमड़ी भालू, छिपकली, भेड़िया जनता के प्रतीक हैं। प्रस्तुत उपन्यास में आजादी के तत्पश्चात पच्चीस वर्षों की कथा को पच्चीस रातों की कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रमुख चार जन्तुओं के माध्यम से लेखक ने आज की राजनीति के तहत चलने वाली तथाकथित लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में यथार्थ चित्रांकन में भारतीय राजनीति के परखचे उड़ाये हैं। नाग पूंजीपति का प्रतिनिधित्व करता है। जिसके जाल में छटपटाते हुए आम आदमी का वर्णन उपन्यासकार ने किया है। ऐसी ही स्थिति आज की शासन-व्यवस्था में है। आम आदमी पूंजीपतियों के जाल में फंसा हुआ है, वे उनका खून चूसने में कोई कसर नहीं रखते। आज की राजनीति में नेता और पूंजीपतियों में किस तरह गठबंधन बैठ जाता है उसका यथार्थ चित्र लेखक ने खींचा है। लेखक यह कहानी नानी के माध्यम से बच्चों के सामने प्रस्तुत करता है।

जब सिंह मोर, नाग, चूहा एक दूसरे को मारना चाहते हैं तो शिवजी नाराज होकर उन्हें मृत्युलोक में भेज देते हैं। यहां आकर सिंह एक जंगल का प्रमुख नेता बन जाता है मोर उसका प्रशासक (सलाहकार) नाग पूंजीपति और चूहा आदमी (आम) बन जाता है। वहां जंगलतन्त्रम (प्रजातन्त्र) की स्थापना कर देता है। आज के पूंजीपतियों की सफलता के बारे में लेखक सिंह के माध्यम से नाग को कहता है— यहां वाणिज्य में वही सफल होता है जो जहर उगलने की खूबी रखता है और हमेशा दो जुबानों का प्रयोग करता है। इसी

कारण मैं तुम्हे वाणिज्य विभाग सौंप रहा हू।[1] धन की बात पर सिंह और नाग मे,बहस होने पर सिंह कहता है कि धन के माध्यम से सब कुछ खरीदा जा सकता है तो नाग पूछ बैठता है कि महाराज धन के बल पर गद्दी प्राप्त की जा सकती है। और जाश म सिंह कह देता है क्यो नही। इस भूल का अहसास होने पर सिंह को पछतावा होता है कि उसने ऐसी बात नाग को क्यो कह दी ? यह कहकर सिंह चिन्तित हो जाता है और मोर से सिंह सलाह लेता है। इसके बाद सविधान लागू कर देता है। नाग (पूजीपति) की आय पर नियत्रण और कर (टैक्स) लगा दिया जाता है।

जब नाग पर प्रतिबध लग जाता है तो वह मोर से गठबधन कर लेता है और नाग गर कानूनी कार्य करने लगता है। नाग अनाज और रोजमर्रा की चीजा के दुगने दाम कर देता है। इसके विरोध मे चूहा सिंह के सामने प्रदशन करता है। सिंह को मार और नाग के गठबधन के बारे में बतलाता है। सिंह चूहे को नाग और मोर के प्रति कार्यवाही करने का आश्वासन देता है। जब मोर (प्रशासक) को इस बात का पता चलता है तो वह चूहे की खातिरदारी करके प्रसन्न कर लेता है। नाग अपन पैसो के बल पर चूहे को अखबार शुरू करवा देता है। अखबार दो भाषाओ जगली भाषा (हिन्दी) और एक मोर भाषा (अग्रेजी) में शुरु होता है। इससे चहे ने आम जनता में जागरण की लहर उत्पन्न कर दी। वह हर रोज किसी न किसी बिन्दु को लेकर हडताल, प्रदशन करने लगा जिससे सिंह चिंतित हो उठा। रात को जगलवाणी (आकाशवाणी) से राष्ट्र के नाम सदेश प्रसारित करता है और जनता को जगल में मगलवाद (समाजवाद) लान का आह्वान करता है। इससे चूहा प्रसन्न होता है और सिंह की प्रशसा में सब कुछ लिख देता है। इससे नाग नाराज होता है और प्रेस बद करने की धमकी देता है तो सिंह चूहे को इस सबध में कहता है कि वह जिस दिन प्रेस बद करेगा, उसके एक दिन ही पहले हम उस प्रेस का जगलीकरण (राष्ट्रीयकरण) कर देंगे। बैको का जगलीकरण कर दिया जाता है, जिससे नाग सिंह का विरोधी बन जाता है। सिंह चुनाव की घोषणा कर देता है। जब सिंह के पास धन का अभाव हान लगता है तो वह नाग से धन प्राप्त करने का सफल प्रयास करता है। इसके एवज (बदले) म सिंह नाग को कहता है—'नाग आज से तुम जिस जिस किसी को भी जहाँ भी चाहो जैसे भी चाहो, जब भी चाहो, अपनी इच्छानुसार डस सकते हो।'[2] चुनाव में सिंह जीत जाता है।

बाढ और तूफान के आने के कारण सबका ध्यान उस तरफ हो गया। रिलीफ के नाम पर भ्रष्टाचार होने लगा। चूहे ने इस बात को लेकर प्रदर्शन

---

१ श्रवणकुमार गोस्वामी, जगलतत्रम, पृ० २१
२ वही, पृ० ५६

आरंभ कर दिया, इससे सिंह नाराज हो जाता है। उसके अखबार पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है। वह अदालत में अपील करके मुकद्दमा जीत जाता है। तभी जंगलीस्तान (पाकिस्तान) आक्रमण कर देता है और जनता दिल खोलकर दान देती है। सेना दुश्मन की बहुत सी जमीन पर कब्जा कर लेती है लेकिन सरकार समझौता करके दुश्मन की भूमि वापस लौटा देती है। चूहे से सब लोग तंग हो जाते हैं तो सिंह नाग का कहता है कि चूहे को गिरफ्तार कर लो और यह समाचार निकाल दो कि जेल में प्लेग से अनेक कैदी और चूहे की मौत हो गयी है।

कथ्य विश्लेषण

'जंगलतंत्रम' उपन्यास में लेखक ने जानवरों को प्रतीक मानकर आज की राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोरी मिलावट, आय व बिक्री कर चोरी-तस्करी मूल्यवृद्धि आदि बातों का व्यक्त किया है। जंगल और जानवरों की यह कथा ऊपरी तौर पर बच्चों के लिए लगती है लेकिन प्रतीकों पर दृष्टिपात करने पर हमारी राजनीति और राजनेताओं की परत दर परत कलई खोलकर रख देती है। इस प्रकार उपन्यासकार ने अपने देश के पच्चीस साल के इतिहास को पच्चीस रातों के माध्यम से व्यक्त किया है। पच्चीस वर्षों के इतिहास के यथार्थ को ऐसी स्वाभाविक, सहज, सरल भाषा शैली में सार्थक, प्रतीकात्मकता के आद्योपात निर्वाह के साथ व्यक्त किया है कि देश का पूरा नक्शा सजीव हो उठा है।[1]

महामहिम

कथासार

प्रदीप पंत द्वारा सृजित 'महामहिम' व्यंग्यात्मक शैली में लिखा हुआ एक राजनीतिक उपन्यास है। जनता पार्टी के शासन काल को आधार बनाकर इसकी रचना की गई है। इस उपन्यास में लेखक ने आज के राजनीतिज्ञों के चरित्रहीन चरित्र को उजागर करने का प्रयास किया है। आज की राजनीतिक स्थिति पर लेखक का मंतव्य है— हम में से कोई भी न तो राजनीति से बच सकता है और न ही राजनीति बुरी चीज है। लेकिन राजनीति का इस्तेमाल व्यापक मानवीय हितों के लिए न करके निजी स्वार्थी जोड़-तोड़, साम्प्रदायिकता का जहर फैलाने और सत्ता के दुरुपयोग के लिए करना बुरी बात है। यह सिद्धांतहीन और अमानवीय राजनीति है। यह व्यंग्य उपन्यास एक प्रकार से सिद्धांतहीन और अमा

१ ब्रजनारायण, समीक्षा, अक्टूबर दिसम्बर १९८०, पृ० ३८

नवीय राजनीति के प्रति विरोध प्रदर्शन ही है।[1] आज की राजनीति में छुटभैये गुटभैये और टुच्चे लोग भी नेता बन जाते हैं।

उपन्यास में वर्णित राज्य की राजनीति का कर्णधार केंद्रीय मंत्री श्री चन्द्रिका प्रताप सिंह है। राज्य की राजनीति इन्ही के इशारो पर चल रही है। जब मुख्यमंत्री बनाने का प्रसंग आता है तो व अपने चमचे लुभावनसिंह को बुलाकर पूछते हैं—'तुम्ही बताओ लुभावन, किसे मुख्यमंत्री बनाए।' और लुभावन जानना चाहता है कि वे किस तरह का व्यक्ति चाहते हैं। तब मंत्री चन्द्रिका प्रताप सिंह कहते हैं—'जितने एम० एल० ए० चुने गए हैं सबकी इमेज खराब है। इसलिए ऐसा आदमी लाओ जिसकी कोई इमेज ही न हो। न अच्छी न बुरी यानि ऐसा आदमी जो किसी पद पर न रहा हो।' और लुभावन मुख्यमंत्री की खोज मे लग जाता है। लुभावन न मंत्री है और न ही एम० एल० ए०। फिर भी वह सरकारी बंगले मे रह रहा है, जिसे उसने तिकडम भिडा कर अपने नाम एलाट करवा लिया था।

चन्द्रिका प्रताप सिंह के व्यक्तित्व के बारे मे लेखक बताता है कि यो तो चन्द्रिका प्रसाद अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध है। वे अपने निर्वाचन क्षेत्र मे किसी का काम नही करते हैं लेकिन यह सिद्धांत उनके रिश्तेदारो पर लागू नही होता है। इस तरह चन्द्रिका प्रसाद की राजनीति भाई भतीजावाद पर आधारित है। लुभावन सिंह चन्द्रिका प्रसाद के कहने पर मुख्यमंत्री की खोज मे लग गया है।। तोताराम नाम का व्यक्ति सुबह सुबह उसके घर आता है, किसी रिश्तेदार का मेडिकल कालेज मे एडमीशन करवाने हेतु। लुभावन को तोताराम मुख्यमंत्री पद के लिए उचित नजर आया। तोताराम ने न तो पंचायत का चुनाव लडा, न किसी ब्लाक का प्रमुख और न ही नगरपालिका का चुनाव। चन्द्रिका प्रसाद जिस तरह का मुख्यमंत्री चाहते थे वे सभी गुण तोताराम मे समाहित थे। लुभावन तोताराम को चन्द्रिकाप्रसाद से मिलवाता है और वे उसे मुख्यमंत्री बनाने की स्वीकृति प्रदान कर देते हैं। वे लुभावन से कहते हैं कि इस तोते को जो शब्द हम रटा देंगे वो ही शब्द रटता रहेगा। यह हमारे इशारों पर अच्छी तरह से चल सकता है।' जब तोताराम का नाम विधायका के सामने प्रस्तुत किया जाता है तो विरोधी विधायक उसका विरोध करते है। व तोताराम के मुख्यमंत्री बनाने पर संतुष्ट नही है। विरोधी सदस्य गुप्त वार्ता करते हैं लेकिन सफल नही होते। लेकिन बाद मे तोताराम का समर्थन विरोधी नेता जटाधर शुक्ल के द्वारा ही किया जाता है। हुआ यह कि जब चन्द्रिकाप्रसाद का पता चला कि जटाधर शुक्ल तोताराम के विरुद्ध बगावत करने वाला है तो

१ प्रदीप पंत, महामहिम भूमिका, पृ० ६
२ प्रदीप पंत, महामहिम, पृ० १३

उसके समर्थक सदस्यों को अच्छे विभाग और मंत्री पद प्रदान कर अपनी ओर कर लेता है जिसके फलस्वरूप जटाधर शुक्ल अकेला रह जाता है। उसको मंत्रिमण्डल में नहीं लिया जाता है जिससे जटाधर शुक्ल अप्रसन्न हो जाता है।

तोताराम जिसने कभी राजनीति की शतरंज की एक चाल भी नहीं सीखी थी, जब मुख्यमंत्री की शपथ लेने जाता है तो बिना शपथ लिए ही मुख्यमंत्री की सीट पर जा बैठता है। राज्यपाल के आने के बाद भी वह वैसा ही बैठा रहता है जबकि प्रत्येक मुख्यमंत्री को राज्यपाल के सम्मान में उठना पड़ता है। तोताराम वहाँ पर अजीब गरीब व्यवहार करता है। लुभावनसिंह उसे कहता है कि 'राज्यपाल के आते ही तुम्हें उठना चाहिए। तब तोताराम जवाब देता है कि तो फिर तुमने यह बात पहले क्यों नहीं बताई ?'[1] इस बात से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि तोताराम न तो राजनीति जानता था और न ही मुख्यमंत्री पद की गरिमा।

जटाधर शुक्ल विशिष्ट सदस्य है। वह एक शादी करने के बाद भी अपनी उम्र से पच्चीस वर्ष छोटी चन्द्रमुखी से फिर शादी कर लेता है। उसका अनेक स्त्रियों के साथ अवैध सम्बंध है। आवास मंत्री जनार्दनसिंह जटाधर शुक्ल को कोठी खाली करने को कहता है तो उसका प्रत्युत्तर होता है कि अगर तुम कोठी खाली करवाओगे तो मुझे सूखा राहत कोष गबन वाली फाईल को फिर से खोलना पड़ेगा। यह सुनकर जनार्दन हतप्रभ हो जाता है और कोठी खाली न करने को कह देता है। तोताराम मुख्यमंत्री बनने के बाद भी अपने रिश्तेदार का मेडिकल कालेज में भर्ती वाली बात आज के राजनीतिज्ञों की भांति भूल जाता है। तोताराम ने सम्पूर्ण राज्य में पूर्ण नशाबंदी लागू कर रखी है परन्तु खुद शराब का नियमित सेवन करता है। मंत्री बाढ़ के नाम पर किये गए चंदे का गबन कर जाता है। जब तोताराम के प्रति विरोध ज्यादा होने लगा तो विधान सभा का अधिवेशन समाप्त कर दिया ताकि उसके प्रति अविश्वास का प्रस्ताव न रखा जाय। जटाधर शुक्ल को और शक्तिहीन करने के लिए उसके दो अन्य मित्र विधायकों को मंत्री पद दे दिया जाता है।

लुभावन बाढ़ के बाद ठेकेदारों को पुल आदि का ठेका दिलवाकर उनसे कमीशन खाने लगा। ठेकेदार कमचन्द ठेका कैंसल करवाकर अपनी कम्पनी को ब्लैकलिस्ट में अंकित करवा कर पैसा इकट्ठा कर रहा था। वह शहर की नशाबंदी समिति का अध्यक्ष है, फिर भी स्वयं शराब का नियमित सेवन करता है। जटाधर शुक्ल छात्रों को उकसाकर आन्दोलन शुरू करवा देता है। उपकुलपति, मंत्री और मुख्यमंत्री इस आन्दोलन को रोकने में असफल होते हैं। इस आन्दोलन

---

१ प्रदीप पंत, महामहिम, पृ० ६३

का सचालन राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ का प्रमुख नेता और विधायक स्वामी ब्रह्मचारी कर रहा था। तोताराम को इस बात का पता चला तो उसे मत्री बनाकर इस आन्दोलन को समाप्त करवा देता है लेकिन हिन्दु मुस्लिम दगो को रोक पाने मे असफल रहता है। स्वामी ब्रह्मचारी के प्रयास से दगे बन्द हो जाते हैं। तोताराम को मुख्यमत्री बने छह मास होने वाले थे। फिर भी मुख्यमत्री बने रहने के लिए विधायक बनना जरूरी होता है। विधायको की बैठक होती है तमाम विधायक तोताराम के नेतत्व मे विश्वास करते हैं और तोताराम को विधायक बनाने की तैयारी शुरू हो जाती है।

कथ्य विश्लेषण

'महामहिम' मे प्रदीप पत ने जनता सरकार के शासन काल को आधार बनाया है। व्यग्य शैली मे उन्होने वतमान राजनीति का नग्न चित्र हमारे समक्ष उपस्थित किया है। लेखक राजनीति को अछूत नही मानता क्योकि बहुत कोशिश करने पर भी उससे बचा नही जा सकता। वतमान राजनीति की सिद्धात-हीनता, अमानवीयता एव भाई भतीजावादिता पर लेखक ने करारी चोटें की हैं। यहाँ 'इमेजरहित' व्यक्ति मुख्यमत्री बनाये जाते हैं और उसे पदासीन न कराने वाले अपने स्वार्थ की तिजोरी भरने मे लगे हुए हैं। उनके लिए देश और देशवासी कुछ मायने नही रखते।

यह उपन्यास जनता सरकार के समय पर आधारित होते हुए भी प्रत्येक सरकार पर लागू होता है। क्योंकि सत्ताहीन महामहिमों का इरादा और नीयत जनता का शोषण करना ही रहा है, सिफ चेहरे बदलते रहते हैं। कथा मे प्रवाह और रोचकता है। पाठक मे औत्सुक्य रहता है कि देखें आगे क्या होगा? इन राजनीतिक चेहरो पर पाठक सहज ही विश्वसनीय मुस्कान बिखेर देता है।

हजार घोडो का सवार

कथासार

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का 'हजार घोडो का सवार' उपन्यास दलित वर्ग की व्यथा, उपेक्षा और सामाजिक स्थितियो का चित्रण करने वाला एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है। 'बीसवी सदी के आरभ से लेकर सन् १९५२ के आम चुनाव तक की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियो का बेबाक और यथार्थ पूर्ण चित्रण इस उपन्यास मे मिलता है।'[१] उपन्यास मे तत्कालीन समाज में

---

१ सुरेन्द्र तिवारी, सचेतना (पत्रिका) यथार्थपरक दो आचलिक उपन्यास निबध से उद्धृत, पृ० ५५

बेरोजगारी, सूदखोरी, जातीय अत्याचारो एव सामाजिक अत्याचारो का मार्मिक चित्रण हुआ है। उपन्यास का नायक गीधू मेघू चमार का सबसे बडा लडका है जो जूती गाठने का काम करता है। गीधू बडे जीवट वाला आदमी है। चमार होने के बावजूद उसे हिम्मत साफ गोई अन्याय के विरुद्ध आवाज बुल द करने के गुण उसे अपने पिता से मिले हैं। मानवता धम निरपेक्षता, समानता और स्वतन्त्रता के बारे मे उसके विचार क्रातिकारी हैं। मघू चमार जूतिया बनाकर अपने परिवार का पालन पोषण करता था। उसके परिवार मे गीधू के अलावा पत्नी होरी पुत्र कालिया और पुत्री पूदडी थी। शोषित वग का होने के कारण मेघू अपन बच्चो का पढाना तो दूर की बात उन्ह अच्छी तरह से खिला पिला भी नही सकता। सामती व्यवस्था शोषण धम, ईश्वर पूजीवादी व्यवस्था ऊच नीच सामाजिक रूढिया असमानताओ का विरोध रूपी मान्यताओ पर गीधू के क्रान्तिकारी विचार रखने वाला पात्र है। बाल्यावस्था मे ही गीधू कमठाणा (मजदूरी) करने भी चला जाता था। उसके क्रातिकारी विचार बचपन से ही दृष्टि गत होने लगते हैं। जब उसका दोस्त जमन बुर्ज पर दीया रखते वक्त गिर जाता है। घटना स्थल पर ही जमन की मत्यु हो जाती है तो वह वहा काम करना छोड आता है। सेठ मोहन का बेटा गणेश अपने यहाँ काम कर रही मलमी की गरीबी का नाजायज फायदा उठाकर उसके साथ अनैतिक सबध स्थापित कर लेता [redacted]। समय तेजी के साथ चलने लगा। गीधू का विवाह बाडामर के मेघवाल शिवराम की बेटी जानकी के साथ हो जाता है।

ठाकुरो ब्राह्मणो बनियो व उच्च वग के लोगो के तथा सामतवादी अन्याय अत्याचार के कटु अनुभव भी उसने प्राप्त कर लिए हैं, तभी वह मानवतावादी अनगरजिया बाबा के सम्पक मे आता है। यह एक फक्कड सत है और उस घोर सामती व्यवस्था के भीतर ठाकुर को चमार के हाथ का और ब्राह्मण को भगी के हाथ का छुआ पानी पिलाने मे जरा भी नही हिचकता है। स्वय लेखक के शब्दो मे—'अनगरजिया यानि अलमस्त वह जिन्दगी मे बडा अलमस्त है पर विचारो मे गभीर तार्किक व मानवीय सवेदनाओ का भरा पूरा पात्र है वह इन्सानो के बीच, एकता समता और भाई चारा का उदघोष करता है वह ईश्वर को मानता है पर आदमी के भीतर वह जाति धर्म, रग भेद के सख्त विरुद्ध है। वह कहता है कि जिस भूमि पर केवल जाति धम और ऊच नीच रहते हैं वहाँ आदमी कैसे रह सकता है। वह आदमी मे गलत ढग से भेद करने के सख्त विरुद्ध है। इससे बडा दु खी है। वह भूख को धम का आधार मानता है भूख ही हर धर्म की असलियत को बता देती है।'[1] वह अछूतो का लडने भिडने की

---

१ यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र सारिका (पाक्षिक) मेरा प्रिय पात्र' लेख से उदधृत १ मई १९८२, पृ० २७

प्रेरणा देता है, बेसहारों को सहारा देता है। इसीलिए सामतवादी और रूढिवादी लोगो के हाथो मारा जाता है। गीधू अलगरजिया बाबा को गुरू मानता था और उनकी हत्या के पश्चात एकदम असहाय और कमजोर हो जाता है।

शांति और समानता की खोज मे वह घर छोडकर साधु बन जाता है। हरिद्वार के आश्रमो मे धर्म की आड मे हो रहे अनाचार एव अत्याचार देखता है। उसे इस जीवन से वितृष्णा हो जाती है और वहाँ से भाग आता है। पुन अपने शहर बीकानेर आ जाता है। शुरू होता है वही सामतशाही अत्याचार, असमानता और जीविका का सघर्ष। ठाकुरो मे झगडा होने पर भावलपुर भाग जाना और वहा हिन्दुओ को जबरदस्ती मुसलमान बनाने का विरोध करने के फलस्वरूप स्वय की जान बचाने की खातिर पुन बीकानेर आ जाना। इस बार सेना मे भर्ती हुआ। सैनिक बनकर वह उत्तर पश्चिम सीमाप्रात, मेरठ चटगाव और जबलपुर गया। सेना से छटनी होने पर पुन बीकानेर की शरण मे आना पडा।

उसने झुकना स्वीकार नही किया था। वह समूचे समाज और उसकी सडी गली मान्यताओ के विरुद्ध लडने को सदैव अगुआ रहता है इसलिए उसे पग पग पर परेशानिया उठानी पडती हैं। अपनी माँ हीरी की मृत्यु पर वह औसर नही करना चाहता पर समाज के दबाव के कारण उसे मजबूरन औसर करना पडा। 'साली' के घर भोजन करके वह स्वय को दोषी नही मानता लेकिन पत्नी और समाज के दबाव में आकर दण्ड स्वरूप उसे पचायत का भोजन कराना पडता है। पचो के जूते तक को सिर पर रखता है। घुटता और परेशान होता है इन्ही परिस्थितियों मे वह जूझता रहता है और देश आजाद हो जाता है। गीधू गिर धर गोपाल बनकर ससद का सदस्य बन जाता है। ससद राजनीति नई जिम्मेदारियाँ नया रहन सहन, दिखावा लेन देन ट्रासफर की राजनीति सत्ता हथियाने के लिए गठबधन स्वार्थी तत्त्वो द्वारा उसे अपने जाल मे फसाने की कोशिशें की जाती हैं। गीधू की घुटन तडपन बढती जाती है और एक दिन कुटिल राजनीतिज्ञो के घात-प्रतिघात मे गीधू कुछ हरिजनो को उनके न्यायपूर्ण अधिकार दिलाने के लिए सघर्ष करता हुआ शहीद हो जाता है। उपन्यास मे तत्कालीन समाज मे बेगार प्रथा, सूदखोरी जातीय अत्याचार एव सामाजिक अन्याय का मार्मिक चित्रण है।

कथ्य विश्लेषण

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र ने राजस्थान की ऐतिहासिक और सामतवादी पृष्ठभूमि पर कई शक्तिशाली रचनाए लिखी हैं। उन्होने सामतवादी के शोषण और किसान, मजदूर एव हरिजनो के पीडन को भी निकट से देखा है और अनुभव किया है। यही कारण है कि उनकी रचनाओ के चित्र इतने स्पष्ट और पैने हैं।[1]

१ नवीन चद पत, आजकल, नवम्बर १९८२, पृ० ४५

श्री चन्द्र का नवीनतम उपन्यास 'हजार घोडो का सवार' हिन्दी उपन्यास यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण पडाव है। इस यात्रा मे एक छोर पर यदि 'गोदान' रखा जाय तो दूसरे छोर पर 'हजार घोडो का सवार' स्वत ही प्रतिष्ठित हो जाता है, इसलिए कि सामाजिक उत्पीडन की जिस वास्तविकता का प्रथम बार 'गोदान' मे चित्रित किया गया था, उसी की नवीनतम परिणति 'हजार घोडो का सवार' मे दृष्टिगत होती है।[1] लेखक के अन्य उपन्यासो से भिन्न इस उपन्यास का फलक काफी विस्तृत है लेकिन एकाधस्थलों को छोडकर इसके गठन म कही भी हमें किसी तरह का बिखरापन नजर नही आता और पाठक की दिलचस्पी को कही भी कम नहीं होने देता।[2] कुल मिलाकर लेखक की सशक्त कलम ने उक्त काल का सही दस्तावेज प्रस्तुत किया है। प्रगतिशील विचारधारा का उचित मार्ग दर्शन इस उपन्यास के द्वारा मिलता है। उन दिनो के बीकानेर समाज का चित्र बडा मार्मिक एव आकर्षक है।[3]

आंचलिक पात्रों की भाषा मारवाडी तथा हिन्दी का मिश्रण है, पाठको की सुविधा के लिए। वैसे पूर्णरूप से उनकी भाषा स्टाइनबैक, यूजीन, आनील, रेणु और राही मासूम रजा की भांति रखी जा सकती थी। 'हजार घोडो का सवार' एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।[4] 'हजार घोडो का सवार' मे घटनाक्रमो का गुथाव है, भाषा की जो रवानगी है, स्थितियो का जो मार्मिक चित्रण है, वह इस उपन्यास को अधिक महत्त्वपूर्ण बनाता है।[5] चन्द्र जी का यह उपन्यास एक ऐसे संघर्षशील व्यक्ति की गाथा है जो वर्तमान समाज व्यवस्था को मानवीय सवेदनाओ की मूल्यवत्ता के परिप्रेक्ष्य मे वर्ग चेतना से मुक्ति के अहसास मे विश्लेषित करता है। 'हजार घोडो का सवार' का कथ्य भी सामान्य शोषित जन की व्यथा कथा ही है।

यह उपन्यास इसी सदी के पूर्वार्द्ध की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विषमताओं और परिस्थितिया का सुन्दर दस्तावेज बन पडा है। लेखक ने सभी कोणो से इस अवधि के भारतीय जीवन को अभिव्यक्ति दी है और समाज्य वर्ग के प्रति अपनी सवेदना प्रकट की हैं। उपन्यास की भाषा अत्यन्त प्रवाही है बीच-बीच मे राजस्थानी के पुट ने भाषा के प्रवाह को बढ़ाया है।[6]

---

१ डा० आदर्श सक्सेना, सप्ताहान्त (साप्ताहिक) ३ जनवरी १९८२, पृ० ३
२ सुरेश उनियाल नया शिक्षक टीचर टुडे, प० १०१
३ सन्मार्ग (दैनिक) कलकत्ता, ७ सितम्बर १९८२, पृ० ४
४ योगेन्द्र किसलय शिविरा, मार्च १९८३, पृ० ४५७
५ सुरेन्द्र तिवारी सचेतना, पृ० ५५
६ डा० देवेश ठाकुर ब्लिट्ज (साप्ताहिक), ८ जनवरी १९८३, पृ० १२

दारुल शफा

कथासार

'दारुल शफा' राजनीति से जुड़े चर्चित नेताओं की सत्तालोलुपता, राजनीति और इसके अवमूल्यन का कच्चा चिट्ठा खोलने वाली यथार्थपरक उपन्यास है। 'इसकी कहानी कुछ घंटों की है और उसका केन्द्र है—'दारुल शफा'। दारुल शफा ही एक प्रकार से इस उपन्यास का नायक भी है। 'दारुल शफा' एक स्थान न होकर एक विशेष प्रकार की भोग प्रधान संस्कृति का जीवन्त प्रतीक है।"[1] वर्तमान राजनीति में सत्ता के लिए जो क्रूर और घृणित कार्य किए जाते हैं उसका 'दारुल शफा' प्रामाणिक दस्तावेज है। आज का नेता सेठों, स्मगलरों, खूनी डकैतों के साथ साथ युवा वर्ग को संरक्षण देकर अपनी शक्ति को बढ़ाता है। धन के बल पर वह समाज की प्रत्येक व्यवस्था को खरीदने की क्षमता रखता है।

एक राज्य में मुख्यमंत्री के पद का चुनाव ही इस उपन्यास की मुख्य पृष्ठ-भूमि है। इसमें उत्सुकदास और कृष्णवल्लभ का एक गुट है जो सत्ता को अपने अधीन करना चाहते हैं और दूसरा गुट रंगीनराय का है जो उत्सुकदास के मुख्यमंत्री बनाने की बात पर अपना विरोध प्रकट करता है। इसके अलावा एक और गुट लोबीराम का है। जिस पर दोनों गुट अपना प्रभाव बतलाते हैं। लोबीराम को जो गुट अधिक धन दिखला देता है वह उधर ही झुक जाता है। उत्सुकदास गुरुपद स्वामी का शिष्य है। गुरुपद स्वामी केन्द्र में गृहमंत्री हैं। इसकी आड़ में उत्सुकदास अनेक घृणित व गैर कानूनी कार्य करता है। वह लोगों से धन प्राप्त कर उन्हें सीमेंट, लोहा, कोयला आदि के फर्जी परमिट देकर, ठेका दिलवाकर करोड़ों के वारे न्यारे करता है। उत्सुकदास के सहयोगी विधायक कृष्णवल्लभ के भाई यशोदावल्लभ एक कामयाब सेठ से मिलकर अफीम की पेटियों के नीचे तारों के बंडल विदेशी व्यापारी के हाथों बेच देता है। इस तांबा घोटाला काण्ड का विरोधी विधायक विरोध करते हैं। तांबा घोटाला काण्ड के चर्चित हो जाने तथा उसमें उत्सुकदास का नाम जुड़ा होने के कारण मुख्यमंत्री पद के उम्मीदवार होने की वजह से उत्सुकदास की स्थिति कमजोर हो जाती है। इस काण्ड की जांच का काम गुरुपद स्वामी की भाभी बाई जी के गोद लिए पुत्र कमठ और ईमानदार पुलिस आफिसर फूलदास को सौंप दिया जाता है। वह यशोदा वल्लभ की पत्नी शांति प्रणाली का प्रेमी भी है। वह तांबा घोटाला काण्ड की जांच के दौरान यशोदा वल्लभ के तांबे के तार से भरे दो ट्रक पकड़ लेता है। जिसके परिणाम स्वरूप यशोदा वल्लभ अपने

---

१ रामचन्द्र तिवारी, समीक्षा पत्रिका, अप्रैल जून १९८३, पृ० ३९

डकैत मिश्र दुलम काछी द्वारा फूलदास की हत्या करवा देता है। इस तरह की हत्याएं आज की राजनीति की आम बात है।

जब उत्सुकदास के मुख्यमंत्री बनने की चर्चा हुई तो रंगीनराय व अन्य विरोधी विधायकों ने इस काण्ड को अधिक उछाला। उत्सुकदास के साथी यशोदा वल्लभ के द्वारा फूलदास की हत्या करने के परिणाम स्वरूप पुलिस भी उत्सुक दास की विरोधी बन गयी। मुख्यमंत्री का चुनाव नजदीक देखकर लाबीराम रंगीनराय के गुट में शामिल होने की सोचता है लेकिन उत्सुकदास उस विमला देवी के सौन्दर्य जाल में फंसाकर उसे रंगीनराय के गुट में सम्मिलित होने से वंचित कर देता है। पार्टी मीटिंग में रंगीनराय को पार्टी अध्यक्ष और कृष्ण वल्लभ को पार्टी की प्राथमिक सदस्यता से निलम्बित कर दिया जाता है। पार्टी अध्यक्ष सभी विधायकों से एकता रखने की अपील करता है।

कथ्य विश्लेषण

'दारुल शफा' में मुख्यमंत्री के चुनाव को मुख्य आधार बनाया गया है। इस उपन्यास में दर्शाया गया है कि किस तरह राजनेता पैसा के बल पर समाज की प्रत्येक मशीनरी (व्यवस्था) को खरीद लेते हैं। राजकृष्ण मिश्र का पहला उपन्यास है और वह भी राजनीतिक उपन्यास। आज की राजनीति में उखाड़ पछाड़ की घटनाओं के साथ साथ राजनीतिक जीवन में व्याप्त अनुचित सक्स सम्बन्धों और चारित्रिक नैतिक विकृतियों को भी उपन्यासकार ने उजागर किया है। जिसमें गुरुपद स्वामी और बाईजी का सम्बन्ध शान्ति प्रणानी और फूलदास, लोबीराम और लक्षमनिया का सम्बन्ध, उत्सुकदास का विमला देवी और प्रतिभा का सम्बन्ध जिसमें आज की राजनीतिक जीवन का विकृत व घृणित चेहरा देखा जा सकता है। उपन्यास की भाषा सरल सुबोध और बोधगम्य लेकिन लम्बी घटनाएँ संवाद बीच बीच में बोरियत पैदा करते हैं। 'उपन्यास की घटनाएँ कथानक मौलिक और यथार्थ लगता है न कि कपोल कल्पित। दारुल शफा' आज की जिन्दगी का असली दस्तावेज है।'[1]

समय शब्द भर नहीं है

कथासार

छोटे उपन्यासों की परम्परा में एक और उपन्यास प्रकाशित हुआ, धीरेन्द्र अस्थाना का उपन्यास 'समय शब्द भर नहीं है' जिसमें आज के युवा वर्ग में जन आन्दोलन की भावना या युवा पीढ़ी का नक्सलवादी आन्दोलन और सत्ता के अंधेपन को दिखलाया गया है। कथानायक भवन किशोर जिसका बचपन का

१ श्रीलाल शुक्ल, उपन्यास के फ्लेप से (कवर) उद्धृत

नाम टेकचन्द था जिसे उसके घर वालों ने रखा था। उसे इस सड़ियल नाम टेकचन्द से उतनी ही नफरत है जितनी खद्दरधारी कांग्रेसी से, इसलिए उसने अपना नाम भुवन रख लिया है, भुवन किशोर। बी०ए० करने के बाद उसके विचार घर वालों से मेल न खाने के कारण वह सुविधा सम्पन्न घर को छोड़कर हमेशा के लिए चला जाता है और तब भी नहीं लौटा जब उसके पिता को किसी नक्सलवादी ने निर्ममता के साथ खत्म कर दिया। उसका अपने परिवार के प्रति इतना आक्रोश था कि उसके पिता के हत्यारों के प्रति प्रतिहिंसा तक के भाव भी नहीं उभरे। उन्होंने उसके एक नक्सली दोस्त को गिरफ्तार कराया जिसे जेल में इतना अमानवीय व्यवहार और अत्याचार किया गया कि वह मर गया।

घर को छोड़कर वह देश की राजधानी गया और वहाँ नक्सली आन्दोलन में शामिल हो गया। उसने नौकरी भी की किन्तु पाँचवें महीने बाद निकाल दिया गया। फिर चार वर्ष एक बड़े प्रेस में प्रूफ रीडरी करके और अमरीकन लाइब्रेरी में अध्ययन करके बिताये। ये वक्त उसने भूख, ठण्ड, गर्मी और कुण्ठाओं के त्रासदायी दर्द के साथ बिताये। फिर उसने हिन्दी और दर्शन में एम०ए० किया। इन दिनों में फुटपाथ की जिन्दगी के साथ उसका नजदीकी रिश्ता कायम हो गया। बेरोजगार रहा, फिर अध्यापक बना।

इसके बाद भुवन कलकत्ता चला जाता है। कलकत्ता [illegible] राजधानी के लाल किले पर लाल झंडा फहराने की तमन्ना रखने वाले नक्सलवादी, क्रान्तिकारियों का केन्द्र स्थल। वहाँ वह एक साप्ताहिक में सहायक [illegible] की पोस्ट पर नियुक्त हो गया। जहाँ उसका संगीता बनर्जी के साथ [illegible] रोमांस (प्यार) कर बैठता है। वह उससे जल्द ही [illegible] (संगीता) किसी बात पर नाराज होकर कलकत्ते से [illegible] है। [illegible] उसने उपन्यास लिखने आरम्भ कर दिये। उसने [illegible] एक छपने के कारण वह एक प्रतिष्ठित [illegible] तीसवें साल और सत्ताईसवें शहर नैनीताल [illegible] वह अपने अन्य नक्सलवादी दोस्त आशू, [illegible] से जुड़ जाता है।

इसी आन्दोलन के दौरान भुवन किशोर को अपनी प्रेमिका संगीता बनर्जी मिल जाती है और आवेश में आकर उसकी पिटाई कर देता है। फिर उसे अपने किये पर पछतावा होता है तथा संगीता से प्यार भरा वादा करता हुआ कहता है—'तुम्हारे प्रति कोई नफरत मेरे मन में नहीं है। मैं आज भी तुम्हें उसी शिद्दत से प्यार करता हूँ। प्यार की इस गर्माहट और गहराई को मैं सभाले रहूँगा और तुम्हारा इंतजार करूँगा। तुम आना तुम जरूर आना।'[1] भुवन संगीता का कधा दबाकर जुलूस की ओर चल पड़ता है, जहाँ पुलिस की गोलियाँ चल रही थीं।

कथ्य विश्लेषण

इस उपन्यास में नक्सली आन्दोलन के कारणों एवं मूल स्रोत को टटोलने का प्रयत्न किया गया है। उपन्यास की घटनात्मकता और विवरणात्मकता में भी मन को छूने वाले अनुभवों से लैस यह कृति है। उपन्यासकार ने अपने समय की चेतना और विचारों की चमक रचना में पैदा की है, किन्तु शिल्प के स्तर, भाषा के स्तर पर यह कृति कोई अधिक प्रभाव नहीं डाल पायी है। राजकुमार गौतम इस उपन्यास के सम्बन्ध में लिखते हैं—'समय शब्द भर नहीं है' किसी वाद विशेष की सिफारिश न करते हुए भी सच के उस महत्त्व को साफ करता है जो उसकी जन चेतना के लिए सबसे बड़ी जरूरत है।'[2] डा० देवेश ठाकुर की इस उपन्यास के सम्बन्ध में ऐसी राय है। वे कहते हैं—'नक्सली आन्दोलन पर 'समय शब्द भर नहीं है' सभवतः हिन्दी में लिखी गई अपनी तरह की पहली रचना है जिसमें नक्सलवाद का इतना स्पष्ट समर्थन किया गया है।'[3]

शान्ति भग

कथासार

'मुद्रा राक्षस' का उपन्यास 'शांति भग' आपातकाल के तीन साल के घणित इतिहास पर आधारित है। यह उपन्यास मनुष्य की सम्पूर्ण मानसिकता को उदघाटित करने का लक्ष्य रखकर चलता है। यह वह मनुष्य था जो पीडित था। अत्याचार का शिकार था असतुष्ट और क्रुद्ध था, परन्तु भीषण रूप से आतंकित था। पेशेवर राजनीतिज्ञों ने उसके चरित्र बल को ही कुठित नहीं कर दिया था उसकी जीवनी शक्ति को भी समाप्त कर दिया था। आपातकाल के

---

१ धीरेन्द्र अस्थाना, 'समय शब्द भर नहीं है', पृ० ७६-८०
२ राजकुमार गौतम, उपन्यास के कवर से उदधृत
३ डा० देवेश ठाकुर, मचेतना, पृ० १३

जीवन के इस रूप की आवेगहीन रपट प्रस्तुत करने वाली यह रचना निश्चय ही एक उपलब्धि है।[1]

उपन्यास की कथा एक मोहल्ले पर केंद्रित है। इस मोहल्ले का नाम सराय दुर्विजय है। यह एक मिनी भारत के समान है। यहाँ के निवासियो की मानसिकता आम भारतवासी की मानसिकता को उदघाटित करती है। यहा स्कूल गडहिया वाला है, जिसके अध्यक्ष नदकिशोर हैं जो हिंदी पढाते हैं। यहाँ की महिलाएँ अपना काय समाप्त कर महिला मण्डल की सभा का आयोजन करती है। इस महिला मडल की सभी सदस्यो का काम अवकाश के समय मे दूसरे घरो के रहस्यो पर रसपूण चर्चा करना है, भले ही उनके स्वय के परिवार मे वसे ही रहस्य पल रहे हैं। यहाँ खरे रहते हैं जो रेलवे मे गाड के पद पर कायरत हैं। मुशी जी विरोधी दल से सम्बंधित हैं। आपात् की घोषणा होते ही उनको गिरफ्तार कर लिया जाता है। खरे ड्यूटी पर अपमानित हुए और आत्मसम्मान की रक्षा के प्रयास मे विस्फोट मे मृत्यु के ग्रास बने। लाला कुन्दनमल रस्तोगी जनसघ के अच्छे व प्रभावशाली नेता हैं इनको भी आपातकाल के कारण गिरफ्तार कर लिया जाता है। इस सराय म एक और महत्त्वपूण व्यक्ति रहते है व हैं हरिराम वद्य। इनकी बडी पुत्री सतो का दहेज कम देन के कारण उसकी ससुराल वाले मारकर घर से निकाल देते हैं और वह फिर वैद्य जी के घर आ जाती है। वैद्यजी पानी मे रग और विशेष प्रकार की गध मिला कर बेचते हैं, यह बात सभी घर वाले जानते है।

मुशी जी एक बार मच पर भाषण दे रहे थे तो एक औरत अपने हाथ मे बच्चा लिए मच पर आती है और उनके चरणो मे गिर जाती है तथा चिल्लाती है कि य मेरे पति और इस बच्चे के पिता ह, मुझे और बच्च का छोड भाग आय ह। मुशी जी समझ जाते हैं कि यह चाल उसके विरोधियो और त्रिलोचन पाडे की ही हो सकती है। अत यह बात देखते हुए वे उस स्त्री को अपने घर ले आते है। खरे के बडे बेटे को नक्सलवादी कहकर पुलिस पकड कर ले जाती है, वह जेल से भागने मे सफल तो हो जाता है लेकिन उसे पुलिस की गोलियो का शिकार बनना पडता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। नदकिशोर आपात्काल के समथन की रली म अपने स्कूल के बच्चो को ले जाता है। नसबदी का जबरदस्ती के साथ प्रचार किया जा रहा था। नसबन्दी इधर यकायक जैसे एक उद्योग बन गयी थी। एक तरफ बहुत से लोगो ने प्रेरणा के नाम पर कमाई शुरू कर दी, दूसरी तरफ नसबदी से बचने के लिए अस्थायी रूप से जल्दी-जल्दी घूस की दर भी तय हो गयी। निश्चित घूस देकर नसबन्दी से बचा जा

---

१ डा० आदर्श सक्सेना, समीक्षा (पत्रिका) अक १, अप्रेल-जून ८३ अक, पृ० २०

सकता था।[1] दुर्गा कचौड़ी वाला जिसकी बाजार म कचौड़ी की दुकान है। नसबन्दी का डर उसम और पत्नी म बहस होती है कि नसबन्दी कौन कराये। निश्चय होता है कि पत्नी की नसबन्दी कराई जाय लेकिन आपरेशन सफल न होने के कारण वह मृत्यु को प्राप्त होती है।

सरकार की नीतियों के साथ सहयोग करने के प्रयास मे बचारे दुर्गा कचौड़ी वाले को अपनी पत्नी का नसबन्दी की भेंट चढानी पड़ी और स्वयं रोजी रोटी क कमाने के अवसर नृशसतापूर्वक छीन लिए गए।[2] नन्दकिशोर पर जबरदस्ती नसबन्दी करने का प्रयास किया जाता है। वह नसबन्दी करवाना नही चाहता था। नसबन्दी का प्रमाण पत्र पेश न करने कारण उसे नौकरी स निलम्बित कर दिया जाता है। सराय क मगीव और निहत्य पसीटे को भरे बाजार मे डाकू अभियान के नाटक म गोली स उड़ा दिया जाता है, उसकी लाश प्राप्त करने के प्रयास मे दक्की को पुलिस के बहशीपन का शिकार होना पडता है। यही नही फटीचर कवि मधुर जी क आत्म सम्मान को कुरेद कर व्यवस्था ने उन्ह पहले भीषण प्रतिरोध के लिए विवश किया और अपमान और कारावास की दारुण यत्रणा का पात्र बना दिया।[3] मुशी जसे देवता लोगो को भी इस भ्रष्ट व्यवस्था ने नही बख्शा।

इदिरा गाधी आपातकाल हटाकर चुनाव की घोषणा कर देती है। त्रिलोचन पाडे चुनाव हार जाते हैं, पडित सदानन्द मुख्यमत्री बना दिया जाता है। 'अपने सशक्त चित्रण क कारण य पात्र उपन्यास की आत्मा बन जाते हैं।'[4] नन्दकिशोर को उम्मीद बन जाती है कि उसके केस पर पुन विचार होगा लेकिन उस निराशा का सामना करना पडता है। सदानन्द पर कातिलाना हमला होता है जो कवि मधुर जी के द्वारा किया जाता है। इस तरह 'शाति भग' उपन्यास मे मुद्राराक्षस न एक सराय को केन्द्र बिन्दु बनाकर आज के मनुष्य की मान सिकता, आजुआ, तिकडम, भ्रष्टाचार, आपातकाल का भय, जबरदस्ती नसबदी का प्रचार आदि अनेक अनगिनत समस्याओ को हमारे समाने रखा है।

कथ्य विश्लेषण

मुद्राराक्षस का उपन्यास शाति भग आपातकाल के जीवन की विभीषिका का पूर्वाग्रह मुक्त परन्तु मार्मिक आकलन प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया गया है यद्यपि इसम इतिहास कही नही है, परन्तु वह सब जो उन तीन वर्षों के

---

१ मुद्राराक्षस शाति भग पृ० ७६
२ डा० आदर्श सक्सेना समीक्षा (पत्रिका) अप्रैल जून, अक १, पृ० २१
३ वही, पृ० २१
४ वही, पृ० २२

घणित इतिहास का आधार है।[1] साथ ही इन्होंने आज के राजनीतिज्ञ के चरित्र एवं भ्रष्ट राजनीति का उद्घाटन करने का भी प्रयास किया है। 'शांति भंग' आपात्काल में जीवन के इस रूप की आवेगहीन रपट प्रस्तुत करने वाली यह रचना निश्चय ही एक उपलब्धि है।

'शांति भंग' उपन्यास में कोई कथा विशेष नहीं है। आपात्काल में आम आदमी पर पड़ने वाली मार का विवरण है, जो अनेक आदमी की पीड़ा को अलग अलग चित्रों में उभारा गया है। इसमें घटनाएँ एक दूसरे से संबधित होकर चलती हैं। भाषा सरल और सुबोध तथा लेखक ने कल्पना का सहारा लेकर उपन्यास को यथार्थ रूप देने का प्रयास किया है। डा० आदर्श सक्सेना का मत है कि— फिर भी यह उपन्यास राजनीतिक उपन्यास नहीं, बल्कि एक ऐसा सामाजिक उपन्यास है जो समाज में राजनीतिक उत्पीडन की कथा कहता है। इस उत्पीडन के दर्शन का वाचक बना है।'[2] शिल्प की सहजता तथा विवरणों की प्रामाणिकता के कारण यह उपन्यास निश्चय ही आपात्काल के ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में याद रखा जायेगा।

प्रजाराम

कथासार

प्रस्तुत उपन्यास की पृष्ठभूमि आपात्काल और जनता शासनकाल के छह मास को लिया गया है। इस उपन्यास में जहाँ आपात्काल के आतंक, संत्रास, अत्याचार एवं भयावह स्थितियों का चित्रण है वहीं आपात्काल की उन अच्छाइयों का भी है जिसमें आम आदमी को थोड़े समय के लिए राहत मिली थी। उपन्यास के नायक 'प्रजाराम' के संबंध में लेखक का मत द्रष्टव्य है— 'प्रजाराम' कोई नायक विशेष नहीं है, वह सर्वथा प्रतीक चरित्र है और तत्कालीन मानसिकता का द्योतक भी है। अतः उसे उसी संदर्भ में देखा जाय।'[3] २६ जून १९७५ का क्रूर ऐतिहासिक दिन जब प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आपात्काल की घोषणा की। उस समय प्रजाराम सिनेमा का नाइट शो देखकर बाहर निकलता है तो उसे पता चलता है कि देश में इमरजेंसी लागू हो गई है। इमरजेंसी का नाम ही उपस्थित व्यक्तियों में भय उत्पन्न कर देता है। तभी वहाँ भ्रष्ट इंजीनियर आशुतोष आता है तो प्रजाराम उसे बताता है कि

---

१ डॉ० आदर्श सक्सेना, समीक्षा, अप्रैल जून, अंक १, पृ० २०

२ वही, पृ० २२

३ यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, प्रजाराम, 'मैं इतना ही कहूँगा' से उद्धृत

इमरजेंसी लग गयी है यह सुनकर वह अवाक रह जाता है। उसने बाघ प
सीमेन्ट की जगह राख, कमीशन एक सौ मस्ट्रोल की जगह पाँच सौ मस्ट्रोल
लिखा है। अपनी नौकरी के दौरान उसने लाखो रुपयो की आय की। वह वी०
नाथ और रामेश्वर को फोन करता है तब रामेश्वर कहता है—'देश मे फल
रही अराजकता लूट खसोट महँगाई भ्रष्टाचार को रोकने के लिए इमरजेंसी
की सख्त जरूरत थी।'[1] आपात्काल के समर्थन म पहले बयान प्रकाशित करने म
जुट जाते हैं। वी० नाथ कहता है—'मैं आपात्काल के समर्थन म एक अपील
निकालना चाहता हूँ ताकि हमारी प्रधानमत्री हम अपना खास आदमी समझें।'[2]
आशुतोष आपात्काल स इतना भयभीत है कि उसे हर व्यक्ति सरकारी जासूस
लगता है। प्रजाराम प्रधानमत्री की नीतियो का विरोध करता है तो उसे मीसा
के अन्तर्गत बद करने की धमकी दी जाती है। आपात्काल की आड मे
रामेश्वर जसे टुच्चे लोग भी नेता और पूजीपति बन जाते हैं। आशुतोष के घर
जब 'रेड पडने लगती है तो इसका बचाव रामेश्वर इस तरह करता हुआ उसको
कहता है— ऐसा कि तुम काग्रेस फड मे इक्कीस हजार दे दो। और बीस सूत्री
कार्यक्रम पर बुकलेट छाप कर बटवा दो।'[3] इस तरह आशुतोष को राजनीतिक
सरक्षण प्राप्त हो गया।

इस तरह बीस सूत्री कार्यक्रम जनता के लिए नही वरन प्रधानमत्री एव
उनके पुत्र स जुडे लोगो के लिए वरदान सिद्ध होने लगा। ये सब प्रजाराम की
आँखो के सामने घटने लगा। सजय गाधी को राता रात पचहत्तर करोड जनता
का राजकुमार बना दिया जाता है। रामेश्वर एक स्थान पर कहता है—और
सजय महान नेता है हम नही कहते बल्कि ये कितने ही ससद सदस्य अधिकारी,
राजनेता और जन-जन कह रहा है। एक तरह से सारा देश कह रहा है।'[4] सजय
गाधी को खुश करने उसके कृपा पात्र बनने के लिए स्वागत द्वार बनाये जाते हैं
तथा नव यौवनाएं हाथो म मालाएँ लिए खडी मिलती हैं तो—'सजय बडी ही
छिछोरी नजाकत से मालाएँ लोगो पर फेंक रहा था, विशेषत सुदर चेहरो
पर।[5] रामेश्वर विदेशी जासूस बन जाता है ताकि भारत मे रूसी प्रभुत्व कम
कर दिया जाय। आपातकाल मे नसबदी के कार्यक्रम मे लोग पुरस्कार हेतु
जबरदस्ती नसबदी करने लगे, कलेक्टर एम्बेसडर कार लेने हेतु। अखबार भी

१ यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, प्रजाराम, पृ० ७
२ वही, पृ० १२
३ वही, पृ० ३०
४ वही, पृ० ५१
५ वही, पृ० ११

सरकार के रुख की तरह चलने लगे। 'नाजायज बस्तियाँ साफ हो रही थी, बुलडोजर सुन्दरता के नाम पर बदसूरत घरो के बाशिंदो को उजाड रहे थे।'[1] जनता मे आतक व्याप्त हो गया लेकिन प्रधानमन्त्री के निकटस्थ लोग आपात काल को लोगो के लिए वरदान बताते रहे और प्रधानमन्त्री को विश्वास दिलाते रहे कि सजय देश का महान् नेता हो गया है।

आपातकाल की ऐसी सफलता देखकर चुनाव की घोषणा कर दी और जे० पी० के प्रयासो से विरोधी दल मिलकर 'जनता पार्टी' के नाम से नये दल का गठन कर लेते हैं। आपातकाल के दमन चक्र, बबरता, अधिनायक वाद, भाई भतीजावाद और भ्रष्टाचार से क्रुद्ध होकर काग्रेस को हराने मे जनता पार्टी सफल हो जाती है। मुरारजी दसाई भारत के चौथ प्रधानमन्त्री बन जाते हैं। आशुतोष जैसे भ्रष्ट लोग जनता पार्टी के सदय समिति के वरिष्ठतम सदस्य बन जाते हैं। रामेश्वर आत्महत्या कर लेता है। जनता महगाई के विरोध मे प्रधानमन्त्री का घेराव करती है और उसका नतृत्व प्रजाराम करता है। यह दख प्रधानमन्त्री प्रजाराम से पूछता है कि तुम नेता कब बन गय, तो प्रजाराम कहता है—माननीय मन्त्रीजी इस देश म लीडर व मन्त्री बनने के लिए क्या कोई लम्बी तपस्या करनी पडती है ? जसे आप प्रधानमन्त्री बने, वसे मैं प्रधान नेता बन गया।'[2] जनता के ससद सदस्य २४ माच १९७७ को राजघाट पर गांधी जी की समाधि पर शपथ लेत हैं और वहाँ पर दगा हो जाता है। एस० पी० गोली चलाने का आदेश दे देता ह और प्रजाराम घायल होकर गिर जाता है तथा भाग जाता है।

प्रजाराम अपातकाल की गलत नीतियो का विरोध करता है तब उसे जेल जाना पडता है और जनता शासन म भी सही विरोध पर भी उसकी बात नही सुनी जाती है,

कथ्य विश्लेषण

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र ने इस राजनीतिक उपन्यास 'प्रजाराम' मे आपातकाल एव जनता सरकार के प्रारभिक छह माह का विश्लेपण किया है। आपातकाल मे चारो ओर भय तथा सत्रास, आतक, असमजसता का वातावरण फैल गया था। सरकार के समथक एव सत्तालोलुप दोनो हाथो से पसे लूटने मे लग गए, वहीं ईमानदार और निष्पक्ष लोगो को बुरी तरह से तग किया गया तथा उन्हे सलाखों के पीछे डाल दिया गया। लेखक ने उस समय की जनता की मन स्थिति एव व्याकुलता का चित्रण 'प्रजाराम' के रूप में किया है। प्रजाराम

१ यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, प्रजाराज, पृ० ६१
२ वही, पृ० १४१

सामा य पुरुष न होकर एक प्रतीक पुरुष है—विराट जन शक्ति एव जन चेतना का प्रतीक ।

लेखक को आपातकाल म खराबियो के साथ साथ अच्छाइया भी नजर आती हैं कि उस समय अराजकता कम हो गई और कमचारी अनुशासित रहने लगे थ । प्रजाराम अनेक बार एसा सोचता है कि प्रधानमत्री की नीतियाँ जनहित म है । लेकिन क्रिया वयन सही तरीके स नही हो रहा है । लेखक का दृष्टिकोण आपातकाल की अच्छाइया और बुराइया म सामजस्य बिठाना रहा है । सजय की हठधर्मिता एव दभ की वजह चडाल चौकडी को बताया है । रामश्वर द्वारा आत्महत्या तथा उस द्वारा इस आशय का लिखा पत्र सजय को निर्दोष बताने की कोशिश है ।

जनता शासन के प्रारभिक छह महीनो म उपजे मतभेद, कुर्सियो की लडाई एव अनुशासन हीनता का भी लेखक न अच्छा चित्रण किया है । इसमे कथा सरपट भागती रहती है और पाठक उसमे मग्न हो जाता है । भाषा ललित एव रोचक है । सवाद पात्रानुकूल हैं । आपात्काल की पृष्ठभूमि पर लिखी कृतियो म 'प्रजाराम' का अपना अलग स्थान रहेगा ।

कथासार

सु-राज

सुराज' कम पष्ठो मे सिमटा हुआ एक वहद कथा लिए है । लेखक के शब्दो म— इसका घटनाक्रम बहुत लम्बा है, अत किसी भी सीमा तक इसे विस्तत किया जा सकता था ।'[1] इसका कथानक गामि का क इद गिद घूमता रहता है । काका न शादी नही की फिर भी कही की इट, कही का रोडा जोडकर एक गृहस्थी बसा ली थी । उस गहस्थी म भी भदभाव रहता है । छोटी बहू आनद की विधवा बहू एव बच्चो के साथ दुव्यवहार करती है । देवा विरोध करता है । काका भी समझात ह लेकिन निस्सार । काका दुखी है । उ होने सपना देखा था कि आजादी के बाद यहाँ सब खुशहाल हो जायेंगे लेकिन यथाथ धरातल पर क्या हुआ ? व देवा से कहते हैं — घर बाहर सब जगह से मरा सपना टूट रहा है । मुझ कही कोई किनारा नही दीखता किसका मिला है जीन का हक ?[2] धनकोट, अलमोडा के गरीबो पर बराबर अत्याचार होते रहे । धना को देवदार के पेडा को चोरी से काटने क अपराध मे दण्डित किया जाता है । जमीदार लोहार, हरिजनो की जमीनें दाब लेते हैं । गोचर का रास्ता भी बद हो जाता

१ सुराज, लेखक के दो शब्द स उदधृत
२ हिमाशु जोशी, सुराज, पृ० १६

है। काका ने इस अन्याय के विरुद्ध संघर्ष किया और हरिजनों को अपना हक दिलवाया। जमींदार काका के शत्रु बन गये। उनसे बदला लेने के लिए देवा को हत्या के अपराध में फँसा दिया जाता है। सब जानते हैं कि यह अन्याय हुआ है लेकिन देवा को बचाया नहीं जा सका और उसे सजा हो गई। 'गांधि' की भी किन्हीं अज्ञात लोगों ने हत्या कर दी और गरीबों का हिमायती उठ गया। काका कहते हैं—'अब तक मैं समझा था, सुराज आ गया। गांधि बाबा का सुराज। अपने लोगों का राज। पर अब लगने लगा है सुराज नहीं आया और न फिलहाल आने वाला है।'[1] काका का कथन बिल्कुल सत्य है। सुराज पाने के लिए बदलाव जरूरी है जैसा देवा में आया है, जो हमें जीने नहीं देंगे, हम उनका जीना भी कठिन कर देंगे तुम्हें जो भी सहायता चाहिए मैं दूंगा। तुम मुझे सहारा दो, मैं तुम्हें मुक्ति दूंगा।'[2] यह परिवर्तन ही नई सुबह ला सकेगा, लेखक का यही मन्तव्य है।

कथ्य विश्लेषण

'सुराज' श्री हिमांशु जोशी का लघु उपन्यास है। इस कृति में लेखक ने वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था के सच्चे मगर कड़वे यथार्थ का चित्रण किया है। समानता की दुहाई देती इस व्यवस्था में निम्न वर्ग कितनी पीड़ामय जिन्दगी भोग रहा है। उसके लिए कानून, न्याय, समानता आदि शब्द निरर्थक हो गए हैं। स्वयं लेखक के शब्दों में — सत्ता, शक्ति, सम्पन्नता, न्याय, ये शब्द मात्र कुछ ही लोगों तक सीमित रह गए हैं। दिन प्रतिदिन बढ़ती अर्थ की महत्ता अनेक अनर्थों के द्वार खोल रही है। राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक शिष्टाचार का पर्याय बन गया है।[3] गांधि बाबा गांधी जी के बताये सिद्धांतों को अपनाये हुए हैं। गरीबों पर अत्याचार होता देखकर सीना तानकर खड़े हो जाते हैं। हरिजनों को बरातों में सबसे आगे लगते हैं। हर दुःखी का घर उन्होंने अपना घर समझा। हर असहाय को सहायता पहुंचाई।[4] देश आजाद होने पर परमानन्द पाण्डे ने उनसे कहा था— लड़ाई खत्म हो गई गंगा। अंग्रेज हार गए।[5] किन्तु गरीब के घर एक जून भी चूल्हा नहीं जलता देख काका को लगता था लड़ाई कहां खत्म हुई है? धनकोट के जन काका से पूछते हैं— आप तो कहते थे कका, गरीबों के लिए अच्छे दिन आयेंगे। सबके साथ न्याय होगा। पर

---

१ हिमांशु जोशी, सुराज पृ० २३
२ वही, पृ० ४६
३ वही, सुराज के सम्बन्ध में लेखक के दो शब्द से उद्धृत
४ हिमांशु जोशी, सुराज,पृ० १४
५ वही, पृ० १५

यह क्या न्याय है, जहा कोई रो भी नही सकता ?"[1] इसका जवाब उनके पास नहीं है।

गरीबों की लड़ाई के अगुआ काका की हत्या कर दी जाती है। उनका बेकसूर बेटा देवा हत्या और डकैती के जुल्म मे जेल के सीकचों के पीछे डाल दिया जाता है। हमे अभी सुराज मिलने मे समय लगेगा। 'काका' की हत्या साधारण हादसा न होकर गांधीवादी सिद्धातो की हत्या है। गरीबो को नई सुबह की बराबर तलाश है। निश्चय ही हिमाशु जोशी की यह कृति भ्रष्ट राजनीति द्वारा गरीबो के सूखते आसुओ का यथार्थ दस्तावेज [illegible]।



---

१ हिमांशु-जोशी-सुराज, पृ० ४३

४ | राजनीतिक विचारधारा

राजनीतिक विचारधाराओ से हमारा आशय उन चिन्तन पद्धतियो से है, जो सवदेशीय एव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सवमान्य एव प्रचलित तथा राजनीति के मूलभूत आधारो से जुडी हुई हैं। इनमे से कतिपय विचारधाराए जैसे मार्क्सवाद, लोकतान्त्रिक समाजवाद, राजतन्त्रवाद, अराजकतावाद, समाजवाद, राष्ट्रवाद आदि शुद्ध राजनीतिक चिन्तन से प्रसूत हैं किन्तु कतिपय विचारधाराएँ राजनीति से इतर क्षेत्रों से भी सम्बन्धित हैं जैसे मानवतावाद, गाँधीवाद, सर्वोदयवाद आदि। हिन्दी के कथाकारो ने देश विदेश मे प्रचलित राजनीतिक चिन्तन पद्धतियो को घटनात्मक प्रेरणाओ, अनुभूतियो एव सामाजिक चेतना की प्रवत्तियों से सदर्भित करके कथा-कृतियो मे चित्रित किया है। दूसरे शब्दो मे उपन्यासकारो ने राजनीतिक विचारधाराओ के सैद्धांतिक आधारो का निरूपण न करके इन विचारों को व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व जीवन से जुडी हुई प्रतिक्रियाओ को चित्रित किया है। उपन्यासकारो की चिन्ता, सृजनधर्मी आस्था और सजगता का मानदण्ड व चेतना है, जो समीक्ष्य उपन्यासो की घटनाओ, पात्रो के क्रिया कलापो सवादो एव द्वन्द्वात्मक स्थितियो, परिस्थितियों के माध्यम से व्यक्त हुई है। वस्तुत यही राजनीतिक चेतना राजनीति शास्त्र या राजनीति विज्ञान से साहित्य और विशेष रूप से उपन्यासो मे चित्रित राजनीतिक चेतना की विभाजक रेखा है।

लोकतान्त्रिक समाजवाद

समाजवाद स्वरूप, परिभाषा और मूल तत्व

समाजवाद शब्द की 'उत्पत्ति' 'सोसियस' (Scious) शब्द से हुई है जिसका अर्थ समाज है। समाजवाद का सम्बन्ध समाज के समग्र स्वरूप में सुधार लाने से है। वर्तमान युग मे समाजवाद एक सशक्त विचारधारा ही नही अपितु

समाज दर्शन के रूप में उभरा है। समाजवाद शब्द का अंग्रेजी पर्याय 'सोशलिज्म' (Socialism) है।

परिभाषाएं

मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश में समाजवाद को परिभाषित करते हुए लिखा गया है—*(१) समाजवाद समाजतन्त्र वह सिद्धांत है जिसके द्वारा वैयक्तिक* स्वतन्त्रता सामूहिक हित के आगे गौण होती है। (२) प्रतियोगिता उत्पादन के स्थान पर सहकारी पद्धति भूमि एवं पूंजी पर राष्ट्रीय स्वामित्व, उत्पादन का राज्य द्वारा वितरण (३) नि:शुल्क शिक्षा तथा बच्चों का भरण पोषण, न्याय भाग (उत्तराधिकार) का उन्मूलन।[१] वैबस्टर शब्द कोश के अनुसार 'समाजवाद सामाजिक सन्गठन के सामूहिक अथवा सहकारी स्वामित्व और वस्तुओं के उत्पादन एवं वितरण के लिए लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था के अनिवार्य साधनों पर *आधारित राजनीतिक एवं आर्थिक सिद्धांत है अथवा यह (समाजवाद) एक नीति या व्यवहार है जो उपर्युक्त सिद्धांतों पर आधारित है।* समाजवाद का उद्देश्य प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग लाभ कमाने के स्थान पर सामाजिक सेवा तथा सभी को आय तथा सामाजिक अवसर अधिक समान रूप से उपलब्ध करना है।"[२]

समाजवाद व्यक्तिवाद के विरोध में सामाजिक जीवन को महत्त्व देता है। समाजवाद में व्यक्तिवाद सामंतवाद और पूंजीवाद द्वारा उत्पन्न सभी विषमताओं और बुराइयों का अंत हो जाता है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि समाजवाद में लोकतन्त्र का कोई स्थान नहीं होता। सार्वजनिक सम्पत्ति पर सरकार का अधिकार होता है और सरकार सर्वाधिकारवादी होती है। समाजवादी समाज की रचना व्यापक लोकतंत्र पर आधारित है जिसमें राज्य के सभी श्रमिक वर्ग क्रियाशील रहते हैं। समाजवादी लोकतन्त्र में सभी सामाजिक अधिकार उपलब्ध होते हैं जैसे श्रम करने, विश्राम करने अवकाश का अधिकार नि:शुल्क शिक्षा स्वास्थ्य सेवा, वृद्धावस्था में सुरक्षा, भाषण, प्रेस, सभा, निर्वाचित होना आदि स्वतन्त्रता का अधिकार।[३] वस्तुतः एक दार्शनिक सिद्धांत के रूप में समाजवाद समाज की सभी उपलब्धियों में कार्यकारण सम्बन्ध स्थापित

---

१ सत्यप्रकाश और बलभद्र प्रकाश मिश्र (सं०) मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश (१९७१) पृ० १२१०

२ Webster's New International Dictionary of the English Language, Vol 2, p 2387

३ M Rosenthal and Yudin (Editor), A Dictionary of philosophy p 415

करता है। अत कहा जा सकता है कि समाजवाद अपने आतरिक परिवेश मे द्वद्वात्मक भौतिकवाद का पर्याय है तथा बाह्य रूप मे प्रगतिशील विश्व रथ को कल्याण पथ पर परिचालित करने वाला सारथी और उस पर आरूढ़ मानवीय अधिकारों—स्वतत्रता, समानता, प्रेम एव उत्थानमूलक चैत यता का रक्षक है।[1]

समाजवाद के मूल तत्व

डा० सुषमा कश्यप ने समाजवाद के जिन तत्वो का उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं—

१ सामाजिक प्रभुत्व का पक्षधर

समाजवाद का शाब्दिक अर्थ भी यही होता है कि ऐसी विचारधारा या दर्शन जो व्यक्तिवाद के स्थान पर सामाजिक दर्शन की श्रेष्ठता का महत्व देता है। समाज के सामूहिक प्रयास से ही व्यक्तियो का कल्याण होता है। अत व्यक्ति से समाज अधिक महान और उच्चतर होता है।

२ व्यक्तिगत सम्पत्ति का अत

समाजवाद मे पूजीवाद की विषमताओ को कोई स्थान नही है। पूजीवाद शोषण और व्यक्तिगत लाभ की व्यवस्था पर टिका होता है। इसके विपरीत समाजवाद मे निजी सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण हो जाता है और श्रमिक वर्ग को उनके श्रम का पूरा लाभ प्राप्त होता है।

३ प्रतियोगिता के स्थान पर परस्पर सहयोग को मान्यता देना

पूजीवादी समाज व्यवस्था मे स्वतत्र प्रतियोगिता को प्रश्रय मिला होता है। इसमे कमजोर वर्ग धनी से मुकाबला नही कर पाता। इससे एकाधिकारवादी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं और समाज मे आर्थिक वर्ग बन जाते हैं। समाजवाद न केवल आर्थिक प्रतियोगिताओ को समाप्त करता है अपितु समाज के किसी भी विशिष्ट वर्ग की श्रेष्ठता का भी अत करता है। सामाजिक जीवन का विकास परस्पर सहयोग से ही सभव होता है, न कि प्रतियोगिता से।

४ समता और स्वतत्रता समाजवाद के सुदृढ स्तम्भ हैं

समाज मे अमीर और गरीब, स्त्री-पुरुष, उच्च और निम्न जितने भी वर्ग हों उनको दूर करके सबकी समानता स्थापित की जाती है। वर्गहीन समाज मे ही वास्तविक स्वतत्रता का उपभोग किया जा सकता है। समाजवाद मे ही

---

१ डा० शकरलाल जायसवाल, हिन्दी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव, पृ० २१

श्रमिकों को सामाजिक न्याय प्राप्त होता है। और उनको विकास के पर्याप्त अवसर मिलते हैं।

५ उत्पादन के साधनों पर सामाजिक नियंत्रण

समाजवादी समाज में सभी प्रकार की सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण होने से उत्पादन के साधनों पर समाज का ही नियंत्रण होता है। निजी उद्योग व्यक्ति का शोषण करते हैं और पूंजीवाद को इससे प्रश्रय मिलता है। अत उत्पादन के साधनों पर समाज का आधिपत्य होने से उपभोक्ता वस्तुएँ सभी को समान रूप में उपलब्ध होती हैं और सबको सार्वजनिक सेवाओं का समान रूप से लाभ मिलता है।

६ समाजवाद राजनीतिक आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता का पक्षधर है

पूंजीवादी अथवा व्यक्तिवादी समाज व्यवस्था में आम आदमी को कागजी स्वतंत्रता तो प्राप्त होती है किन्तु व्यवहार में वह जातीय श्रेष्ठता, आर्थिक-सम्पन्नता और राजनीतिक पद के सामने कठपुतली के समान व्यक्तित्वहीन हो जाता है और उसके लिए स्वतंत्रता महज धोखा मात्र होती है।[1]

समाजवाद और लोकतंत्र

समाजवाद अपने प्रारंभिक रूप में एक विचारधारा के रूप में प्रचलित हुआ था जिसमें व्यक्ति और पूंजीवाद के द्वारा उत्पन्न सामाजिक विकृतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए सामाजिक सर्वोपरिता की बात कही गयी थी। व्यक्तिवादी और पूंजीवादी समाज व्यवस्था में व्यक्ति और पूंजी को इतना अधिक महत्त्व दिया गया कि समाज विशृंखलित होने लगा। अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यक जन समुदाय हर प्रकार से शोषण करता रहा। वर्ग युक्त समाज में लोकतंत्र शासन पद्धति को मान्यता दी गयी है। इंगलैण्ड, अमेरिका, भारत, जापान फ्रांस आदि राष्ट्रों में लोकतंत्र प्रचलित है किन्तु इन देशों में लोकतंत्र कागजी है और लोकतंत्र के नाम पर सुविधा सम्पन्न लोग ही सत्ता तक पहुँच पाते हैं और समाज में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विषमताएँ बरकरार रहती हैं। भारत जैसे विशाल देश में आम आदमी के लिए निर्वाचित होना मुश्किल काम है। समाजवादी लोकतंत्र का सर्वोच्च स्वरूप है। समाजवादी लोकतंत्र में सभी नागरिकों को संवैधानिक अधिकारों की प्राप्ति का अधिकार होता है। समाजवादी लोकतंत्र में श्रमिक वर्ग को बिना किसी भेदभाव के

---

१ डा० सुषमा कश्यप, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना, पृ० २०५-२०६

आर्थिक सुरक्षा का अधिकार प्राप्त होता है।[१] प्रो० सीले के अनुसार लोकतन्त्र मे प्रत्येक व्यक्ति शासन मे हाथ बटाता है।

समाजवाद और पूजीवाद

पूजीवाद सामाजिक-आर्थिक सिद्धातो पर आधारित समाज की सरचना है, जो सामतवाद के स्थान पर प्रतिष्ठित हुई। पूजीवाद म उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत प्रभुत्व होता है और मजदूर वग पर शोषण होता है। सामतवादी समाज व्यवस्था को बदलने मे पूजीवाद ही सफल हुआ। पूजीवाद विकास के दौर मे पूजीवाद के विरोधी तत्व उभरे और वग सघष प्रारम्भ हुआ। पूजीपतियो, बिचौलियों आदि के साथ सवहारा वग का सघष बढ़ता गया और द्वितीय महायुद्ध के रूप मे पूजीवाद साम्राज्यवाद प्रकट हुआ। पूजीवाद मे स्वय गतिरोध उत्पन्न हो जाने से इसका ह्रास होने लगा और समाजवादी स्वरूप का उदभव तथा विकास हुआ। इस प्रकार मानव विकास के ऐतिहासिक दौर मे पूजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर समाजवाद प्रतिष्ठापित हुआ है। रूस, चीन, क्यूबा, चेकोस्लोवाकिया यूगोस्लोवाकिया, रूमानिया आदि दशो मे समाजवादी व्यवस्था का निर्माण हो रहा है।

समाजवाद और गाधीवाद

समाजवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय विचार दशन है जो मानव के सतत् सघषशील विकासक्रम का परिणाम है। समाजवाद मे व्यक्ति के विकास की सम्पूर्ण सभावनाए निहित हैं। दूसरी ओर गाधीवादी गाधीजी के विचारो का समुच्चय है। गाधीवाद के मूल सिद्धात सत्य अहिंसा प्रेम भ्रात भाव आदि हैं। इसे वाद न कहकर जीवन मे एक प्रयोग के रूप मे एक तरीका समझना चाहिए। गाधीवाद ऐसा वाद है जिसमे सभी का कल्याण सभव है। गाधीवाद म समाज को क्रातिकारी ढग से बदलने की सभावना नही होती। गाधीवाद सामाजिक राजनीतिक समस्याओ का हल नैतिक स्तर पर ढूढता है। गाधीवाद आध्यात्मिक मूल्यो (नैतिकता, धम, सत्य, अहिंसा) पर आधारित है, ईश्वर-श्रद्धा और ईश्वर विश्वास उसके मूल आधार हैं धम इसका प्राण है। परोपकारिता अर्थात मानवमात्र की नि स्वाथ सेवा आत्मसिद्धि का मुख्य साधन है।[२]

समाजवाद और साम्यवाद

समाजवाद गतिशील समाज का समग्र दशन है। समाजवादी दशन का विकास पूजीवाद से सघष करने के परिणामस्वरूप उदभूत हुआ। साम्यवाद एक

१ M Rosenthal & K P Yudin (Editor) A Dictionary of Philosophy, p 116

२ पी० के० चड्ढा—राजनीतिक विचारधाराए, पृ० ४१६

वैज्ञानिक दशन है जो एतिहासिक विकास के नियमो पर आधारित है। इसकी स्थापना कार्ल मार्क्स ने की थी। साम्यवाद मे किसी राजनीतिक सत्ता की आवश्यकता नही होगी। साम्यवादी समाज म राजनीतिक और वधानिक सस्थाए और विचारधाराएँ स्वत समाप्त हो जाएँगी।

समाजवाद सामाजिक स्थिति का एक दौर है जिसमें पूजीवाद का अस्तित्व खत्म हो जाता है। कम्युनिज्म समाज का एक ऊचा दौर है। वह समाजवाद के बाद की प्रगति है। कम्युनिज्म समाजवाद के सफल हो जाने पर ही मुमकिन हो सकेगा अर्थात समाज की तमाम भौतिक और सास्कृतिक आवश्यकताओ का पूरा करने के लिए काफी पैदावार बढा सकने पर ही वह मुमकिन हो सकेगा।[1]

मार्क्सवादी साम्यवाद या मार्क्सवाद आधुनिक क्रातिकारी चिन्तनशील धारा है। यह एक भौतिकवादी जीवन दशन है जो परोक्ष चिन्तन की अपेक्षा भौतिक सम्पन्नतामय स्वरूप सामाजिक जीवन को ही अपना लक्ष्य मानता है।[2]

डा० रणजीत लिखते हैं कि मार्क्सवाद एक प्रकार का नया और वज्ञानिक मानवतावाद है, जिसे राजनीति और अथशास्त्र के क्षेत्र मे समाजवाद और साम्यवाद दशन के क्षेत्र मे द्व द्वात्मक वस्तुवाद और समाजशास्त्र तथा इतिहास के क्षेत्र मे ऐतिहासिक वस्तुवाद कहा जाता है।[3]

दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एव कलागत पहलुओ के परिप्रेक्ष्य मे समाजवादी विचार दशन

दाशनिक पहलू

समाजवाद एक व्यापक जीवन दशन है, जिसमे सामाजिक जीवन का प्रत्येक पक्ष समाहित है। वतमान समाजवाद जिसे वैज्ञानिक समाजवाद कहना अधिक उपयुक्त होगा यह कार्लमार्क्स की देन है। मार्क्सवादी समाजवाद अथवा वज्ञानिक समाजवाद का दाशनिक आधार द्व द्वात्मक भौतिकवाद है। द्व द्वात्मक भौतिकवाद का प्रमुख गुण प्रतिकूलता या विरोध (Contradiction) है। द्वद्वात्मक भौतिकवाद प्रकृति और समाज को समझने का एक दाशनिक तरीका है। द्वद्वात्मक दशन मे कुछ भी अतिम और पूण नही है। यह प्रत्येक वस्तु मे बाह्य और आतरिक परिवतन को लक्षित करता है।

---

१ आइ० डब्ल० रासन—कम्युनिज्म क्या है? प० २१ २२
२ डा० जनेश्वर वर्मा—हिन्दी काव्य म मार्क्सवादी चेतना (भूमिका) प० ५
३ डा० रणजीत—हिन्दी की प्रगतिशील कविता पृ० ३१

द्वद्वात्मक भौतिकवाद वैज्ञानिक उपलब्धियो के सामान्य नियमो तथा मानवीय इतिहास के अनुभवो से उदभूत हुआ जिससे यह मालूम हुआ कि सामाजिक जीवन और मानव चेतना प्रकृति की तरह ही निरन्तर परिवर्तित एव गतिशील है।

द्वद्ववाद के मूल सिद्धात को मार्क्स ने हीगेल के दर्शन से ग्रहण किया। हीगेल का दर्शन आदर्शवादी है और विचार अथवा चेतना को प्रमुख एव शाश्वत मानता है और भूत तत्त्व को गौण। मार्क्स ने इसके विपरीत भूत तत्त्व को प्रमुख माना और चेतना को उसका गुणात्मक परिवर्तन स्वीकार किया। द्वद्ववाद के तीन सामान्य नियम हैं—

१ मात्रात्मकता से गुणात्मकता म और गुणात्मकता से मात्रात्मकता मे परिवर्तित होने का नियम (The Law of Transformation of quantitative in to quatitative changes and vice versa)
२ विरोधी विचारो, घटनाओ, वस्तुओ, शक्तियो आदि का एकता और सघर्ष का नियम (*Law of Unity and struggle of opposites*)
३ निषेध के विरोध का नियम (The Law of the Negation of negation)

सामाजिक पहलू

मार्क्स ने द्व द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त को मानव समाज के इतिहास पर आरोपित किया और इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत की। इस द्वद्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या के अनुसार विश्व का, उसके विकास का, मानव जाति के विकास और मानव मन पर इस विकास के प्रतिबिम्ब का सच्चा चित्र मिल सकता है क्योकि यह प्रणाली जीवन और मृत्यु, पुरोगामी और प्रतिगामी परिवर्तनो की असख्य क्रियाओं प्रतिक्रियाओ का सदा ध्यान रखती है।[1] मार्क्स ने मानव इतिहास को निम्नलिखित छह अवस्थाओ मे विभक्त किया है—

(१) आदिम साम्यवादी अवस्था,
(२) दास प्रथा की अवस्था,
(३) सामतवादी अवस्था,
(४) पूजीवादी अवस्था,
(५) समाजवादी अवस्था या सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व।
(६) साम्यवादी अवस्था।[2]

ऐतिहासिक द्वद्वात्मक भौतिकवाद म पूजीवाद से समाजवादी व्यवस्था के सक्रमण को ऐतिहासिक अनिवार्यता का स्वरूप प्रदान किया है। पूजीवादी समाज व्यवस्था से समाजवादी समाज व्यवस्था मे सक्रमण करने के लिए जो समय

१ एंगेल्स—समाजवाद काल्पनिक तथा वैज्ञानिक, पृ० ६२
२ पी० के० चड्ढा—प्रमुख राजनीतिक विचारक, पृ० १३३

लगता है उसने मध्य मानव के सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष म नवीन सबधों का निर्माण हो रहा है।

समाजवाद और कला

समाजवादी दर्शन मे कला व्यक्तिपरक न होकर समाजपरक मानी जाती है। कला सामाजिक चेतना का ही विशिष्ट स्वरूप है, परन्तु उसका मूल जन समुदाय के भौतिक क्रिया व्यापार म है जिसके सूत्र किसी विशिष्ट उत्पादन पद्धति के अन्तर्गत प्रतिफलित होने वाले सामाजिक सबधो से सम्बद्ध हैं।[1] कला का जन्म श्रम की प्रक्रिया मे ही हुआ है। किसी महत्त्वपूर्ण काय के प्रारम्भ करने मे पहले सामूहिक उत्साह और शक्ति को जगाने के लिए नाटकीय ढग स समूह नृत्यो की प्रथा चली जिनमे लयात्मक ध्वनियो के सहारे सामूहिक अग सचालन की कला का विकास हुआ।[2] कलाकार की प्रतिभा का निर्माण भौतिक शक्तियो के सक्रिय परिवेश मे होता है। जिस कलाकार का जीवन से सम्पर्क नहीं होता समाज से कोई सबध नही होता उसकी कला दृष्टि अतिशय कल्पनाजीवी, एकागी और जीवन शून्य हो जाती है। सामाजिक दर्शन कलाकार की मर्म भेदी दृष्टि उसके चिन्तन और उसकी भावनाओ को नई दिशा देता है।[3] इस प्रकार समाजवादी दर्शन में कला सामाजिक जीवन की गतिशीलता को ही प्रेरित करती है।

लोकतान्त्रिक समाजवाद की भारतीय परम्परा और उसके प्रमुख चिन्तक

मानव समुदाय की आदिम अवस्था समाजवादी थी। मानव अपनी शारीरिक एव मानसिक विशिष्टताओ के कारण जीवन रक्षा के लिए समूहों मे रहता था। पश्चिम मे इस विचारधारा का प्रारम्भ १९वी सदी मे हुआ। भारत म २०वी शताब्दी के द्वितीय शतक से। आधुनिक भारतीय समाजवाद पर पश्चिमी समाजवादी विचारधारा का पूरा प्रभाव पडा। भारत मे लोकतान्त्रिक समाजवादी विचारो के व्यवस्थित प्रचार प्रसार का सूत्रपात सन १९३४ से माना जाता है।

मानवेन्द्रनाथ राय और लोकतन्त्रात्मक समाजवाद

श्री एम० एन० राय गाधीजी के कटु आलोचक थे। उन्हें युवावस्था मे ही विश्व भ्रमण करने का अवसर मिला। (वे १९२० मे रूस पहुचे और लेनिन के साथ

---

१ V I Jerome-Culture in a Changing world p 69
२ George Thomson Marxism and poetry p 9
३ प्रकाशचन्द गुप्त—हिन्दी साहित्य मे जनवादी परम्परा, पृ० १०

काफी समय तक काम किया। १६२६-२७ में चीन गये और वहाँ भी समाजवाद के निर्माण हेतु कार्य किया। फिर भारत आ गये और कांग्रेस में चार साल तक कार्य किया, फिर कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। भारतीय लोकतान्त्रिक समाजवादी आंदोलन के विकास में राय महोदय के उग्र मानवतावाद एवं नव मानवतावाद की विशिष्ट देन है। राय की मानवतावाद का ढांचा भौतिकवादी है। भौतिकवाद ही उनके विचार में मानवता के संकट को दूर कर सकता है। श्री राय की यह महत्वपूर्ण अवधारणा है कि प्रजातन्त्र तभी सफल हो सकता है, जब आध्यात्मिक चेतना से मुक्त व्यक्तित्व जन कार्यों को सम्पन्न करते हैं। उन्होंने मानवीय गुणों के प्रभाव के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मामलों में भी स्वीकारा है। समकालीन मानव के कष्टों को इसी प्रकार दूर किया जा सकता है।

राममनोहर लोहिया

भारतीय समाजवादी आन्दोलन के जुझारू नेता के रूप में डा० राममनोहर लोहिया का नाम प्रसिद्ध है। आप हमेशा सरकारी नीति के आलोचक रहे हैं। श्री लोहिया ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को उचित स्थान दिलाने में भरसक प्रयास किया। उनका प्रबल मत था कि लोक भाषा से ही वास्तविक प्रजातन्त्र की स्थापना हो सकती है। विकेन्द्रीकृत अर्थ व्यवस्था के वे पक्षपाती थे और कुटीर उद्योग का विकास चाहते थे। छोटी मशीनों से चलने वाले छोटे उद्योगों से अधिकतम लोगों को रोटी रोजी मिलेगी। वे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को मानते थे, किन्तु मार्क्सवाद के अंध भक्त नहीं थे। इतिहास के चाक्रिक सिद्धान्त में उनका विश्वास था। महात्मा गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सहारा लेकर जन अधिकारों की प्राप्ति चाहते थे।

समीक्ष्य उपन्यासों में निरूपित लोकतान्त्रिक समाजवाद की प्रमुख प्रवृत्तियां

१ सामाजिक संगठन का लोकतन्त्रीय आधार

लोकतान्त्रिक समाजवाद में समाज के संगठन का आधार लोकतन्त्र होता है। राजनीतिक सत्ता से लेकर अन्य सभी आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक संगठन, जन भावनाओं के अनुकूल ही गठित होते हैं। फ्रांसीसी राज्य क्रांति में लोकतन्त्र को वैधानिक रूप प्राप्त हुआ था किन्तु इस प्रकार के प्रजातन्त्र को मार्क्स ने वैधानिक अधिकारों का खेल बताया है। प्रजातन्त्र का विकास पूंजीवादी और समाजवादी देशों का भिन्न भिन्न रूपों से हुआ है। वस्तुतः पूंजीवादी देशों में सामाजिक संगठन का आधार पूंजीवादी प्रजातन्त्र है। भारत में भी राजनीतिक, आर्थिक संगठन, पूंजीवादी प्रजातन्त्र के आधार पर ही गठित हुए हैं।

२ लोक सामर्थ्य या जन शक्ति में आस्था

वर्तमान युग वस्तुतः जन शक्ति का ही उत्थान करता है। नूतन समाज की रचना में जन शक्ति की क्रियाशीलता ही आज के उपन्यासों की प्रेरणा है।

३ व्यक्ति के स्थान पर समष्टि को मान्यता

लोकतंत्र में व्यक्ति के स्थान पर समाज को प्रमुखता दी जाती है। समाजवादी लोकतन्त्र अपने को तभी सार्थक करता है जब समाज के सुख-दुख के लिए व्यक्ति स्वयं को समर्पित कर देता है।

४ पूजीवादी शोषण का प्रतिरोध

समस्त पूजीवाद सामाजिक ढांचा शोषण पर आश्रित है। इस पूजीवाद का विरोध करने के लिए ससार भर में श्रमिकों के सगठन स्थापित हुए हैं। समाजवादी समाज की परिकल्पना और उसकी स्थापना के प्रयास निरन्तर चलते रहे हैं। फ्रास रूस चीन की क्रातियो के मूल में पूजीवादी शोषण का प्रतिरोध ही कार्यरत रहा है। हमारा देश १९४७ में अंग्रेजों की दासता से मुक्त हुआ और साम्राज्यवादी शोषण का अन्त हुआ, लोकतन्त्र समाजवाद की स्थापना हुई। देश के साहित्यकारो ने भी अपनी रचनाओं में शोषित, दलितों और पीडितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है।

५ शोषितो, दलितो और पीडितो के प्रति सहानुभूति

लोकतान्त्रिक समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का शोषण, उत्पीडन अथवा दमन के लिए कोई स्थान नही है। वर्गभेद पूजीवादी समाज की देन है। अत समाजवादी समाज में वर्ग नही होते हैं। जब वर्ग ही नही होता है तो उस समाज मे शोषण और उत्पीडन भी नही होता है।

६ सामाजिक समता की सकल्पना

सामाजिक समता का सिद्धात लोकतान्त्रिक समाजवाद की आधारशिला है। जिस समाज मे समता का महत्व नही दिया जाता उसमे व्यक्तिवादी पूजीवादी वर्ग भेद पनपते हैं और मानव के द्वारा मानव का शोषण होता है। समता मानव को समान धरा पर खडा करती है और विकास के समान अवसर उपलब्ध होते हैं।

७ श्रम की महत्ता का प्रतिपादन

श्रम से ही अर्थ की सिद्धि होती है। दुनिया का समस्त ऐश्वर्य-वैभव ज्ञान विज्ञान कला कौशल श्रम की महत्ता को ही प्रतिपादित करते हैं। पूजीवादी व्यवस्था का ढाचा श्रम के शोषण पर ही खडा है। मार्क्सवाद के अनुसार सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व मे वर्गहीन समाज की स्थापना होगी। उस समाज

में प्रत्येक व्यक्ति श्रम के आधार पर ही अपनी जीविका उपार्जित कर सकेगा।'[1] प्रत्येक व्यक्ति के लिए श्रम आवश्यक है। लोकतान्त्रिक समाज मे श्रम का अधिक महत्व है।

८ राजनीतिक और आर्थिक स्वातन्त्र्य पर समान बल

लोकतान्त्रिक समाजवादी व्यवस्था मे राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ आर्थिक स्वतन्त्रता भी होनी चाहिए। बिना आर्थिक स्वतन्त्रता के राजनीतिक स्वतन्त्रता कोरा दिखावा है। पूँजीवादी व्यवस्था मे राजनीतिक स्वतन्त्रता तो प्राप्त होती है किन्तु आर्थिक स्वतन्त्रता का अभाव रहता है। हमारे देश मे आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयास किये जा रहे हैं।

९ राज्य सत्ता का लोप और वर्गहीन आदर्श-समाज की सकल्पना

आदर्श लोकतान्त्रिक समाजवादी व्यवस्था मे हर प्रकार के वर्ग का अंत हो जाता है। सोवियत रूस मे वर्गहीन समाज की स्थापना का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष—स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय ही देश के नेतागण देश मे लोकतान्त्रिकात्मक शासन प्रणाली स्थापित करने के लिए वचनबद्ध थे। इसमे अग्रणी नेताओ मे जवाहरलाल नेहरू थे।

लोकतान्त्रिक समाजवादी विचारधारा पर आधारित हिन्दी उपन्यास

'एक और मुख्यमंत्री' मे लेखक ने लोकतान्त्रिक समाजवादी व्यवस्था का समर्थन एव पूँजीवाद का विरोध किया है तथा शोषितो को सगठित होकर पूँजीवाद के खिलाफ क्रान्ति का आह्वान किया है – 'मजदूरो को सबसे पहले उठकर पूँजीपतियो के खिलाफ क्रान्तिकारी लडाई शुरू करनी चाहिए और इस लडाई में सभी मेहनतकशो और शोषितो को अपने साथ एकत्रित करना चाहिए।'[2]

लोकतान्त्रिक समाजवादी विचारधारा म जनता की शक्ति व उसकी महत्ता का उद्घोष करता है और जन शक्ति मे विश्वास करता हुआ कथानायक अरविंद कहता है—'मैं आपके दु ख दर्द को दूर करने मे तन और मन लगा दूगा। आपका मत कभी भी रग ला सकता है। आप उस दल को ही मत दें, जिस दल का देश मे बहुमत और जिनके पीछे जनमत हो। आज जनमत कांग्रेस के पीछे बना है। इसलिए आप कांग्रेस को वोट देकर सफल बनायें।[3]

---

१ John Strachy, The Theory and Pract ce of Socialism, P 405

२ एक और मुख्यमंत्री, पृ० ८१

३ वही, पृ० ८४

इस व्यवस्था म पूजीवाद के शोषण व उसकी उपस्थिति को स्वीकार नही किया गया है। समाजवादी व्यवस्था सम्पत्ति के समान बटवारे पर जोर दता है और धन के आधार पर की गई नेतागिरी का विरोध करती है। 'एक और मुख्यमत्री' मे इस दृष्टि स लोकतात्रिक समाजवादी व्यवस्था का समथन किया गया है। यथा बिना पसा आज की नेतागिरी पगु है, सफल नेता वही बन सकता है जा या तो बिल्कुल तिकडमी हो या जिसकी तिजोरिया मे चादी के सिक्के नाचते हा। पसा, जातीयता का जार, तिकडम, झूठ, कठोरता, धम का नाम नतागिरी।'[1] इस तरह धन पर आधारित पूजीवादी व्यवस्था के रहत लोकतात्रिक समाजवादी व्यवस्था हीन होती जा रही है।

यह व्यवस्था मानव मानव म व्याप्त वमनस्य भाव आर्थिक, धार्मिक एव राजनीतिक असमानता तथा भेदभाव को समाप्त कर सब म सम भाव एव भातृत्व की स्थापना करना चाहती है। लोग अपनी जरूरत से ज्यादा धन का सचय करते हैं, जिसके फलस्वरूप गरीबी बढ़ती जाती है, छोटा पूजीपती बडा पूजीपति बनने के लिए अनतिक साधनो को अपनाता है। शोषित व्यक्ति शोषण की चक्की मे निरतर पिसता जाता है। अरविन्द अपनी धम-पत्नी गुलाब से कहता है इस ससार की हर चीज उतनी ही मिलनी चाहिए जितनी कि उसे जरूरत हो। जरूरत से ज्यादा मिल जान पर आदमी-आदमी की सज्ञा स हटकर कुछ और बन जाता है। यह कुछ और बन जाना उस सहजता से अलग कर दता है।[2]

स्वतत्रता के पश्चात् भारत म लाकतात्रिक समाजवादी व्यवस्था लागू की गई। लेकिन इसके परिणाम सुखकर नही निकले। आज दलित एव पीडित वग पर निरतर शोषण हात जा रह हैं। इस शोषण का प्रमाण इस उपन्यास म एक शोषित व्यक्ति के माध्यम स मिलता है। वह शोषित व्यक्ति मुख्यमत्री अरविंद से कहता है—'आप मत्री जी हैं न? सरकार मुझे माफ करें, आपको बताऊँ। यहा हमे अपनी मजदूरी की एवज म अनाज भी पूरा नहीं मिलता। ये आपके अफसर जमीदारो के कारिन्दो से कम नही हैं। हमे खूब लूटते हैं। इनमे कोई दया हया नही। इन्हे हम पर रहम नही आता है सरकार। आप अचरज करेंगे कल आपके एक अफसर ने शराब पीकर एक लडकी की इज्जत ले ली यह है ऐसी जिन्दगी और जीन पर। पर जीना पडता है लाशो की तरह जिन्दगी को कधो पर ढोना पडता है।'[3] आज इस लोकतात्रिक समाजवादी व्यवस्था मे न जाने इस शोषित की तरह कितने और शोषित व्यक्ति इस व्यवस्था के अन्दर पिस जा रहे हैं फिर भी जी रहे हैं जीने के लिए सिर्फ लाश बनकर।

---

१ एक और मुख्यमत्री, पृ० ७२
२ वही, पृ० ९२
३ वही, पृ० ३९५

'सबहिं नचावत राम गोसाई' में गयादीन हिंदुस्तान की स्वतन्त्रता के पश्चात् इस लोकतान्त्रिक समाजवादी व्यवस्था का मूल्याकन करता हुआ कहता है— 'हिंदुस्तान स्वतन्त्र हो गया है, और उसे यह भी मालूम था कि महात्मा गाधी और पडित जवाहरलाल नेहरू न इस देश के जानवरो से गये बीते आदमियो को मनुष्य की तरह रहना, व उसकी कोटि मे ला खडा कर दिया।'[3] अयोग्य भ्रष्टाचारी नेताओ के भाई भतीजे का ऊँचे पदो पर पहुच जाना, लेकिन योग्य होने पर भी सामाजिक राजनीतिक जीवन मे किसी महत्वपूर्ण अवस्था को प्राप्त न कर पाने की कचोट जनतान्त्रिक चेतना से उपजी है। प्रजातान्त्रिक व्यवस्था म राजनीतिक से व्यक्ति का सीधा सम्पर्क होने से वह स्वय को राजनीति का अग मानने लगा है। इसीके परिणाम स्वरूप लोकतान्त्रिक मूल्यो की प्रतिष्ठा होती रही है। इस विचार से यह उपन्यास अधिक प्रभावित रहा है।

पूजीवादी व्यवस्था मे गरीब किसानो को अपना हक नही मिल पाता। कामरेड रवीन्द्र किसानो को वास्तविक मुआवजा दिलाने के लिए कहता है— हम लोग तो साधनहीन, उत्पीडित और शोषित वर्ग के आदमी हैं। सहायता करने के साधन हम लोगो के पास कहा? और यह सरकार पूजीवादी सरकार है, आप स्वय पूजीपति हैं। तो इस सरकार का और आपका भरोसा कैसे किया जा सकता है? नही तो सेठ जी, इन किसानो को उचित मुआविजा मिलना चाहिए।'[1] यहा लेखक पूजीवादी व्यवस्था का विरोध करता है और शोषण समाप्त कर मानव मानव म शांति और आपसी वैमनस्य स्थापित करना चाहता है तथा सम्पत्ति की असमानता को दूर करना चाहता है। लेकिन आज इस भ्रष्टाचारी शासन व्यवस्था मे नेता लोग अपने निजी स्वार्थ के पीछे शोषित व दलित वर्ग पर शोषण समाप्त न करके वरन् उनको और अधिक शोषित बना रहे हैं।

आज इस कथित लोकतान्त्रिक व्यवस्था मे सिर्फ पूजीपति लोग ही चुनाव लड सकते है। गरीबो के लिए चुनाव लडना स्वप्न मात्र है। नोट से वोट खरीदे जा रहे हैं। जब जबरसिंह की चुनाव म हालत खस्ता होती है तो राधश्याम नोटो से वोट खरीदता है और पत्नी से कहता है—'सुना है कडा मुकाबिला है। सिर्फ रुपया ही बचा सकता है। मिनिस्टर साहब को।'[2]

'राग-दरबारी' व्यग्यात्मक शैली मे लिखा गया उपन्यास है। इसमे लोकतान्त्रिक समाजवादी व्यवस्था मे सत्ताहीन व्यक्ति अपने विरोधी को जनतान्त्रिक व्यवस्था के सिद्धात को बतलाते हुए कहता है— विरोधी मे भी सम्मानपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। देखो न, प्रत्येक बडे नेता का एक एक विरोधी है। सभी ने स्वेच्छा से अपना-अपना विरोधी पकड रखा है। यह जनतन्त्र का सिद्धात

३ सबहिं नचावत राम गोसाई, पृ० ४३

१ वही, पृ० १६३

२ वही, पृ० २८०

है। हमारे नेतागण कितनी शालीनता से विरोधियों को झेल रहे हैं। विरोधीगण अपनी बात बकते रहते हैं। कोई किसी से प्रभावित नहीं होता। यही आदर्श विरोध है। आपको भी यही स्टम्प अपनाना चाहिए।"[1] आज की लोकतांत्रिक व्यवस्था में सत्ताहीन व्यक्ति और विरोधियों की नीति को स्पष्ट किया गया है।

सनीचर जो प्रधान के लिए योग्य नहीं होता है फिर भी इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में गाँव का प्रधान बन जाता है। तब प्रिंसिपल साहब कहते हैं—'हाँ भाई प्रजातन्त्र है। इसमें तो सब जगह इसी तरह होता है।'[2] लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए बोलने की स्वतन्त्रता है। वह शोषण के खिलाफ बोल सकता है। वैद्य जी कहते हैं— मैं प्रजातन्त्र से चलता हूँ। सबको बोलने की स्वतन्त्रता देता हूँ। तभी तो अध्यापक जो मेरे ही खिलाफ हैं—मेरा विरोध करते घूम रहे हैं।'[3]

'महाभोज' में दलित और शोषित वर्ग पर पुलिस और लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था के भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के अत्याचार को बतलाया गया है। बिसू के हत्यारे को राजनीतिक शरण मिलने पर लोचन बाबू दुखित होकर कहता है— अत्याचारी को संरक्षण दो और पीड़ितों को कुचलो। यही थे हमारे आदर्श और सिद्धांत जिन्हें लेकर चले थे।'[4] समाज में गिरी हुई जातियों को अत्याचार से मुक्ति दिलाने के लिए सुकुल बाबू चुनाव में खड़े हो जाते हैं वे तो हरिजनों के ऊपर हो रहे शोषण का विरोध करते हुए कहते हैं— खड़ा हुआ आप लोगों के हक की लड़ाई लड़ने के लिए। बिसू की मौत का हिसाब पूछने के लिए। बात केवल बिसू की मौत की नहीं यह सब आप सब लोगों के जिन्दा रहने का सवाल है अपने पूरे हक के साथ जिन्दा रहने का। यह मौत कुछ हरिजनों की या बिसू की नहीं आपके जिन्दा रहने के हक की मौत है। आपका यह हक जरा से स्वार्थ के लिए गाँव के धनी किसानों के हाथ बेच दिया गया है। और वही हक आपको दिलवाना है। जुल्मों ने आप लोगों के हौसले तोड़ दिए हैं, इसलिए मैं लड़ूँगा। आप लोग साथ देंगे तो भी और नहीं देंगे तो भी।'[5]

'महाभोज' में जनता की एकता और उसकी शक्ति को भी प्रतिपादित किया गया है—'इस बात को देख लिया सबने कि जनता की एकता में बड़ा जोर है। तूफानी जोर। तूफान आता है तो बड़े बड़े पेड़ों को जड़ सहित उखाड़ फेंकता है। जनता एक होती है तो बड़े-बड़े राज्य उलट देती है। पिटा हुआ आदमी ही इस बात को सबसे ज्यादा महसूस करता है। कुर्सी पर बैठना है तो

१ राग दरबारी, पृ० ४५
२ वही, पृ० १०१
३ वही, पृ० ३७५
४ महाभोज, पृ० ५८
५ वही, पृ० ३६

जनता मे फट डालो कुर्सी बचानी है तो जनता मे फूट डालो, जनता की एकता कुर्सी के लिए सबसे बडा खतरा है।'[1]

'जगलतत्रम' मे श्री श्रवणकुमार गोस्वामी ने जानवरो के प्रतीको के माध्यम से कथा को पिरोया है। नाग पूजीपति का प्रतीक है—उसके शिकजे मे तडपते हुए दलित और शोषित वर्ग के सामान्य व्यक्ति को दिखलाया गया है। आज इस व्यवस्था मे शोषित व्यक्ति किस तरह दाने दाने के लिए मोहताज हो जाता है, उसका सजीव और मार्मिक चित्रण किया गया है। इसमे लेखक पूजीवादी व्यवस्था का विरोध कर शासन आम आदमी, दलित, शोषित और पीडित वर्ग के हाथो म देने का सुझाव प्रस्तुत करता है। पूजीपति की स्थिति यहाँ उपस्थित हुई है—'यहाँ वाणिज्य मे वही सफल होता है, जो जहर उगलने की खूबी रखता है और हमेशा दो जुबानो का प्रयोग करता है।'[2] पूजीपति जमाखोरी और चोर बाजारी के बलबूते पर अधिक बडा पूजीपति बनता जा रहा है। उस पर किसी प्रकार की रोक-टोक नही क्योकि उसे भ्रष्ट राजनीतिज्ञो का आशीर्वाद प्राप्त है। चूहा (आम आदमी) सिंह (राजनेता) स इस नाग (पूजीपति) के अत्याचारो के बारे मे कहता है—'नाग चीजो की कीमतें लगातार बढाता जा रहा है। वह चोर बाजारी और जमाखोरी करता है। वह हमारे हिस्से का राशन तक हमे नहीं देता, फिर भी आप उसके खिलाफ कोई कारवाई नही करते, आखिर क्यो ?'[3] सिंह लोकतात्रिक समाजवादी व्यवस्था की घोषणा करता हुआ कहता है—'मगलवादी (समाजवादी) समाज मे काला बाजार नही होगा। कोई रिश्वत नही ले सकेगा। कोई अपने पास जरूरत से ज्यादा धन जमा नही कर सकेगा। हर चीज पर सरकार का अधिकार होगा। सरकार आप सबके कल्याण के लिए अनेक क्रातिकारी कदम उठाने जा रही है।'[4]

'महामहिम' उपन्यास मे बताया गया है कि लोकतात्रिक सरकार मे राज नीतिक एक कठपुतली का खेल बनकर रह गया है और राजनीति आज मजाक का विषय बन चुकी है। इसमे आज लोकतात्रिक समाजवाद में मजदूरो, दलितो, पीडितो और शोषित वर्ग अपने ऊपर किये जा रहे शोषणो के विरुद्ध किये जा रहे आदोलनो का वर्णन किया है। औरतें हाथ मे बनर लिए हैं जिस पर अकित है—'किसानो को सही दाम दो, बेरोजगारो को काम दो।'[5] उनका नारा

---

१ महाभोज, पृ० ७६
२ जगलतत्रम, पृ० २१
३ वही, पृ० ४१
४ वही, पृ० ४८
५ महामहिम, पृ० ६७

था—'रोटी कपड़ा और मकान दे न सके जो, वह सरकार निकम्मी है। जो सरकार निकम्मी है, वह सरकार बदलनी है।'[1]

'हजार घोड़ो का सवार' में श्री यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र ने शोषित व्यक्तियों पर किये जा रहे शोषण का यथार्थ चित्रण किया है। लेखक ने अमीर गरीब की असमानता सूर्योदय के आधार पर की है—'सूर्य उग आया था, धूप पसर गयी थी सफेद चादर सी। जहाँ ताजा धूप सुवर्णों के लिए ताजगी, उत्साह और आनन्द बिखरती है, वहाँ हरिजनों के लिए चिन्ता, संघर्ष और शोषण की गरमाहट फैलाती है।'[2]

अलगरजिया बाबा वर्गहीन समाज की कल्पना करता है। वह मानव मात्र के लिए जीता है। समाज आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक असमानताएं नाम मात्र को भी न हो। वह कहता है—'तेरी इच्छा, इसीलिए ही मैं कहता हूँ कि वर्गहीन समाज की रचना होनी चाहिए।'[3]

गीधू को कभी-कभी अलगरजिया बाबा के शब्द याद हो आते, जो कहा करते थे—'वर्गहीन समाज की रचना कैसे हो? उसके लिए तो आर्थिक भेदभाव मिटाने पड़ेंगे। पशो के द्वारा बनी जातियों को फिर समाप्त करना होगा। वर्णाश्रम के तहत जो कुछ भी गलत है उसे मिटाना होगा।'[4] शौकत गीधू से वर्गहीन समाज व लोगों में चेतना जाग्रत करने के संबंध में कहता है—'मजदूरों में उस चेतना को भर रहा हूँ जिससे वे अपने वोट का सही उपयोग कर सकें। व ज्यादा अपनी मांगों के लिए सचेत हो जायें। यदि उनमें वर्गहीन समाज के लिए चेतना जाग्रत हो गई तो धर्म व जातियों की दीवार ढहती जायेगी और वे अपने को एक स्थिति का मनुष्य समझने लगेंगे।'[5]

'दारुल शफा' में लेखक ने पूंजीवाद के स्थान पर लोकतान्त्रिक समाजवादी व्यवस्था और मजदूरों तथा शोषितों की सरकार को मान्यता प्रदान की है। 'पूरे देश में समाजवाद आयेगा पूंजीपतियों का मुंह काला होगा। यह मुट्ठी यह मुट्ठी तो मजदूरों की एकता का निशान है। इसमें बन्द है वक्त की वह सुबह है जिसको हजारों साल से शोषितों का इन्तजार था।'[6]

शान्ति भंग में आज की जनता की शक्ति और अपने अधिकारों और अधिक समानता पाने के लिए कितनी सूझ-बूझ से काम लेती है। समर्थन किसी और का तथा वोट किसी और को देने की रणनीति का लेखक ने पर्दाफाश किया है—

१ महामहिम पृ० ६७
२ हजार घोड़ो का सवार, पृ० १८
३ वही, पृ० १५८
४ वही, पृ० ३५८
५ वही, पृ० ३६५
६ दारुल शफा, पृ० ५४

'दरअसल जनता उतनी बेवकूफ नही रह गई थी। कई जगह तो इतनी चालाक हो गई थी कि चुनाव मे अतिरिक्त क्षण तक त्रिलोचन पाण्डे और प्रधानमंत्री के नारे लगाती रही और मौके पर वोट विरोधी दलो को डाल आयी।'[1]

'प्रजाराम' मे व्यक्ति के स्थान पर समाज को प्रधानता दी गई है। 'मनुष्य को जाति तबको मे बाटना एक तरह से राष्ट्र को विनाश के कगार पर खडा करना है होना तो यह चाहिए कि लोग अपने अपने धर्म का निजी तौर पर पालन करें।'[2] इस पूजीवादी व्यवस्था मे अमीर लोग अपने हिंस्र जबडो मे गरीब को जकडते जाते हैं — इस व्यवस्था और आप जैसे लोगो की वजह से कोई भी परिवर्तन नही आ सकता। प्रजा तो पिसती जायेगी। पूंजीपति और अधिक पैसे वाला होगा। गरीब और अधिक गरीब होगा। फिर अनेक तरीको से धनी बनने वाला नव पूजीवाद भी अपने हिंस्र जबडे निकालेगा। सब गरीब आदमी को निगल जाएगे निगलते रहगे।'[3]

उपरोक्त विवेचन में हिन्दी उपन्यास परम्परा में जो राजनीतिक उपन्यास लिखे गए उनमे गांधीवादी विचारधारा का जो रूप दिखलाया गया था उसका सक्षिप्त विवरण और लेखक किस तरह गांधीजी के विचारो से प्रभावित था, उन्ही विचारो और कथनों को स्पष्ट किया गया था, उन्हें यहाँ सकलित किया गया।

मार्क्सवादी चिन्तन

मार्क्सवाद का सैद्धातिक स्वरूप विश्लेषण

मार्क्सवादी ससार की सफल विचारधाराओ मे इसका नाम सर्वाधिक प्रतिष्ठित है। मार्क्सवाद ससार का बहुचर्चित अपूर्व क्रान्तिकारी और महान् शक्तिशाली चिन्तन है। 'यह भौतिकवादी जीवन है, जो परोक्ष चिन्तन की अपेक्षा भौतिक सम्पन्नतामय स्वस्थ सामाजिक जीवन को ही अपना लक्ष्य मानता है।'[4] मार्क्सवाद विश्व की कम्युनिस्ट पार्टियो का वह घोषित सिद्धात है जिसके आधार पर वह अपनी राजनीति, आर्थिक व सांस्कृतिक योजनाओ को निर्मित कर सर्वहारा क्रान्ति की सफलता के उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।[5] मार्क्सवाद ही ऐसा पहला दर्शन है जिसका पहला उद्देश्य है पूंजीवादी व्यवस्था

१ शान्ति भग, पृ० २२२
२ प्रजाराम, पृ० ११३
३ वही, पृ० १५४
४ डा० जनेश्वर वर्मा, हिन्दी काव्य मे मार्क्सवादी चिन्तन, भूमिका, पृ० ५
५ डा० हरिकृष्ण पुरोहित, आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ० २७८

पर समाजवादी व्यवस्था किस तरह स्थापित की जाय। 'मार्क्सवादी चिंतन एक राजनीतिक अथवा श्रमिक क्रांति का कार्यक्रम मात्र नहीं है अपितु यह एक सर्वव्यापी जीवन दृष्टि है।'[1] वेबर के शब्दों में—'मार्क्सवाद केवल श्रमिक वर्ग की बुलंद आवाज ही नहीं है यह वर्तमान समाज के प्रभावों तथा जटिलताओं को निश्चित रूप से समझने की वृहद प्रणाली है। क्रांतिकारी परिस्थितियों तथा समाज से संबंधित विविध रूपों का अध्ययन करना ही इसका उद्देश्य है।'[2] मार्क्सवाद के दार्शनिक पक्ष का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। 'मार्क्सवाद एक प्रकार का नया और वैज्ञानिक मानववाद है जिसे राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में समाजवाद और साम्यवाद दर्शन के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक वस्तुवाद और समाज शास्त्र तथा इतिहास के क्षेत्र में ऐतिहासिक वस्तुवाद कहा जाता है।'[3]

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मनुष्य से लेकर प्रकृति के सम्पूर्ण क्रिया कलाप को परखने और समझने का मार्क्सवादी दृष्टिकोण है, जो द्वन्द्ववाद और भौतिकवाद नामक दो विचार सरणियों के संयोग से विकसित हुआ है।' यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इसलिए कहा जाता है कि प्राकृतिक घटनाओं को देखने, परखने और पहचानने का इसका अपना ढंग द्वन्द्वात्मक है और इन प्राकृतिक घटनाओं की इसकी व्याख्या, धारणा एवं सिद्धांत विवेचन भौतिकवादी है।'[4] मार्क्सवाद द्वन्द्ववाद सतत गतिमान, परिवर्तनशील और विकासमान रूप में विश्व की विवेचना करता है। प्रकृति के विकासक्रम को समझने के लिए द्वन्द्ववाद के जन्मदाता 'हीगेल' ने निम्नलिखित तीन सामान्य नियमों का प्रतिपादन किया है—

१ विपरीतों की एकता और संघर्ष का नियम
२ मात्रा भेद से गुण भेद का नियम
३ प्रतिपोध के प्रतिपोध का नियम।

१—विपरीतों की एकता और संघर्ष का नियम

यह नियम भौतिक जगत की शाश्वत गति एवं विकास के स्रोत का उसके वास्तविक कारणों का उद्घाटन करता है। वस्तुओं और व्यापारों का अंत-

---

१ डा० रामकिशन सैनी, आधुनिक हिन्दी महाकाव्य में पाश्चात्य चिंतन, पृ० ६२,
२ सी० एल्० वेबर, राजदर्शन का स्वाध्ययन, पृ० २०७
३ डा० रणजीत, हिन्दी की प्रगतिशील कविता, पृ० ३१
४ J Stalin, Problems of Leninism, P 569

विरोधी होना सार्वत्रिक है। विश्व मे कोई वस्तु या व्यापार नही है जिसे विपरीता मे बाटा न जा सके। 'भिन्न से भिन्न वस्तुओ और व्यापारो का विकास यही सिद्ध करता है कि किसी वस्तु के विपरीत पहलू शान्तिपूर्वक नही रह सकते। विरोधी जब मिलेंगे तो संघर्ष जरूर होगा और संघर्ष नये स्वरूप, नई गति, नई परिस्थिति अर्थात विकास को जरूर पैदा करेगा।'[1]

२—मात्रा-भेद से गुण भेद का नियम

यह नियम बतलाता है कि विकास कैसे और किस ढग से चलता है और इस प्रक्रिया की क्रिया विधि क्या है ? इस नियम के अनुसार मात्रा और गुण एक दूसरे से स्वतन्त्र नही हैं। उनमे घनिष्ठ आन्तरिक सबध है।[2] उनके महत्वपूर्ण भेद भी हैं। गुण की मात्रा मे परिवर्तन होने से वस्तु परिवर्तित हो जाती है, किन्तु खास सीमाओ के अन्दर परिमाणात्मक परिवर्तन होने से वस्तु की काया पलट नही होती है।

३—प्रतिपोध के प्रतिपोध का नियम

प्रतिपोध के प्रतिपोध का नियम भौतिक जगत के विकास की आम दिशा अथवा प्रवृत्ति का उद्घाटन करता है। यदि किसी वस्तु की स्थिति को हम पहली अवस्था कहे तो उस वस्तु के विनष्ट हो जाने पर जो वस्तु अथवा स्थिति उत्पन्न होगी उसे प्रतिपोध की अवस्था कहा जायेगा, फिर इस वस्तु के भी विनष्ट और विलीन हो जाने पर जो नवीन स्थिति उत्पन्न होगी, उस तीसरी अवस्था को प्रतिपोध का प्रतिपोध कहा जायेगा।[3]

वर्ग एवं वर्ग संघर्ष

मकाइवर के अनुसार—'किसी वर्ग का अर्थ ऐसी श्रेणी अथवा प्रकार से है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह आते हैं।'[4] यह परिभाषा वर्ग के सामान्य स्वरूप को प्रकट करती है, जो आदिम मानव समूहा अर्थात कबीला पर लागू होती है। काम के बँटवारे ने समाज को दो श्रेणियो मे बाँट दिया है, शोषको और शोषितो। लेनिन के अनुसार —'वर्ग वह चीज है जो समाज के एक भाग के श्रम को हड़प लेने का अधिकार बनाती है। यदि समाज का एक भाग सारी

१ राहुल सांकृत्यायन, वैज्ञानिक भौतिकवाद, पृ० ४६

2 Dr Z A Ahmad, Philosophy of Socialism Introduction, P 18

३ राहुल सांकृत्यायन, वैज्ञानिक भौतिकवाद, पृ० ७३

४ आर० एम मकाइवर तथा सी० एच० पेज, सोसायटी, पृ० ३४८

भूमि हडप लेता है, तो समाज मे दो वर्ग जमीदार और किसान बन जाते हैं। यदि समाज का एक भाग तमाम मिलो, कारखानो, शेयरो, और पूजी पर अधिकार कर लेता है और दूसरा भाग इन कारखानो मे मजदूरी करता है, तो समाज मे दो वर्ग—पूजीपति और सर्वहारा वर्ग बन जाते हैं।[1] आतरिक असगतियों के कारण वर्गों मे सघर्ष वर्गों के जन्मकाल से ही होता आ रहा है मानव जाति का इतिहास वर्ग सघर्षों का इतिहास है। ऐसी लडाई का अत या तो समाज का सारा ढाचा बदलने मे हुआ है या लडने वाले दोनो वर्गों की बर्बादी मे हुआ है।

सर्वहारा अधिनायकत्व या एकाधिपत्य

सर्वहारा अधिनायकत्व मार्क्सवाद का सार तत्व है। अधिनायकत्व अर्थात सर्वहारा की अखण्ड शक्ति द्वारा सर्वहारा वर्ग पूजीवादी का अत तथा समाजवाद का निर्माण कर सकता है। 'सर्वहारा एकाधिपत्य एक क्रांतिकारी शक्ति है, जिसका आधार पूंजीपतियो के विरुद्ध बल का प्रयोग है।'[2] जहाँ तक समाजवादी क्रांति का सबध है मार्क्स के वर्ग सघर्ष के सिद्धात का यही आशय निकलता है कि सर्वहारा वर्ग शासक वर्ग के रूप मे सुसगठित होकर राजसत्ता पर अपना एकछत्र अधिकार जमा लें।[3]

सर्वहारा अधिनायकत्व के तीन पहलू हैं। जोर जबरदस्ती का पहलू सर्वहारा अधिनायकत्व का पहला पहलू है। रचनात्मक पहलू दूसरा आधार पहलू है और शैक्षणिक इसका तीसरा पहलू है।

राजसत्ता के लोप और वर्गहीन समाज की अवधारणा

राजसत्ता का लोप और वर्गहीन समाज की स्थापना मार्क्सवाद का लक्ष्य है। सर्वहारा अधिनायकत्व तो उस लक्ष्य तक पहुँचने का प्रारंभिक साधन मात्र है। सर्वहारा की सत्ता स्थापित हो जाने के बाद यह उत्पादन के समस्त साधनो को सामाजिक घोषित कर देगा। उत्पादन के साधनो पर समाज का अधिकार हो जाने पर मात्र उत्पादन की पद्धति का भी अन्त हो जाएगा। आर्थिक व्यवस्था मे इस प्रकार सुधार हो जाने से वर्ग सघर्ष का मूल कारण ही समाप्त हो जायेगा।

---

१ लेनिन, समाजवादी विचारधारा और संस्कृति, प्रगति प्रकाशन मास्को, पृ० ५१

२ स्टालिन—लेनिनवाद का मूल सिद्धात, प० ३६

३ The class struggle necessarily leads to the dictetorship of the probetarirt . Letter from Marx to Joseph Weydeme / year, March 5, 1852

मार्क्सवादी चिंतन में कला और साहित्य संबंधी मान्यताएँ

मार्क्सवाद कला के मूल को मानव जीवन के भौतिक विकास की सापेक्षता में ही देखने और समझने में विश्वास करता है। वह कला का अस्तित्व भौतिक जीवन से अलग नहीं मानता। कला भौतिक जीवन की ही अभिव्यक्ति करती है। कला मनुष्य के चारों ओर की दुनिया को प्रतिबिम्बित करके हमें इस दुनिया का बोध प्राप्त करने में सहायता देती है और राजनीतिक, नैतिक एवं कलात्मक शिक्षा के शक्तिशाली यन्त्र का काम करती है।[1] कला को किसी व्यक्ति विशेष ने आरम्भ नहीं किया, अपितु उसका विकास मानव जीवन के साथ-साथ हुआ है। आज आधुनिक अर्थों में जिस कला को संज्ञा प्रदान की गयी है वह वास्तव में अति प्राचीन काल से चली आयी विकास की एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम है, जिसके सूत्र मानव-जीवन के सामाजिक और सांस्कृतिक विकासक्रम के साथ अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हैं।[2]

कला और साहित्य की प्रेरणा

मार्क्सवादी धारणा के अनुसार कला की प्रेरणा का स्रोत व्यक्तिपरक न होकर मूलतः सामाजिक है। कला सामाजिक चेतना का विशिष्ट रूप है और इस नाते उसका मूल जन-समुदाय के भौतिक क्रिया व्यापारों में है, जिसके सूत्र किसी विशिष्ट उत्पादन-पद्धति के अंतर्गत प्रतिफलित होने वाले सामाजिक संबंधों से सम्बद्ध हैं।[3] *कलाकार की समस्त काल्पनिक सृष्टि उसी वस्तु जगत का प्रति-*बिम्ब है, जिसमें सृष्टिकर्ता रहता है। यह कल्पना सृष्टि वस्तु जगत के साथ उसके सम्पर्क तथा जगत की वस्तुओं के प्रति प्रेम या घृणा का फल है।[4] वास्तविक जीवन के अभाव में कला साधना अपूर्ण है कला के मूल प्रेरणा उसके तत्त्व उस *आत्म-सम्पदा के अंग होते हैं जो अपने वास्तविक जीवन में संवेदनात्मक* रूप से अर्जित की जाती है। निष्कर्षतः मार्क्सवादी चिंतकों की मान्यताओं के आलोक में कहा जा सकता है कि सृजनात्मक चेतना को प्रेरित करने वाली प्रतिभा नैसर्गिक होती है, किन्तु अपने विकास के लिए वह सामाजिक सम्पर्क एवं वस्तुगत यथार्थ पर निर्भर करती है।[5]

---

१ वि० अफनास्येव—मार्क्सवादी दर्शन, पृ० ३१७

२ Christopher Caudwell Illusion and Reality, p 28

३ V I Jerome, Culture in a Changign world, p 69

४ रल्फ फाक्स—उपन्यास और लोक जीवन, पृ० १३

५ डा० रामकिशोर सैनी—आधुनिक हिन्दी के महाकाव्यों में पाश्चात्य चिंतन, पृ० ७५

साहित्य और राजनीति

सभी देशों के मार्क्सवादियों की पुकार रही है कि प्रगतिशील लेखक का पार्टी लेखक होना चाहिए। रल्फ फाक्स ने लिखा – 'क्रांतिकारी लेखक सदा पार्टी लेखक होता है। इसका मतलब यह नहीं कि वह दिन प्रतिदिन की समस्याओं पर पार्टी के नारे लागू करता है, वरन् वह पार्टी की चेतना को समर्थन देने के लिए नयी चेतना का साहित्य सृजन किया करता है।'[1] गोर्की साहित्य और राजनीति की पारस्परिकता का कट्टर समर्थक था और पार्टी के नेतृत्व में ही साहित्य की रचना करने के पक्ष में था।[2]

साहित्य का प्रयोजन

मार्क्सवादी चिंतन कला और साहित्य की सोद्देश्य रचना में विश्वास करता है। वह कला कला के लिए सिद्धांत का तीव्र विरोध करता है। उसकी धारणा है कि काव्य जीवन के लिए है और जीवन का सत्य स्वरूप का चित्रण और उद्घाटन ही काव्य का उद्देश्य है।[3] मार्क्सवादी चिन्तन साहित्य का उद्देश्य जन कल्याण और सामान्य जन जीवन के उत्कर्ष में सहायक होती है।

आधुनिक हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में मार्क्सवादी चिंतन की अभिव्यक्ति

मार्क्सवादी विचारधारा का आविर्भाव पश्चिमी विश्व में हुआ। आरम्भ में मार्क्सवादी विचारधारा यूरोप के पश्चिमी देशों तक सीमित थी, परन्तु सोवियत संघ की स्थापना विश्व इतिहास की एक ऐसी घटना थी जिसने समस्त संसार को मार्क्सवाद की ओर आकर्षित किया।[4] हिन्दी साहित्य पर मार्क्सवाद के चिंतन का प्रभाव इतना व्यापक है कि उसका कोई भी साहित्य रूप उससे अछूता नहीं है।

उपन्यास भी इस विचारधारा से अधिक प्रभावित रहा है। साठोत्तरी हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में मार्क्सवादी चिंतन को निम्नलिखित प्रवृत्तियों के रूप में देखा जा सकता है—

---

१ डा० धर्मवीर भारती—प्रगतिवाद एक समीक्षा पृ० ११०

२ डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव—विदेशी मार्क्सवादी समीक्षा शीर्षक निबंध, समालोचक सितम्बर १९५८, पृ० ४२

३ Marxim Goaky—Literature and Life, p 137

४ डा० जनेश्वर वर्मा—हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना भूमिका, पृ० ६

१ वर्ग वैषम्य और वर्ग-संघर्ष की प्रवृत्ति।
२ क्रांतिमत चेतना।
३ शोषित, दलितों के प्रति सहानुभूति।
४ शोषण के विरुद्ध हिंसा की अभिस्वीकृति।
५ उपनिवेशवाद का विरोध।
६ 'कला जीवन के लिए' सिद्धान्त का समर्थन।
७ जन शक्ति में आस्था।
८ श्रम की महत्ता का प्रतिपादन।
९ सम वितरण का सिद्धान्त।
१० राजसत्ता का लोप एवं आदर्श साम्यवाद की परिकल्पना।

वर्ग वैषम्य और वर्ग संघर्ष की प्रवृत्ति

मार्क्सवादी जीवन दर्शन के अनुसार प्रत्येक देश और काल में समाज दो प्रमुख वर्गों में विभक्त रहता है। एक वर्ग विशेषाधिकार प्राप्त उत्पादन के स्वामियों अर्थात् शोषकों का होता है और दूसरा वर्ग श्रमिकों अर्थात् शोषितों का। इन दोनों वर्गों के हित परस्पर विरोधी होते हैं।[१] कार्लमार्क्स की धारणा थी कि पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग में वर्ग संघर्ष अनिवार्य है तथा अन्त में पूंजीवाद का विनाश और सर्वहारा वर्ग की विजय निश्चित है।[२]

क्रांतिमत चेतना

शोषण पर आधारित पूंजीवादी व्यवस्था को बदलने के लिए मार्क्सवादी चिन्तन सुधारवादी उपायों में विश्वास न कर क्रांति द्वारा आमूल चूल परिवर्तन पर जोर देता है।[३] क्रांति के पृष्ठभूमि के रूप में सर्वहारा वर्ग के संगठन उनमें वर्ग चेतना के संचार, वर्ग संघर्ष और आन्दोलनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देता है। सत्ता हथियाने के लिए सर्वहारा वर्ग द्वारा विद्रोह और क्रांति आवश्यक है। मार्क्सवादी चिन्तन के क्रांति सिद्धान्त का प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी पड़ा है।

शोषित और दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति

मार्क्सवाद शोषण का विरोधी और शोषित समुदाय का प्रबल समर्थक है। लेनिन के अनुसार—'समाजवाद ने सारी दुनिया में मानव द्वारा मानव के समस्त शोषण के खिलाफ लड़ने का लक्ष्य अपने सामने रखा है। हम उस जनवाद को

---

१ सुभाष कश्यप और विश्वप्रसाद गुप्त—राजनीति कोश, पृ० ५६
२ डा० धर्मनारायण मिश्र—समाजवाद, पृ० ७३
३ J Stalin, Problems of Leninism, P 574

यथार्थ महत्त्व देते हैं, जो शोषित के काम आता है, उन लोगों के काम आता है जो हीनता की स्थिति में डाल दिए गए हैं।'[१] साहित्य में शोषित और दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट करना मार्क्सवादी चिन्तन से अनुप्रेरित साहित्यकारों की मुख्य प्रवृत्ति है।

शोषण के विरुद्ध युद्ध और हिंसा की स्वीकृति

मार्क्सवादी चिन्तन में सही गलत का निर्णय करने से पूर्व द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की दृष्टि से उसका विश्लेषण करना आवश्यक होता है। लेनिन के अनुसार 'मार्क्सवाद, इस बात का निश्चय करने के लिए कि कोई विशेष युद्ध प्रगतिशील समझा जा सकता है या नहीं, यह जनवाद तथा सर्वहारा का हित साधन करता है या नहीं और इस अर्थ में उचित न्याय आदि है या नहीं, प्रत्येक युद्ध के ऐतिहासिक विश्लेषण की अपेक्षा करता है।'[२] मार्क्सवाद युद्ध के महत्त्व को उसके उद्देश्य की दृष्टि में रखकर आँकता है। मार्क्सवाद साम्राज्यवाद की घोर निन्दा करता है। शोषण, उत्पीडन के विरुद्ध युद्ध अनिवार्य मानता है।

उपनिवेशवाद का विरोध

पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर वर्गहीन समाज की स्थापना करना मार्क्सवाद का ध्येय है। उपनिवेशवाद पूँजीवाद के विकास की ही एक अवस्था विशेष है। पूँजीपतियों का एकाधिकार संघों के लिए जब अपने देश में लाभप्रद ढंग से पूँजी के विकास के लिए क्षेत्र नहीं रह जाता तो वे पिछड़े देशों का अपना उपनिवेश बनाते हैं और फिर लाभ अर्जित करने के बाद वहाँ की जनता का शोषण करते हैं। इसलिए मार्क्सवादी अनुयायी उपनिवेशवाद का घोर विरोध करते हैं।[३]

'कला जीवन के लिए' सिद्धान्त का समर्थन

मनुष्य की कृति में सौन्दर्य का योग कला कहलाता है। कार्ल मार्क्स कला की उपयोगिता के समर्थक थे। मार्क्सवाद स्पष्ट शब्दों में कला की सोद्देश्यता को स्वीकार करता है।[४] वह 'कला कला के लिए' सिद्धान्त का विरोधी और 'कला जीवन के लिए' सिद्धान्त का पक्षधर है।[५]

---

१ लेनिन—सोवियत सत्ता क्या है? पृ० ६८

२ लेनिन—मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद, पृ० १०

३ डा० रामकिशन सैनी, आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में पाश्चात्य चिन्तन, पृ० ९६

४ डा० नगेन्द्र (स०)—पाश्चात्य काव्यशास्त्र मार्क्सवादी परम्परा, पृ० ४

५ आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में पाश्चात्य चिन्तन, पृ० ९९

जनशक्ति में आस्था

मार्क्सवाद में जनता का अभिप्राय उन लोगों से है जो काम करते हैं। वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज में वे ही शोषित होते हैं। दास समाज में यह मुख्य तया दास लोग की जमात थी और सामंती समाज में भूदासों और दस्तकारों की, पूंजीवादी समाज में जनता में मजदूर वर्ग, किसान, मेहनतकश, बुद्धिवादी और अन्य समूह, जो सामाजिक प्रगति में योगदान करते हैं, शामिल होते हैं।[1] मार्क्सवाद जनता की अपूर्व शक्ति और उसकी निश्चित विजय में पूर्ण आस्था रखता है।

श्रम की महत्ता

मार्क्सवादी विचारधारा में मानव मात्र के लिए श्रम करना अनिवार्य है। इस व्यवस्था में निघट्टू एवं निठल्ले व्यक्तियों का स्थान नहीं है। पूंजीवाद का विरोध इसलिए किया जाता है क्योंकि वह श्रमिकों को उचित मूल्य न देकर खुद सम्पूर्ण लाभ को हड़प जाता है। श्रम की अनिवार्यता इस विचारधारा की प्रमुख बात है। लेनिन के शब्दों में—'जो लोग काम नहीं करते उन्हें अगर मताधिकार से वंचित कर दिया जाय तो सच्ची समानता होगी। जो काम नहीं करे, वे खाएं भी नहीं।[2] 'मनुष्य को श्रम करना चाहिए ताकि वह जीवित रह सके' ट्राटस्की का नारा था।[3]

सम वितरण का सिद्धांत

वर्ग वैषम्य के कारण समाज में दुःख दैन्य व्याप्त है, उसका कारण सुख सुविधाओं का असमान वितरण ही है। अगर सभी को एक जैसी सुविधा, अवसर, सम्मान, पद, वेतन, समान अधिकार प्राप्त हो तो संघर्ष का नाम ही नहीं रहेगा। व्यक्ति को समान शिक्षा, समान अवसर प्रदान करना, न्याय पाना और समाज में ऊंचा उठने का अवसर दिया जाना चाहिए। डा० गणपतिचन्द्र का मत है कि भले ही हम मार्क्स विचारधारा से शत प्रतिशत सहमत न हों, किन्तु इतना तो सभी स्वीकार करते हैं कि श्रमिक वर्ग को पूरा पारिश्रमिक मिलना ही चाहिए, चाहे मजदूर की गरीबी अमीरों में न बांटी जाय, किन्तु अमीरों की अमीरी तो मजदूरों में बांटनी ही चाहिए।[4]

---

१ वी० आफनासेव, मार्क्सवादी दर्शन, पृ० २३०

२ लेनिन—सोवियत सत्ता क्या है? प्रगति प्रकाशन, मास्को १९६७, पृ० २५-२६

३, 'Man Must Work in order not to die'
—Anderson Thorton Master of Russian Marxism, P 128

४ डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० ७५७

राज्य के लोप एव आदर्श साम्यावस्था की परिकल्पना

साम्यवाद मार्क्सवाद का व्यावहारिक परिवद्धन है। साम्यवाद का प्रयोग विविध अर्थों मे किया जाता है। कभी-कभी इसका अर्थ समाज के ऐसे सिद्धांत के रूप मे किया जाता है जिसमे सम्पत्ति पर सबका समान अधिकार हो। अन्य स्थलो पर साम्यवाद का प्रयोग समाजवाद के पर्याय के रूप मे किया जाता है।[1] मार्क्स और एगेल्स के अनुसार साम्यवादी व्यवस्था के अतर्गत राज्य लुप्त हो जायेगा, समाज मे सभी वर्गों की समाप्ति हो जायेगी, समाज मे शोषण करने वाले वर्गों का विनाश हो जायेगा परिवार, सम्पत्ति तथा श्रम का लोप हो जायेगा और उत्पादन इतना अधिक होगा कि वस्तुओ का वितरण काम के अनुसार नही आवश्यकता के अनुसार होगा।[2]

मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित हिन्दी उपन्यास

'एक और मुख्यमत्री' उपन्यास मे साम्राज्यवाद का घोर विरोध दर्शाया गया है। भारत सन १९४७ मे अग्रेजो के चगुल से स्वतत्र हुआ लेकिन दुर्भाग्य से वह दो हिस्सो मे बट गया। अग्रेजो की चाल काम आयी, उन्होने जिन्ना को बरगलाकर अलग मुस्लिम देश 'पाकिस्तान की माग करवाई और अलग राष्ट्र के रूप मे पाकिस्तान' का जन्म हुआ। उसके परिणाम के सबध मे लेखक का मत है कि —'साम्राज्यवाद के पोषक और कूटनीतिज्ञ अग्रेजो की चाल ने जिन्ना जैसे मुस्लिम लोग के नेता को भडकाकर इस्लाम खतर मे है' जसे धार्मिक नारो को बुलन्द करवाया जिसन पाकिस्तान का निर्माण कराया, उसने हिन्दुओ मे हिन्दुत्व की भावना को और तीव्र कर दिया।[3] मार्क्सवाद ऐसी धार्मिक भावनाओ पर आधारित साम्प्रदायिक राष्ट्र व साम्राज्यवाद का विरोध करता है।

मार्क्सवाद पूजीवाद का कट्टर विरोधी है। वह सम्पत्ति के समान बँटवारे पर जोर देता है एव पसे के आधार पर सत्ता और नेतागिरी का विरोध करता है। 'एक और मुख्यमत्री' म मार्क्स के इस दृष्टिकोण का समथन किया गया है। यथा—'बिना पैसे आज की नेतागिरी पगु है। सफल नेता वही बन सकता है जो या तो बिल्कुल निकम्मो हो या जिसकी तिजोरियो में चाँदी के सिक्के नाचते हैं।

---

१ सी० ई० एम० जोड, आधुनिक राजनीति सिद्धात (हिन्दी सस्करण), प्रवेशिका, पृ० ९१ ९२

२ डा० धमनारायण मिश्र, समाजवाद, पृ० ६७७ ६७८

३ एक और मुख्यमत्री, पृ० १६

पैसा जातीयता का जोर, तिकड़म, झूठ, कठोरता, धर्म का नाम। नेतागिरी।''[1] मार्क्सवाद में धर्म और जातीयता के नाम पर शासन करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

उपन्यास का कथानायक अरविन्द अपनी राजनीतिक सीढ़ी पर सफलता के साथ चढ़ रहा है, उसके समक्ष कई पार्टियां थी। शोषित और गरीबों का प्रतिनिधित्व करने वाली कम्युनिस्ट पार्टी भी थी। लेखक के शब्दों में—'मार्क्स और एजल्स की सबसे बड़ी ऐतिहासिक देन यह है कि उन्होंने संसार के सभी देशों के मजदूरों का उनके अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेत किया और उनकी अपनी मेहनत की भूमिका बतलाई। पूंजीपतियों के खिलाफ लड़ाई शुरू करनी चाहिये और इस लड़ाई में सभी मेहनतकशों और शोषितों को अपने साथ एकत्रित करना चाहिए।'[2] इस तरह लेखक ने शोषितों के संगठन को मान्यता दी है। सामंत वर्ग का विरोध भी इस उपन्यास में वर्णित हुआ है। हैदराबाद में सामंतों के विरोध में विद्रोह किया गया। पूंजीवाद की समर्थक और सामंतों की हितैषी पार्टी कांग्रेस थी जो किसानों को पसन्द नहीं थी। संघर्ष हुआ और वहां पहली बार जनता का शासन स्थापित हुआ। कम्युनिस्ट पार्टी अपने नेतृत्व में साम्राज्यवादियों के खिलाफ जनता को संगठित करके उन्हें अपने सही अधिकार दिलाने में सतत प्रयत्नशील है।[3] लेखक का विश्वास है कि—'सर्वहारा के उत्पीड़न के मर्म को समझकर दुनिया के मजदूर एक हों' का नारा बुलन्द करने वाली यह जनवादी संस्था एक दिन अर्थ की विषमता मिटाकर विश्व में मजदूरों एवं किसानों की सार्वभौमिक सत्ता स्थापित करने में अवश्य सफल होगी।[4]

जब सेठ प्रीतमचंद की मिल में मजदूर स्थायी होने व पूर्ण अधिकार के लिए हड़ताल कर देते हैं तब सेठ प्रीतमचंद अपने सरीखे उद्योगपतियों के सहारे देश की अर्थ-व्यवस्था चलाने का दम्भ भरते हुए अरविन्द से कहता है—'कुछ कम्युनिस्ट हमें लूटना खसोटना चाहते हैं। आप जैसे समझदार मंत्री चुप हैं। ऐसा क्यों ? देश की आर्थिक स्थिति हम उद्योगपति बनाए हुए हैं या ये मजदूर ?'[5] मार्क्स ने उद्योगपतियों के इस प्रश्न का जवाब दिया है। पूंजीवादी व्यवस्था के पोषक यह समझते हैं कि अर्थव्यवस्था उन्हीं की बदौलत चल रही है जबकि सच्चाई बिल्कुल इसके विपरीत है।

---

१ एक और मुख्यमंत्री, पृ० ७२
२ वही पृ० ८१
३ वही, पृ० ८२
४ वही, पृ० ८२
५ वही, पृ० ६४

आज भ्रष्ट लोकतांत्रिक व्यवस्था में मजदूरों को अपने अधिकारों से किस प्रकार वंचित किया जाता है उसका लेखक ने यथार्थ चित्र खींचा है। 'मार्क्सवाद में भाई भतीजावाद को कोई स्थान नहीं, बल्कि सब को समान अवसर प्रदान किये जाते हैं। जबकि पूंजीवादी व्यवस्था में सबको समान अवसर प्राप्त नहीं होते।' सेठ रतनलाल शची को कहता है—'तुम्हें मालूम ही है कि अरविंद जी की कृपा से मैंने अपने प्रांत में तीन मिलें और लगा ली हैं। लाखों का 'लोन मिला सरकारी। अच्छी प्रगति की है मैंने। दूसरी प्रगति की है केन्द्रीय वाणिज्यमंत्री के भतीजे ने। एक फार्म में मामूली सा क्लर्क था जो आज तीन सहकारिता के आधार पर चलने वाले उद्योगों का मालिक है।'[1] इस तरह पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूरों के अधिकारों और सहकारी समितियों का लाभ उच्च वर्ग के लोग ही प्राप्त करते हैं।

मजदूरों को संघर्ष करते समय संगठित रहना बहुत आवश्यक है। हमें अपना संघर्ष शांतिपूर्ण तरीके से करना चाहिए। कांग्रेस के शासक समाजवादी व्यवस्था का नारा अवश्य बुलन्द करते हैं पर वह अपना और अपने देश का विकास पूंजीवादी तौर तरीकों से कर रही है ऐसे में मजदूरों को संगठित होकर संघर्ष करना चाहिए।[2] हमारी सरकार समाजवादी कहलाना पसंद करती है लेकिन मजदूरों के वाजिब आन्दोलन को कुचलने के लिए पुलिस का इस्तेमाल करती है। लेखक के शब्दों में— यह समाजवादी समाज के स्वप्न देखने वाला देश कौन से समाजवाद की परिकल्पना कर रहा है? कौन सा रक्तहीन समाज की स्थापना होगी इन लोगों पर।'[3]

'सबहिं नचावत राम गोसाई' मे मोतीलाल की मिल मे मजदूर वेतन के अपने अधिकार को लेकर हडताल कर देते हैं। राधेश्याम उनकी माँग को स्वीकार कर लेता है तो तब मोतीलाल कह उठता है—'कह तो दिया फट्ट से कि माँगें मान लेते है। सौ आदमियों को ट्राम की तनख्वाह देनी पडेगी और बीस हजार की चप्पत ऊपर से पडेगी।'[1] स्पष्ट है कि उद्योगपति मजदूरो के वाजिब हको को स्वीकारते कितने दुखी होते हैं।

मुख्यमन्त्री जबरसिंह के पास उसी का रिश्तेदार नौकरी प्राप्त करने जाता है तो वह कहता है—'हमारी सरकार ने जमीदारी खत्म कर दी है, यह मेहनतकश मजदूरो और किसानो का राज है, शोषण, उत्पीडन बद।'[2] ये सिद्धात सबके लिए नही था, सिर्फ रिश्तेदारो के लिए है।

राधेश्याम की पत्नी गगादेवी को पूजीवादी व्यवस्था का अच्छा खासा ज्ञान था, उसने कामरेड रवीन्द्र से कहा—'इसका मुनाफा पहले तो मजदूरो और कार्यकर्ताओ को मिलेगा, बोनस के रूप मे, फिर सरकार को मिलेगा विभिन्न करों एव इनकमटैक्स के रूप में, इन सबसे जो कुछ बचेगा, वह हम लोगो को मिलेगा।'[3]

महाभोज' मे दलित और शोषित वर्ग के बिसू व उसके साथियो पर पुलिस तथा लाकतानिक समाजवादी व्यवस्था के भ्रष्ट राजनीतिज्ञो के अत्याचार को बतलाया गया है। बिसू के हत्यारे को राजनीतिज्ञ शरण मिलने पर लोचन बाबू कहते हैं—'अत्याचारी को सरक्षण दो और पीडितो को कुचलो। यही थे हमारे आदर्श और सिद्धात, जिन्हे लेकर चले थे हम।'[4] लोचन बाबू कहते हैं कि—'मजदूरो का सरकारी रेट पर मजदूरी न मिलना आदमियों को जिन्दा जला दिया जाना दिन व दिन बढ़ते अत्याचार—असुरक्षा बिसू की मौत इन सबसे तो चार चाँद लग रहे हैं न पार्टी की इमेज पर? पार्टी का ध्यान ही किसे रह गया है आज?[5] वास्तव म आज की तथाकथित समाजवादी सरकार की ऐसी ही नीतियाँ हैं। दत्ता साहब दा साहब से कहते हैं कि—गाव मे पहले ही तनाव है और बढ जायेगा। आपस मे ही मार-काट मचेगी। और इस सबका परिणाम? पिसेगा बेचारा गरीबो का तबका। सम्पन्न लोग तो जसे तसे बच ही जाते हैं—पसे के जोर से, ताकत के जोर से। मरता है तो गरीब ही, है न? नही नही।'[6] यह बात सही है कि अत्याचार मजदूर, गरीब

१ सबहिं, नचावत राम गोसाई, पृ० ३४
२ वही, प० १४०
३ वही, पृ० १६१
४ महाभाज, प० ५८
५ वही, पृ० ५६
६ वही, पृ० ४७

लोगो पर होने आये न कि अमीरों पर होना है।

श्रवण कुमार गोस्वामी के उपन्यास 'जंगलतन्त्रम' की कथा जानवरो के प्रतीको को लेकर लिखी है। नाग पूजीवाद का प्रतिनिधित्व करता है। इसके शिकजे मे तडपते हुए आम आदमी का चित्रण किया गया है। वह आम वस्तुओ का इतना सग्रह अपने गोदामो मे कर लेता है कि आम आदमी एक-एक दाने का मोहताज बन जाता है। इसमे लेखक पूजीवाद का विरोध कर शासन आम आदमी, दलित और शोषित वर्ग के हाथो मे देने का सुझाव रखता है। इसी उद्देश्य से कारखानो और बैंका का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाता है।

प्रदीप पत ने 'महामहिम' मे लोकतान्त्रिक सरकार म मजदूरो के शोषण का विरोध करते हुए उसमे चल रहे आन्दोलनो का वणन किया है। जसे कुछ महिलाओ ने बैनर हाथो म लिए हैं, उस पर लिखा है—'किसानो को सही दाम दो, बेरोजगारो को काम दो।'[1] उनका नारा था—'रोटी, कपडा और मकान दे न सके जो, वह सरकार निकम्मी है। जो सरकार निकम्मी है, वह सरकार बद लनी है।'[2] मूल्यवद्धि के कारण कुछ ट्रेड यूनियनो ने भी अपना आन्दोलन आरम्भ कर दिया।[3] पूजीवादी समुदाय की तरफ से इस आन्दोलन को बबरता के साथ दबा दिया जाता है।

'हजार घोडो का सवार' मे निम्न श्रणी के लोगो पर सामत वग व राजाओ के गरदावरो के शोषण का यथाथ चित्रण किया है। लेखक ने अमीर गरीब का भेद सूर्योदय के आधार पर किया है—'सूय उग आया था, धूप पसर गई थी सफेद चादर-सी'। जहाँ ताजा धूप मवणों के लिए ताजगी और उत्साह और आनन्द बिखेरती थी, वहा हरिजनो के लिए चिन्ता, सघष और शोषण की गर माहट फैलाती थी।'[4] जब हमीद खाँ भगिन सुनगडी को मार रहा था तो मेघू उसको छुडाता है। उपन्यास का नायक अपने बापू मेघू को शोषण के विरुद्ध आक्रोश भरे शब्दो मे मुक्का तानकर कहता है—'बापू! मुझे ही उस वगत बडी रीस आयी थी। सोच रहा था कि मुक्के ही मुक्के मारकर इस जमादार के दात तोड डालू।'[5] हरिजनो पर सामतो के शोषणो व रूढियो का वणन है। गीधू क्रातिकारी विचारो से युक्त पात्र है। इसकी आवाज को सामत वग, जमीदार और राजाओं के आदमियो द्वारा शक्ति के बल से दबा दिया जाता है। कितना

---

१ महामहिम, पृ० ६७
२ वही, पृ० ६७
३ वही, पृ० १५२
४ हजार घोडो का सवार, पृ० १४
५ वही, पृ० १६

विचित्र शोषण। हर सबल निबल का शोषण करता रहता है। हे भगवान्! यह शोषण कब खत्म होगा? उसे सहसा बाबा अलगरजिया बाबा की याद हो आयी। अलगरजिया बाबा जरूर समता की बात करता है। जाति, धम और अभिजात वग द्वारा शोषित जन के शोषण के विरुद्ध आग भरे शब्द उगलता है।'[1]

गीधू बाबा को पूछता है कि बाबा यह शोषण और अत्याचार कब समाप्त होगा तो अलगरजिया बाबा उसका उत्तर देते कहते हैं—'उसके लिए एक स्वतन्त्र चेतना और संगठन की जरूरत है उस संगठन द्वारा सारा सर्वहारा वग अपनी शक्ति से उस राज्य की पुनर्स्थापना करेगा, जहाँ कोई वग नहीं होगा। जहाँ निजी सम्पत्ति भी नहीं होगी। जहाँ तमाम लोग मिलजुल कर काम करेंगे और सारे सुखों व आनंदों का मिलकर उपभोग करेंगे। जहाँ दासता नहीं होगी। जहाँ शोषण नहीं होगा। एक सुदृढ़ समानता होगी। वहाँ ईश्वरीय राज्य होगा। ईश्वरीय सत्ता का सीधा तात्पय है कि प्रजा की अपनी सत्ता होगी।'[2] यहाँ लेखक सर्वहारा वग और उसकी सत्ता में विश्वास व्यक्त करते हैं।

इसमें एक पात्र है जो मार्क्सवाद के सिद्धांतों से प्रभावित है वह है हरिनारायण बिस्सा। हरिनारायण बाबा को कहता है—बाबा! जिसके पास उत्पादन की लगाम है, वही स्वामी है, उत्पादन के साथ ही उत्पादक के पास समृद्धि आती है। वह फिर अपना एकाधिकार कायम करता जाता है। इस तरह धीरे धीरे स्वामी की निरंकुशता बढ़ती जाती है।'[3] वह समाज में वगहीन समाज की परिकल्पना भी करता है। स्वामी सदानन्द गीधू को कहता है—'ये धम के ठेकेदार, पूँजीपतियों से मिलकर आम आदमी का शोषण करते हैं अनपढ़ व गवार लोगों को निर्वीय करते हैं।'[4]

बासू गीधू को राखाल मुखर्जी की साम्यवादी परिभाषा बतलाते हुए कहता है—'साम्यवाद में राजनीति का अथ भाई भतीजावाद, भ्रष्टाचार रिश्वतखोरी और पुलों व बाँधों में सीमेन्ट की जगह राख मिलाना नहीं है, बल्कि वहाँ राजनीति का अथ देश का निर्माण करना है। व्यवस्था में एक आमूल चूल परिवर्तन। निश्चिन्त जीवन।'[5] गीधू को कभी कभी अलगरजिया बाबा के शब्द याद हो आते थे, वगहीन समाज की रचना कैसे हो? उसके लिए तो आर्थिक

---

१ हजार घोड़ों का सवार, पृ० १४६-१४७
२ वही, पृ० १४६
३ वही, पृ० १२७ १२८
४ वह, पृ० १६८
५ वही, पृ० ३१६

भेदभाव मिटाने पड़ेंगे। पेशा के द्वारा बनी जातियों को फिर समाप्त करना होगा। वर्णाश्रम के तहत जो कुछ भी गलत है उसे मिटाना होगा।'[1]

'दारुलशफा' में पूंजीवाद के स्थान पर समाजवाद ने मजदूरों की सत्ता को अपनी सहमति दी है। पूरे देश में समाजवाद आयेगा पूंजीपतियों का मुंह काला होगा। यह मुट्ठी यह मुट्ठी तो मजदूरों की एकता का निशान है इसमें बंद है वक्त की वह सुबह। जिसका हजारों हजारों साल से दुनिया के तमाम मजदूरों को इंतजार है।'[2]

'शांति भंग' के पात्र साम्यवादी व मार्क्सवाद का विरोध करते हुए कहते हैं— समाजवादी तो अराजकतावादी है, कम्युनिस्ट विदेशी एजेंट है बाकी सब देश को मुसलमानों के हाथ बेच देना चाहते हैं।[3] 'कम्युनिस्ट देश के दुश्मन और गद्दार हैं।'[4]

श्री यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र ने अपने उपन्यास 'प्रजाराम' में भी मार्क्सवादी व्यवस्था का समर्थन किया है। कामरेड निखिल प्रजाराम को कहता है—'दर-असल कम्युनिस्ट पार्टी प्रधानमंत्री की प्रगतिशील नीतियों का समर्थन कर रही है—जैसे बैंकों का राष्ट्रीयकरण, साम्प्रदायिक संस्थाओं पर प्रतिबंध, सागड़ी प्रथा का अंत।[5]

कामरेड निखिल भावुकता के साथ प्रजाराम को कहता है कि—'हाँ भाई रूस के नेताओं और जनता ने नई व्यवस्था के लिए लम्बा संघर्ष किया था। मार्क्सवादी दर्शन के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्ष को समझा था। क्रांति के बाद वहाँ के जन जन ने एक ऐसी रचनात्मक लड़ाई लड़ी थी, जिसने जारशाही व सामंती मूल्यों को समाप्त करके इंसान की मूल आवश्यकता, रोटी कपड़ा और मकान को पूरा किया। उन्होंने आदमी को एक निश्चित जीवन दिया, जिससे व्यक्तिगत दुराकांक्षाओं व सम्पत्ति के संग्रह की प्रवृत्ति मिटती गई।[6] इसके उत्तर में प्रजाराम अपने देश की स्थिति का ब्यौरा देता हुआ निखिल से कहता है, मैं कहता हूँ कि देश के इंसानों का बहुत बड़ा हिस्सा शिक्षित व व्यवस्था से जुड़े अल्प मत से शोषित है। चंद मुट्ठी भर लोग यहां के करोड़ों लोगों का भीषण शोषण कर रहे हैं। क्या यह अन्याय नहीं?'[7]

---

१ हजार घोड़ों का सवार, पृ० ३५८
२ दारुल शफा, पृ० ५४
३ शांति भंग, पृ० १२०
४ वही, पृ० १२३
५ प्रजाराम, प० ३५
६, वही, पृ० ३९
७ वही, पृ० ३९

धीरेन्द्र अस्थाना के 'समय शब्द भर नही है' मे नक्सलवादियों के आन्दोलन और किसानो का सरकार के विरुद्ध विद्रोह मे मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित नजर आता है। नक्सलवादियों को सरकार जेलो ठूस रही थी, उनके साथ अमानवीय अत्याचार किये जा रहे थे। उनकी पिटाई इतनी अधिक की जाती थी कि उनके लिए जिन्दा रहना नामुमकिन सा था। 'उनका केन्द्र स्थल था—कलकत्ता। राजधानी के लाल किले पर लाल झण्डा लहराने की तमन्ना रखने वाले नक्सलवादी का केन्द्र स्थल था।'[1] नैनीताल के एक होटल का मालिक आशू जो विचारो से कट्टर मार्क्सवादी है। एक हिन्दी का साप्ताहिक अखबार निकालता है—'नैनीताल दर्पण।' आशू जिस पार्टी को विलाग करता था उसके योद्धा कालेजो, अदालतो, किसान सभाओ, ट्रेड यूनियन और प्राध्यापको से लेकर बस ड्राइवरो और बैंक कर्मचारियो तक फले हुए है।'[2] इस तरह ये लोग मार्क्सवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक हैं।

आशू भुवन को शालीनता और आत्म विश्वास के साथ अपना व पार्टी का उद्देश्य बताते हुआ कहता है—'जीते हुए लाग क्राति नही होती, क्राति के लिए विचारधारा का जन्म होता है। जिसके पास खाने के लिए कुछ नही है उसी सर्वहारा के द्वारा लाई जाने वाली क्राति अराजकता मे न बदल जाये इसी बात के लिए क्रांति की एक रणनीति है और यह रणनीति सही विचारधारा के अन्तर्गत ही सफलता प्राप्त कर सकती है। मुफलिसी, बदहाली और दमन शोषण के शिकार करोड-करोडो लोगो की खुशहाली के लिए क्राति ही एक मात्र विकल्प है और इस क्राति को सही ठिकाने पर पहुँचाने के लिए जिस शख्स ने सही विचारधारा दुनिया को दी, सौंपी उसके नाम से तुम वाकिफ हो—कार्ल मार्क्स। मार्क्सवाद एक शब्द भर नही है, जैसे नक्सलवादी एक गाव भर नही है।

राष्ट्रवादी चेतना

राष्ट्र शाब्दिक व्युत्पत्ति एव पारिभाषिक स्वरूप विश्लेपण

वर्तमान युग मे 'राष्ट्र' शब्द प्रथमत और अनिवार्य रूप से राजनीति विज्ञान के सदर्भों से जुड़ा हुआ है। 'राष्ट्र' शब्द मे मानव चेतना की भावात्मकता निहित है। 'राष्ट्र' शब्द 'सवधातुभ्य ष्ट्रन' इस उणादि प्रत्यय के सयोग से 'रास शब्द' अथवा 'राज् शोभने' धातु से बना है। इस प्रकार 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ 'रासन्ते चारू शब्द कुवते जन यस्मिन प्रदेश विशेषे तद् राष्ट्रम'—किसी प्रदेश के लोग एक

---

१ समय एक शब्द भर नही है, पृ० १७।
२ वही, पृ० २४

विशिष्ट भाषा द्वारा जहाँ विचार विनिमय करते है, वह स्थान विशेष राष्ट्र है।[1] 'राष्ट्र' के राज्य जन समुदाय, समाज, देश, प्रान्त आदि अर्थों मे जाना जाता है।

कोशीय अर्थ

'राष्ट्र' का अर्थ है राज्य, देश प्रजा।[2] 'राष्ट्र' शब्द का अंग्रेजी पर्याय नेशन (Nation) है जो लेटिन के 'नेशो (Natio) शब्द से बना है। इसका अर्थ जन्म या वश से है। 'राष्ट्र' की सर्वसम्मत परिभाषा करना कठिन है। विद्वानो ने 'राष्ट्र' के अनेकानेक तत्त्वो पर बल देते हुए परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। डा० सुधीन्द्र के अनुसार 'भूमि, भूमिवासी जन और जन सास्कृतिक का समुच्चय 'राष्ट्र' है।[3] डा० विद्यानाथ गुप्त ने 'राष्ट्र' को परिभाषित करते हुए, लिखा है—'किसी निश्चित भौगोलिक इकाई पर बसा हुआ जन समुदाय जिसकी अपनी ही सभ्यता तथा संस्कृति हो, अपनी ही भाषा तथा धर्म हो एव अपनी ही विधि निषेध की परम्परा हो 'राष्ट्र' है।'[4]

आजकल किसी राज्य का जन-समुदाय राष्ट्र है। इस प्रकार प्रत्येक राज्य एक राष्ट्र है और प्रत्येक नागरिक उस राष्ट्र का सदस्य है। बहुत से राज्यो मे कई राष्ट्र या राष्ट्रीय जन समूह रहते हैं। 'एक राष्ट्र के निर्माण हेतु पाच तत्त्वो की आवश्यकता होती है। निश्चित देश, जाति भाषा, संस्कृति और धर्म। किन्तु धीरे-धीरे इन पाँच तत्त्वो मे लचीलापन आया और राष्ट्र ने व्यापक स्वरूप ग्रहण किया। अब एक निश्चित भू भाग पर बसने वाला जनसमुदाय, जो एक या अनेक जातियो का जन समुदाय हो, एक या अनेक भाषाओ मे बोलता हो, एक या अनेक धर्मों को मानने वाला हो, उसकी संस्कृतियाँ हो सकती हैं और जिसमे अपनत्व अथवा एकानुभूति की भावना हो, राष्ट्र की संज्ञा से अभिहित है।[5]

राष्ट्र और राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता राष्ट्र के प्रति प्रेम भावना ममत्व या अपनत्व का भाव लिए होती है। वास्तव मे राष्ट्रीयता को शब्दों मे बाधना कठिन है। राष्ट्र के प्रति भक्ति ही राष्ट्रीयता है। राष्ट्रीयता ऐसी अनुभूति है जिसका उद्भव मानव-चेतना मे होना है। श्री विद्यानाथ गुप्त ने राष्ट्रीयता के स्वरूप को स्पष्ट करने

---

१ विद्यानाथ गुप्त, हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय भावना, प० १
२ भार्गव आदर्श शब्द कोष, पृ० ५३
३ डा० सुधीन्द्र, हिन्दी कविता मे युगान्तर, प० ३७
४ डा० विद्यानाथ गुप्त हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय भावना, प० ५
५ डा० सुषमा कश्यप, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्यो मे राजनीतिक चेतना, पृ० २६५

हुए लिखा है—'राष्ट्रीयता वास्तव मे मन की एक अवस्था है। वह व्यक्ति को राष्ट्रीयता के सूत्र मे तभी बाँधती है जब उसका ऐसे जन समूह से एकत्व हो जाता है, जिसका रहन-सहन, रीति रिवाज, सस्कार तथा अन्य जीवन की समस्याएँ तथा बधन उसी के समान हो।'[1]

किसी राष्ट्र के जन-समुदाय के सामूहिक गौरव की अनुभूति का होना राष्ट्रीयता का प्रमुख लक्षण माना गया है। डा० के० के० शर्मा राष्ट्रीयता को आन्तरिक भावना मानते है। राष्ट्रीय वस्तुगत न होकर अन्तकरण से सबधित है इसे अनिर्वचनीय भी कहा जा सकता है। राष्ट्रीयता एक प्राकृतिक जन की उस स्थिति का द्योतक है जिसके अनुसार वह राज्य से एक वफादारी के सबध से जुडा हुआ है।

राष्ट्र और राज्य का सबध एव अतर

राष्ट्र और राज्य लगभग समानार्थी है। राज्य के लिए निश्चित भू भाग, उस भू भाग पर बसने वाला जन समुदाय सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज सत्ता और शासन व्यवस्था आवश्यक है। ये तत्व राष्ट्र के लिए आवश्यक है। राष्ट्र एक विकासशील सस्था है। राज्य व्यक्तियो का ऐसा समुदाय है, जो अन्य समुदाया से ऊपर है। एक राज्य मे कई राष्ट्रो का समावेश हो सकता है किन्तु एक राष्ट्र मे कई राज्य नही हो सकते। किसी राज्य के निवासियो के लिए यह आवश्यक नही कि उनमे परस्पर राष्ट्रीय एकता की भावना हो ही। किसी भी राष्ट्र के जन समुदाय द्वारा उस राष्ट्र के सदभ मे मान्य विचारधारा को राष्ट्रवाद कह सकते हैं। आधुनिक राष्ट्रवाद की विचारधारा का विकास पाश्चात्य देशो और विशेष रूप से यूरोपीय राष्ट्रो के उदय के साथ हुआ। गूच महोदय राष्ट्रवाद को फ्रासीसी राज्य क्राति का शिशु मानते हैं।[2] राष्ट्रवादी विचार कभी स्थिर नही रहे हैं। १८वी शताब्दी मे राष्ट्रवादी विचारो का उदभव हुआ। तब से राष्ट्रवाद का क्रमिक विकास होता रहा है। राष्ट्र को सुदृढ बनाने वाले मुख्य तत्व हैं—(१) भौगोलिक एकता, (२) जातीय एकता, (३) विचारों या आदर्शों की एकता या समान सस्कृति (४) भाषा की एकता, (५) धर्म की एकता, (६) विदेशी शासन के प्रति समान अधीनता।[3]

अत राष्ट्रवाद राष्ट्र की भावनाओ से ओत प्रोत एक विचारधारा है। यह विचारधारा जड नही है बल्कि राष्ट्रीय जन समुदाय के चेतन मन का अभि-

---

१ विद्यानाथ गुप्त, हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय भावना पृ० ६

२ 'Nationalism is the child of French Revolutions" G P Gooch Studies in Modren History, P 217

३ डा० सुभाष कश्यप और विश्वप्रकाश गुप्त, राजनीतिक कोश, पृ०२०४ ९९१

व्यक्त करती है। विश्व का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप राष्ट्रवाद के महत्तम स्वरूप का ही परिणाम है। किसी भी प्रकार का संकुचित दृष्टिकोण, चाहे वह जातीय, धार्मिक सामाजिक अथवा भौगोलिक हो, राष्ट्रवाद का विरोधी है। विशुद्ध राष्ट्रवाद वही है जो जन समाज की इच्छाओं, संकल्पों तथा आकांक्षाओं में तात्विक समन्वय उपस्थित कर सके।[1]

राष्ट्रवाद के प्रकार

राष्ट्रीयता के विविध तत्वों पर राष्ट्रवाद के भी अनेक प्रकार होते हैं। डा० सुधाकर शंकर कलवडे ने राष्ट्रवाद के निम्न प्रकार बतलायें हैं—(१) आक्रामक राष्ट्रवाद, (२) स्वयं तप्त राष्ट्रवाद (३) उदारमती राष्ट्रवाद, (४) साम्यवादी राष्ट्रवाद (५) स्वाधीनतावादी राष्ट्रवाद।[2] लियो मालिन ने राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से तीन प्रकार निर्धारित किये हैं—(१) मुक्त राष्ट्रवाद—जिसका विकास १९वीं सदी के प्रथमार्द्ध में यूरोप में हुआ और पोलण्ड, ग्रीस, इटली, आयरलैण्ड आदि राष्ट्र अस्तित्व में आये। (२) अधिकार सम्पन्न राष्ट्रवाद—इसमें बुद्धिजीवियों का विशेषाधिकार होता है तथा इसका प्रारम्भ मध्यम श्रेणी के लोगों को प्रभावित करने के लिए होता है। (३) सर्वाधिकारवादी राष्ट्रवाद।

राष्ट्रवादी चेतना का विकासात्मक परिप्रेक्ष्य
वैदिक कालीन राष्ट्रवादी चेतना

प्राचीन भारतीय साहित्य में राष्ट्रवादी चेतना का क्षेत्र बड़ा व्यापक रहा। वेदों को भारतीय साहित्य का सबसे प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है। ऋग्वेद में राष्ट्र प्रेम से युक्त अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऋग्वेद काल में भारतीय राष्ट्र की आर्यजाति ने आध्यात्मिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भी उन्नति प्राप्त की थी।

भारतीयों के परम पवित्र ग्रंथ वेदों में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्र, मरुत का ही केवल गायन नहीं किया गया बल्कि इसके साथ तत्कालीन समाज के चित्र भी उपस्थित किये गए हैं।[3]

---

१ डा० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, राजनीति और दर्शन, पृ० २३

२ डा० सुधाकर शंकर कलवडे, आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ० ३६-३७

३ डा० सुधाकर शंकर कलवडे, आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ० ३८

ऋग्वेद मे उल्लिखित राष्ट्र शब्द से आर्यों की समस्त भावना के साथ देश, राज्य, जाति व सस्कृति सभी का समग्र चित्र उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार वेदो मे राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति करने वाले अनेक सूत्र हैं। हाँ इसका स्वरूप देवताओं के कीर्तिगान मे, मातृभूमि के स्तवन मे, समृद्ध सामूहिक जीवन की कामना करने मे देखा जा सकता है। यथा—'माता भूमि पुत्रो ह पृथिव्या।'[1]

उपनिषदो व ब्राह्मण ग्रन्थो मे भी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति अनेक स्थलो पर मिलती है। उपनिषदों मे जाति जीवन के उत्थान का सदेश देती हुई निम्न पक्ति को विस्मृत नही किया जा सकता—'उठो जागो और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सदा सघर्षशील रहो।'[2] उपनिषद मे ही जातीय एकता का सदेश दिया गया है। भारत का प्राचीन नाम आर्यावर्त है और यह आर्यजाति की क्रीडा स्थली रही है। आर्यों ने जातीय एकता के द्वारा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ किया था। सस्कृत भाषा व तीर्थ स्थलो ने भी राष्ट्रीय एकता को सुदृढ किया।

रामायण और महाभारत काल

वाल्मीकि रामायण महाभारत श्रीमदभागवत गीता, कालीदास के महाकाव्य एव अन्य सस्कृत के प्रसिद्ध रचनाकारों यथा—माघ, भारवि, श्री हर्ष, बाणभट्ट आदि ने अपनी रचनाओ के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को एकसूत्रता और निरतरता प्रदान की है। पुराणो मे अनेक पूर्वकालीन कथाओ के माध्यम से जो चित्र प्रस्तुत किए गए हैं, उससे राष्ट्रीय एकता का ही प्रसार हुआ है। विष्णु पुराण मे भारत की नदियाँ, हिमालय पर्वत और समुद्र का जिस प्रकार वर्णन किया गया है उससे राष्ट्रीय एकता बलवती होती है—

'उत्तर यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तदभारत नाम भारतीयत्र सतति।'[3]

जन-बौद्ध काल

जैन तथा बौद्ध काल मे इस देश में महाजनपद—मगध, वत्स, काशी, कोशल, मल्ल, कुरू, पचाल आदि गणराज्य स्थापित थे। इनकी राज्य-व्यवस्था मे अतर होते हुए भी राष्ट्र एक राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत था। गौतम बुद्ध ने [illegible] जाति-

---

१ अथर्ववेद काण्ड १२, सूक्त १/१२
२ 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।'
—कठ उपनिषद् अध्याय प्रथम वल्ली ३/१४
३ विष्णु पुराण, अ० २, खं० ३, श्लोक १

पाँति के भेद मिटाकर जनता की भाषा मे ही जनकल्याण का प्रसार करके राजनीतिक एकता की भावना को भी प्रभावित किया। आगे बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर सम्राट अशोक ने राष्ट्रीय जीवन को सगठित किया। सम्राट समुद्रगुप्त द्वारा आयोजित अश्वमेध यज्ञ भारतीय राष्ट्रीय चेतना की एकता को ही पुष्ट करता है। डा० राधा कुमुद मुकर्जी ने लिखा है—'यह सम्पूर्ण देश हमेशा से राजनीतिक रूप से एक तथा नवजीवन से प्रेरित एव गतिमान रहा है, यह नव जागत राष्ट्रीय चेतना विविध विचारो और कार्यों मे अभिव्यक्त हुई है।'[1] कुछ इसी प्रकार का विचार स्मिथ महोदय ने भी प्रकट किया है—दो हजार वर्ष से भी अधिक समय से आदर्श राजनीतिक एकता रही है।'[2]

मध्ययुगीन राष्ट्रीय चेतना

मध्ययुगीन राष्ट्रीयता की भावनाएँ इस देश की विविध अपभ्रंश भाषाओ मे अभिव्यक्त हुई हैं। इस समय देश अनेक छोटे छोटे टुकडो मे बट गया था। जातीय एव धार्मिक कट्टरता सकुचित दृष्टिकोण एव राजनीतिक विद्वेश के कारण राष्ट्रीय भावनाओ के विकास मे कुछ बाधाएँ उपस्थित हुई। किन्तु वीर गाथा काल अथवा चारण काल मे रासो साहित्य के द्वारा राष्ट्रीयता के कुछ स्वर अवश्य सुनाई दिए। मध्य युग हिन्दू और मुस्लिम सस्कृतियो का सम्मिश्रण का काल है। सघर्ष के बाद दोनो जातियो मे मेल-जोल बढा। धर्म इतिहास, रीति-रिवाज कला सगीत आदि के मेल से नयी भारतीय मुस्लिम सस्कृति का निर्माण हुआ। हिन्दी और उर्दू इस देश की आम जनता की भाषा बन गई। कबीर, दादू, नानक देव जायसी रदास सूफी कवियो और भक्तो ने राष्ट्रीय जीवन को पुन नया स्वरूप प्रदान किया। तुलसी सूर ने राष्ट्रीय जीवन को पुन सगठित किया और गति प्रदान की। सुमित्रानन्दन पत के शब्दो मे—'मध्ययुगीन दार्शनिक सतो तथा कवियो ने देश को सास्कृतिक विघटन और ह्रास से बचाया।'[3]

रीतिकाल में राजनीतिक सामाजिक एव जातीय जीवन मे घोर पतन आ गया था। रीतियुक्त शृगारिक रचनाओ द्वारा राज्याश्रित कवियो ने अपने आश्रय दाताओ को प्रसन्न करने के लिए विलासपूर्ण शृगारिक रचनाओ का निर्माण किया। डा० विद्यानाथ गुप्त ने लिखा है—'रीतिकाल मे कोई ऐसा कवि दृष्टि गोचर नही होता जिसने व्यापक रूप मे राष्ट्रीयता का प्रचार कर सम्पूर्ण देश

१ R K Mukerjee The Gupta Empire (2nd Edition) P 144
२ V A Smith, Ancient and Hindu India (Part I) 1923, P 10
३ सुमित्रानन्दन पत—चिदम्बरा, प्रस्तावना

को एक सूत्र मे अनुस्यूत करने का प्रयास किया हो, परन्तु जो काय उन्होंने सीमित रूप म किया, वह राष्ट्रीय गौरव से खाली नही।'[१] केवल भूषण न देश तथा जाति के लिए अपनी वाणी को मुखरित किया।

आधुनिक युग में राष्ट्रीय चेतना

१८वी शताब्दी मे मुस्लिम शासको की स्थिति कमजोर हो गई और धीरे-धीरे उनका स्थान अग्रेजो ने ग्रहण किया। भारत मे राष्ट्रीयता का प्रथम उत्थान १८५७ के स्वतन्त्रता सग्राम से प्रारम्भ होता है। देश के कुछ महान् समाज सुधारको ने राष्ट्रीय जागरण को अपना लक्ष्य बनाया और सास्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक एव राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ किये। अग्रेजो के आगमन से अग्रेजी साहित्य से उनके आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन की जानकारी प्राप्त हुई। १८८५ म काग्रेस की स्थापना हुई। सन १८५० से १८८५ के मध्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदय हुआ। इन्होने हिन्दी साहित्य को नवीन गति प्रदान की और राष्ट्रीय भावना का स्वरूप निर्धारित किया। १८९५ से १९२० तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन मे तिलक प्रधान रहे। इनके बाद राष्ट्रीय आन्दोलन का सचालन गाधी जी के हाथ मे रहा। अग्रेजो की कूटनीति ने इस देश के लोगो को हर तरह से कमजोर बना दिया था। कपटपूर्ण नीति अर्थात 'फूट डालो और राज्य करो' के द्वारा अग्रेजों ने इस देश का हर तरह से शोषण किया। गाधीजी के सत्य, अहिंसा, एव सत्याग्रह के सिद्धान्तो के आधार पर राष्ट्रीय आन्दोलन निरन्तर गति पकडता रहा।

सक्षेप मे यह कहना उचित है कि काग्रेस के स्वाधीनता आन्दोलन की प्रमुख घटनाओ—गरम, नरम-दल की राजनीति, तिलक का उग्र राष्ट्रवाद, जलियावाला बाग, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, आजाद हिन्द फौज का सगठन आदि का भारत की राष्ट्रीय एकता पर गहरा प्रभाव पडा है।

राष्ट्रवादी चेतना की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

स्वदेश गौरव एव राष्ट्रभक्ति

किसी भी देश की गुरुता, विशालता, समृद्धि अथवा गुणवत्ता से उस देश के निवासियो मे गौरव की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। स्वभावत व्यक्ति जिस देश मे जन्म लेता है, वह जिस समाज मे पल कर बडा होता है उस समाज और धरती से, उस स्थान के भौतिक सामाजिक परिवेश से जुड जाता है। नदी-नाले,

१ विद्यानाथ गुप्त—हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय भावना, पृ० १८८

वन-पर्वत, वृक्ष लताएँ, खेत खलिहान, पशु पक्षी, सबके साथ तादात्म्य-सा स्थापित हो जाता है। परिवार, जाति, समाज, रीतिरिवाज, भाव, विचार सभी उसके दुःख सुख मे भागीदार होते हैं। देशभक्ति के अभाव मे राष्ट्रीयता सभव नहीं है। 'देशभक्ति जनएकता और जन संस्कृति राष्ट्र के तीन पार्श्व हैं, परन्तु देशभक्ति आधार भूत है, उसके बिना 'राष्ट्रीयता' की कल्पना नहीं की जा सकती।"[1]

स्वर्णिम अतीत का गौरवगान

भारत का गौरव अक्षुण्ण है, केवल कुछ काल के लिए वह लुप्त हो गया था। देश के अतीत गौरव, अपने प्राचीन ग्रथ तथा उसकी वीर गाथाओ के इतिहास की सुरक्षा ही जीवन मे नव जागति का साधन बन सकती है।[2] भारत का अतीत अति गौरवशाली रहा है। उसके स्वर्णिम अतीत के स्मरण से खोए हुए गौरव को पुन प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है। इससे देशवासियो मे देशभक्ति के भाव पनपते हैं।

राष्ट्र-वदना के स्वर एव प्रशस्तिगान

राष्ट्र-वदना राष्ट्रीय भावना का प्रतिरूप है। देश के प्रति श्रद्धा और भक्ति प्रकट करना ही राष्ट्रवदन है। किसी राष्ट्र के महान् गुण ही उसके निवासियों को प्रेरित करते रहते हैं। राष्ट्रीय भावधारा हजारो वर्षो से एक रूप मे प्रवाहित होती रहती है।

राष्ट्र की हीनावस्था का चित्रण

भारत अपने स्वर्णिम अतीत के लिए सदा से प्रसिद्ध रहा है, किन्तु कुछ समय के लिए विदेशी आक्राताओ ने इसके गौरव को धूमिल कर दिया। अग्रेजो ने राष्ट्रीय जीवन को एक प्रकार कायर और पगु ही बना डाला। अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी और बेकारी अग्रेजी शासन की देन है। स्वतत्रता के पश्चात भी भारत अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त नही कर सका।

विदेशी शासन के प्रति आक्रोश तथा विद्रोह की भावना

राष्ट्रीय जागरण के समय महान नेताओ ने अनुभव किया कि पराधीनता अभिशाप है। अग्रेजो के शासन मे भारत की जनता उत्पीडित थी। धीरे धीरे अग्रेजो के प्रति भारतीयो के हृदय मे विद्रोह तथा आक्रोश की भावना घर करने

१ डा० सुधीन्द्र—हिन्दी कविता मे युगान्तर प० २३६

२ डा० सुषमानारायण—भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य मे अभिव्यक्ति, पृ० ४४

लगी। १९१७ की रूसी क्रांति के परिणामस्वरूप वहाँ सोवियत समाजवादी राज्य की स्थापना हुई। भारतीय नेताओ को ज्ञात हो गया कि उनकी दीन-हीन दशा का मूल कारण पराधीनता है। नेताओ ने जनता में विद्रोह के स्वर भर और दासता से मुक्ति प्राप्त करने हेतु सकल्प किया।

नव-जागरण का उद्घोष

राष्ट्रीय एकता के प्रसार मे छत्रपति शिवाजी का विशेष महत्त्व है। राष्ट्र-जागरण काय मे शिवाजी ने मुगल सम्राट औरंगजेब का मुकाबला किया था।

स्वतन्त्रता-सघर्ष

देश को स्वतन्त्रता आसानी से नही मिली। इसके लिए नारी पुरुषा, बाल वृद्धा ने अपने प्राणो की बलि दी है। कांग्रेस की अगुवाई मे देश के नेतागणा ने अंग्रेजों की दासता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए निरन्तर सघर्ष किया और तभी सन् १९४७ मे देश स्वतन्त्र हुआ।

राष्ट्रीय समृद्धि का महाभियान

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश मे लोगो पर दोहरा दायित्व आ गया। एक तरफ स्वतन्त्रता की रक्षा करनी थी तो दूसरी ओर समृद्धि के लिए सबल अभियान की आवश्यकता थी। सभी के प्रयत्ना से देश का आर्थिक विकास हुआ।

भौगोलिक एकता की भावना

प्रकृति ने भारत राष्ट्र को भौगोलिक रूप से विशिष्टता प्रदान की है। उत्तर में हिमालय, पश्चिम दक्षिण म अरब सागर, हिन्द महासागर तथा बगाल की खाडी से परिसीमित है। यह नदियों का देश है, जिसमे हरे भरे मैदान धन-धान्य से परिपूर्ण रहते हैं। जो सभी निवासियो मे एकता का अहसास दिलाते हैं। इस प्रकार राष्ट्र को एकता के सूत्र मे बाधे रखने मे भौगोलिक एकता का महत्वपूर्ण योगदान है।

जातीय एकता

हजारो वर्षों से इस देश मे अनेक जातियाँ निवास करती रही हैं। देव, असुर, आर्यों, द्रविड, हूण, मुसलमान, ईसाई, मगोल आदि जाति के लोग आये और यहाँ पर स्थायी रूप से बस गये। कई बार जातीयता के नाम पर सघर्ष

हुआ, किन्तु अन्त मे सभी ने मिलकर रहने का संकल्प व्यक्त किया। हिन्दू मुस्लिम झगड़े के कारण भारत-पाकिस्तान का बटवारा हुआ। लेकिन फिर भी आज भी इस देश में हिन्दू, इसाई, मुसलमान, पारसी एक साथ मिलकर रहते हैं।

धार्मिक एकता की भावना

भारत विभिन्न जातियों और धर्मों का देश है। आर्यों के समय से ही इस देश में अनेक मत मतान्तर और धर्म पनपते रहे, किन्तु जाति और धर्म की अनेकता उनकी भावात्मकता का भंग नहीं कर सकी। अपनी धार्मिक नैतिक एकता की नीव पर आश्रित यह देश अखण्ड आर्यावर्त के नाम से विख्यात हुआ।

निष्कर्ष

जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा और संस्कृति की भिन्नताओं के कारण कभी कभी ऐसा प्रतीत होता रहा है कि भारत कभी एक राष्ट्र नहीं रहा है किन्तु वैदिक युग से लेकर रामायण, महाभारत, हर्षवर्धन से आज तक भारत का राष्ट्रीय स्वरूप अखण्डित रहा है। हाँ कभी-कभी इसकी भौगोलिक सीमाओं में फेर-बदल अवश्य हुआ है। भिन्नता में एकता की अनुभूति भारत को एक सूत्र में बाँधे हुए है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत ने तीन बार विदेशी आक्रमणों का जिस तत्परता से मुकाबला किया उससे स्पष्टतः परिलक्षित हुआ है कि भारत एक राष्ट्र है।

राष्ट्रवादी विचारधारा पर आधारित हिन्दी उपन्यास

'एक और मुख्यमंत्री' में बतलाया गया है कि हिन्दुस्तान अनेक जातियों का निवास स्थान रहा है। यहाँ लोगों में धार्मिक, जातीय, साम्प्रदायिक और राजनीतिक समन्वय बिठाना जरूरी है। इसके बिना राष्ट्र की एकता का सवाल ही नहीं उठता है। कथानायक अरविंद हिन्दू महासभा के सदस्यों के सामने कहता है— ताकत और शासन धर्म को सनातन नहीं बना सकते। धर्म को शाश्वत बना सकती है तो उसकी अच्छाइयाँ, उसकी सहिष्णुता और उसकी विशाल एकत्त्व भावना।"[1] जनतंत्र दिवस के अवसर पर अरविंद अपने देश के गौरवशाली

---

१ एक और मुख्यमंत्री, पृ० २६

अतीत, स्वतंत्रता संग्राम और उसके पश्चात् देश की एकता तथा अखण्डता के बारे मे कहता है—'सन् १९४७ मे हमे अत्यंत त्याग और संघर्ष के पश्चात राजनतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और २६ जनवरी १९५० को अनेक कठिन संघर्षों के पश्चात् हमारा देश सब प्रभुत्वसम्पन्न जनतन्त्र घोषित हुआ था। हमारी यह वास्तविक स्वतन्त्रता की मंजिल थी। इसी ने हमारे जन जीवन को जाति, धर्म, रंग के भेदभाव से मुक्त समानता प्रदान की। आज भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए सामाजिक, राजनतिक व आर्थिक क्षेत्र समान रूप से खुले हैं और उस न्याय प्राप्त होने के समान् अधिकार प्राप्त हैं। अवसर और स्थिति की समानता और विचारों की अभिव्यक्ति तथा संगठन की स्वतन्त्रता की यह वर्षगांठ है। अतः हम सभी इसका अभिनंदन करते है और भविष्य म लोक कल्याण की भावना के लिए इसकी नींव को मजबूत करने का संकल्प करते है।'[1] लेखक ने राष्ट्रीय भावना का सबल बनाने के लिए साम्प्रदायिक एकता, आर्थिक, राजनीतिक समानता व एकरूपता लाने का आह्वान किया। इन्ही आधारों पर ही राष्ट्रीय एकता और जन-जन म राष्ट्रीयता की भावना प्रबल हो सकती है।

कथानायक अरविंद हिंदुस्तानी मुसलमानो मे जो राष्ट्रीय भावना, साम्प्रदायिकता की भावना व उनम पक्के राष्ट्रवादी होने के बारे म कहता है—'एक पत्रकार अरविंद से कहता है—सिर्फ इसलिए कि हम दबे की चोट नही कह सकते कि काश्मीर हमारा है। पाकिस्तान हमारा तब तक दुश्मन रहगा जब तक वह काश्मीर के बारे म अनगल आलाप करना बंद नहीं करेगा। आप देख लीजिए एक दिन पाकिस्तान अमरिका और ब्रिटेन की गुप्त सैनिक सहायता के प्रोत्साहन से हमारे देश पर हमला करगा। यहाँ के मुसलमान देश द्रोह करेंगे।'[2] पत्रकार की इस बात का करारा जवाब और हिंदुस्तानी मुसलमानों की राष्ट्रवादी भावना तथा देशभक्ति के बारे म कहता है—'नहीं नहीं, भारतीय मुसलमान एस नही है। व पक्के राष्ट्रवादी है। देशभक्त है। मिस्टर तनेजा, क्या रूस म मुसलमान नही हैं।'[3]

साम्प्रदायिकता के नाम पर आज अनेक प्रांतो म दंगे फसाद हो रहे हैं। हिंदू सिक्ख और मुसलमान जातीयता के नाम पर एक दूसरे का खून बहा रहे हैं, जो अपने आपको खोखला बनाते हैं साथ ही राष्ट्रीयता की भावना और राष्ट्र के कमजोर व उसके विकास म बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। हिंदू और सिक्खो का जो साम्प्रदायिक दंगा हुआ उसी संबंध मे अरविंद सोचता है—'उसे लगा कि सारे के सारे लोग उजाले के नाम पर अंधेरे म जा रहे हैं, वैज्ञानिक प्रगति के

१ एक और मुख्यमंत्री, पृ० १३८
२ वही पृ० २१३
३ वही पृ० २१४

नाम पर आध्यात्मिक अवनति मे गिर रहे हैं, सम्पूर्ण विकास के नाम पर छोटी छोटी सकीणता मे जट रहे हैं। राष्ट्र की एकता का नारा एकदम खोखला हो रहा है। उसे कैसे सभाला जाय ? उसने नेत्र मूद लिए। उसने सोचा कि एक बार उसे देश का एकमात्र डिक्टेटर बना दिया जाय तो वह इन सभी समस्याओ का राष्ट्रीय स्तर पर समाधान प्रस्तुत कर दे। अगर ऐसा ही चलता रहा तो देश मे अराजकता फैल जायेगी। उसकी अखण्डता टूट जायेगी। ओह ! मेरे देश के लोगो, आपको क्या हो गया है ?'[1]

'सबहिं नचावत राम गोसाई' मे लेखक ने राष्ट्र की हीनावस्था का चित्रण किया है और अग्रेजी शासन के प्रति आक्रोश भरे शब्दो का प्रयोग किया है। हिन्दुस्तान स्वतत्र हो गया फिर भी कानपुर का निवासी ब्रिटिश उद्योगपति डेविड बनहम का हिंदुस्तानियो के साथ वही व्यवहार है जो उनका अग्रेजी शासन के समय था। वह गयादीन से कहता है— गयादीन, यह गाँधी सुअर का बच्चा है। नेहरू सुअर का बच्चा है।'[2] गयादीन को मालूम है कि महात्मा गाँधी और पडित जवाहरलाल नेहरू ने देश के जानवरो से गय-बीते आदमियो को मनुष्य की कोटि मे लाकर खडा किया। उन व्यक्तियो के बारे मे इतने कडवे शब्द कहने पर गयादीन साहब (बर्नेहम) को कहता है —'हुजूर हरामी का पिल्ला है।'[3] और ये शब्द कहकर गयादीन ने अग्रेजो के प्रति जो आक्रोश था, उसी भाव को प्रकट कर दिया। जबरसिंह के अदर राष्ट्रीयता की इतनी भावना प्रबल थी कि वह स्वाधीनता सग्राम मे कूद पडा— वह करो या मरो का नारा कहता हुआ आगरा पहुच गया। अपने दो विद्यार्थियो के साथ जबरसिंह रेल की पटरियाँ उखाडते हुए गिरफ्तार कर लिया गया। विद्यार्थी तो छोड दिए गए, जबरसिंह को सात साल की सजा हो गयी।'[4]

'राग दरबारी' मे रगनाथ शिवपालगज को देखकर सोचने लगा कि— 'महाभारत की तरह, जा कही नही है, वह यहाँ है, और जो यहाँ नही है, वह कही नही है। उसे जान पडा कि हम भारतवासी एक हैं और हर जगह हमारी बुद्धि एक सी है। उसने देखा कि जिसकी प्रशसा मे सभी मशहूर अखबार पहले पृष्ठ से ही मोटे अक्षरो मे चिल्लाना शुरू करते हैं जिसके सहारे बडे बडे निगम, आयोग और प्रशासन उठते, गिरते हैं, घिसटते है, वही दाँवपेंच और पैंतरेबाजी की अखिल भारतीय प्रतिभा यहाँ कच्चे माल के रूप मे इफरात स फैली पडी

---

१ एक और मुख्यमत्री, पृ० २२१
२ सबहिं नचावत राम गोसाई, पृ० ४३
३ वही, पृ० ४३
४ वही, पृ० ८९

है। ऐसा सोचते ही भारत की सास्कृतिक एकता मे उसकी आस्था और मजबूत हो गयी।'[1] रगनाथ राष्ट्र समयक पात्र है। इस तरह देश की सास्कृतिक एकता और अखण्डता के सबध मे उसके विचार थे। यह उपन्यास व्यग्य शैली मे लिखा गया है। इसम समज और राष्ट्र की समस्याएँ चाहे वे राजनीतिक हो, सामाजिक हो, आर्थिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्या हो, सभी को व्यग्य-शैली के आधार पर ही लेखक ने पाठको के सामने प्रस्तुत किया है। चोरी डकैती से राष्ट्र के विकास म बाधा उत्पन्न तो होती है, साथ साथ देश का राष्ट्रीय गौरव दिनप्रतिदिन अधकार मे चला जाता है। बद्धजी कहते हैं—'चोरी ! डकती ! सवत्र यही सुन पडता है। देश रसातल को जा रहा है।'[2]

'कटरा बी आर्जू' मे उपन्यास के केन्द्र स्थल का नाम 'कटरा बी आर्जू' नही वरन् 'कटरा मीर बुलाकी' है। यह साम्प्रदायिक तनावो से मुक्त मोहल्ला है, हिन्दू-मुसलमान एक साथ रहते हैं। जो भारतीय अनेकता को एकता के सूत्र मे बाधने के लिए एक प्रमाण है। शमसुन्निसा का लडका अब्दुल हक पाकिस्तान चला गया। वहाँ वह शरणार्थी की भाति दरिद्र-सा जीवनयापन कर रहा है। अब्दुल हक हिन्दू मुस्लिम दगो की कल्पना करते हुए चौक पडता है, जिन्होने उसे अपने देश से दूर धकेल दिया और जिससे भारत की अखण्डता का विनाश हुआ। साम्प्रदायिक दगे सिर्फ हिन्दुस्तान मे नही होते वरन् पाकिस्तान मे भी होते हैं। यहाँ हिन्दू मुस्लिम, ब्राह्मण, अछूत, महाराष्ट्र, तामिलनाडू म झगडे होते रहते हैं। वहाँ शिया, सुन्नी मुसलमान, कादयानी, बगाली और पजाबी बलवे होते है। दोनो ही सरकारें क्या जनता की सरकारें नही हैं।'[3] ये साम्प्रदायिक दगे ही राष्ट्र की एकता म बाधक होते हैं।

'काली आंधी' मे राष्ट्र के निर्माण के लिए नारियो को आगे आने का आह्वान किया है। जग्गी बाबू इसी सबध मे कहते हैं कि—देश के निर्माण मे औरतो का भी आगे आना चाहिए। औरतें यानि हमारी आधी जनसख्या जब तक इस तामीर म हाथ नही बटायेगी तब तक हर काम की स्पीड आधी रहेगी यह बेहद जरूरी है कि हमारे घरो की औरतें आगे आयें और हर काम म मर्दों का हाथ बटायें।'[4] वतमान मे राजनीतिक पार्टियाँ सत्ता म आन के लिए जातीयता के नाम पर सत्ता प्राप्त करना चाहती हैं। यही जातीयता की भावना राष्ट्र को कमजोर और खोखला बनान का काम करती है। मालती इस जातीयता के नाम पर चुनाव लडने वालो का विरोध करती है और कहती है कि—'हम जातियों

१ राग दरबारी, पृ० ५७ ५८
२ वही, पृ० ८५
३ कटरा बी आर्जू, पृ० ६२
४ काली आंधी, पृ० ७

के आधार पर भी चुनाव नहीं लड़ेंगे क्योंकि हमारी नीति किसी खास जाति के लिए नहीं है, पूरी जनता के लिए है।'[1] मालती एक जगह भाषण में भी कहती है कि—'अगर हम हिन्दू और मुसलमान की तरह सोचते रहे तो यह मुल्क गारत हो जाएगा।'

'महाभोज' में वर्तमान शासन-व्यवस्था में राजनीतिक दल अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए जातिवाद को लेकर सत्ता प्राप्त करते हैं। जातिवाद का विरोध ही नाममात्र दिखावा होता है जो देश की भौगोलिक एकता की अखण्डता को रोकती है। लोचन बाबू कहते हैं—'कौन देख रहा है अपना स्वार्थ ? गरीब तबके के हित की बात करना अपने हित की बात करना है ? जातिवाद का विरोध करना अपना स्वार्थ है।'[3] दा साहब गाँवों में लोगों में बोलने की स्वतन्त्रता, अपने अधिकारों के प्रति सचेत, और अत्याचारों के विरुद्ध बोलने व उनमें नवजागरण उत्पन्न करने के लिए कहते हैं—केवल गाँव की ही नहीं, पूरे देश की यही हालत हो गयी थी। आतंक ने गले दबा रखे थे सबके कोई भी चूं नहीं कर सकता था। हम लोग शुरू से यही तो कोशिश कर रहे हैं कि लोग दहशत से मुक्त हों निडर बनें खुलकर अपनी बात कहें। पर अभी भी जन लोगों में डर है। सही बात कहने का साहस नहीं जुटा पाते।'[4]

महामहिम व्यंग्य शैली में लिखा गया उपन्यास है। लेखक ने राष्ट्रवादी विचारधारा के तत्वों का विश्लेषण व्यंग्यात्मक शैली में किया है। मुख्यमन्त्री सीताराम जी राजनीति से अनभिज्ञ है और जातिवाद पर आधारित राजनीति का सख्त विरोधी है।

'हजार घोड़ों का सवार' में अलगरजिया बाबा क्रांतिकारी विचारों का पात्र है। उसका इस समाज और व्यवस्था से इतना आक्रोश है कि वह इस पिछड़े वर्ग को इससे मुक्त कराने की ठान लेता है। धर्म क्या है उसके विचार हैं—यह भूख है न, वही असली धर्म है। इस धर्म के शिकार लोगों का नया धर्म बनाना चाहिए, वह धर्म होगा—मनुष्यता, गरीबी उस धर्म को मानने वाला आदमी जातियों में नहीं बंट सकता उस धर्म के विरुद्ध एक और धर्म होगा—अमीरी !'[5]

अलगरजिया बाबा इस राष्ट्र को विदेशी शासन से मुक्त कराने के लिए जनता में नवजागरण का उद्घोष करता है साथ ही उस अतीत के स्वर्णिम

१. काली आंधी, पृ० १७
२. वही, पृ० ४०
३. महाभोज, पृ० ५८
४. वही, पृ० ७७
५. हजार घोड़ों का सवार, पृ० १४७

दिनो की भी याद दिलवाता है। साथ ही कुत्सित परम्पराओ और रूढियो के परित्याग पर जोर देता हुआ कहता है कि—'तेरी इच्छा, अतीत की सारी कुत्सित परम्पराओं व रूढ़ियो को जडमूल से उखाडना पडेगा। कभी कभी ये विरासतें नयी व्यवस्थाओ को भी कुत्सित कर देती हैं और अवसर मिलने पर हडप भी सकती हैं इसलिए याद रखो, जब तक प्रकृति की सारी सम्पदा हडपकर जन शोषण करने वाले राजाओ, ठाकुरो, सामतो जागीरदारो, सूदखोरो, तथा विदेशी राक्षसो को नही समाप्त किया जायेगा तब तक नयी व्यवस्था स्थापित नही हो सकती। तुम सभी गरीबो को ईश्वर और धम के खोखले आतक से मुक्त करो। उन्हे कहो कि सत्य, बुद्धि प्रेम और समता ही ईश्वर है। यही पर स्वर्ग है और यही पर नरक है। इसलिए तुम्हे मिलकर इसी धरती पर स्वग बनाना है। यह तभी समव हो सकता है जब तुम विदेशी व देशी सत्ताधारियो के शोषण से आम आदमी को मुक्त कर दोगे।'[1] आम जनता को अग्रेजी शासन के विरुद्ध व स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए यहाँ प्रेरित किया गया है।

गीधू ने अपने नाम के पीछे 'भारतीय' लगाना शुरू कर दिया। वह भावलपुर म नारिया पर अत्याचार और हिन्दुओ के बलपूवक मुसलमान बनाने का विरोध करता है। उस समय हर जाति दूसरी जाति को हीन समझती है। अछूत समझती है। सेठ मोहता गीधू को पत्र मे लिखता है—'मैं तुम्हारे 'भारतीय' कहने की बात से प्रसन्न हू। इसमे तुम्हारे विचारो की विशालता झलकती है क्योकि दुनिया मे मनुष्य से बडी न कोई जाति है और न कोई धम। मनुष्य सबसे बडा है, महान् है, और महत्त्वपूण है। पर जहा अधकार फैला हो, जहाँ कुछ ही प्रतिशत पढे लिखे लोगो के हाथ मे सारे लोगो की बागडोर हो, वहा कैसे 'मनुष्य' बडा हो सकता है? मुझे लगता है कि समय के साथ मनुष्य छोटा और बहुत छोटा होता जायेगा।'[2] आज मनुष्य जातियो के नाम पर इतना अधिक सघषशील आक्रामक हो गया है कि मानव जाति खतरे म पड गयी है।

गीधू अग्रेजी फौज मे शामिल हो जाता है तो सामतशाही, अग्रेजी शासन का विरोधी, राष्ट्रवादी विचारधारा का समथक लक्ष्मीराज स्वामी गीधू को डाँट भरे स्वर मे कहता है—'मुझे नही मालूम था कि तुम अपनी जान की बाजी साम्राज्यवादियो को बल देने के लिए लगा रहे हो? जिन अग्रेजो को हम देश से बाहर निकालने के लिए लडाई लड रहे हैं, तुम उनके साम्राज्य को सुरक्षित करने जा रहे हो।'[3] गीधू को सेना म भर्ती होने के बाद अहसास हुआ कि—वह क्यो सेना मे भर्ती हुआ? अग्रेजो का कुत्ता की तरह व्यवहार उसे

१ हजार घोडो का सवार, पृ० १५६
२ वही, पृ० २६७
३ वही, पृ० ३११

फैलता था। उन्होंने हर जगह भयंकर जातिवाद फैला दिया था।[1] भारत में आदमी को बाँटने में ये अंग्रेज बड़े ही सफल हुए।[1] यही जातिवाद की भावना भारत की भौगोलिक एकता में बाधक साबित हुई।

अंग्रेजी शासन के दौरान राष्ट्र की इतनी हीनावस्था हो गयी। मनुष्य अनाज के दाने-दाने के लिए मोहताज हो गया था। स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी थी कि—'मुट्ठी भर चावल के बदले वे कमीने दस दस साल की लड़कियों के साथ बलात्कार कर लेते थे। एक एक मछली के लिए एक एक औरत उन्हें मिल जाती थी। घृणित ही घृणित था।'[2] ऐसी हीनावस्था अंग्रेजी शासन के दौरान हिन्दुस्तान में थी। लोग अपने पेट की आग बुझाने तक के लिए अपनी बेटियों को इन कमीने अंग्रेजों के हाथ बेच देते थे। ऐसी हीनावस्था अंग्रेजों के शासन के दौरान थी।

गीधू अंग्रेजो से इतनी सख्त नफरत करने लगा कि उसने प्रण कर लिया कि वह सेना को छोड़ भागेगा। अपने साथी बाबू को कहता है—'अरे पगले! इन अंग्रेजों के लिए हम क्या मरें ?'[3] और गीधू अंग्रेजी सेना को छोड़कर भाग आता है। गीधू अंग्रेजों के चंगुल से भारत को स्वतन्त्र करना चाहता था और वह भी हिंसा के माध्यम से। वह कहता है—'अहिंसा से अंग्रेज नहीं जायेंगे। यदि जायेंगे भी तो इस देश को लूट खसोटकर, तबाह करके। जब मैं साधू था न, तब मुझे हरिद्वार में बताया गया था कि हर बड़ा अंग्रेज अफसर साल दो साल में लखपति बन जाता है। देखना, कभी न कभी ये लोग इस देश को नंगा कर देंगे। इस देश में जातियों व धर्मों को लड़ा देंगे। ये बड़े कुटिल हैं।'[4]

भारत की स्वतन्त्रता के बाद पहली बार सामूहिक रूप से जाना गया कि धर्म कितना क्रूर, हत्यारा और रक्तपिपासु होता है। पहली बार ही अंग्रेजों की कुटिलता के फलस्वरूप आदमी के भीतर अंधा धर्म जागा था।'[5] इसी धर्म के नाम पर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का निर्माण हुआ। स्वतन्त्रता के पश्चात् लोग जातीयता के नाम पर वोट प्राप्त करने लगे। जबकि गीधू इस जातीयता का सख्त विरोधी था। उसको लोग जाति के आधार पर वोट प्राप्त करने को कहते, इस पर वह उत्तेजित होकर कहता है—मैं आपकी तरह बनिया नहीं हूँ जो हर काम में नफा नुकसान देखता रहूँ। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए मैं अपने सिद्धांतों को ताक में नहीं रख सकता। मैं जानता हूँ कि मुझे कुछ भी नहीं

---

१ हजार घोड़ों का सवार, पृ० ३१३
२ वही, पृ० ३१३
३ वही, पृ० ३१६
४ वही, पृ० ३४५
५ वही, पृ० ३४६

मिलेगा। मत निकालो, पर मैं यह भी जानता हूँ कि एक दिन आप सब इस देश मे एक एक वग को इतना बाँट देंगे, उसे इतना काट डालेंगे कि यहाँ केवल छोटी छोटी जातियाँ ही रह जायेंगी। उन जातियो का वैमनस्य, घृणा, छोटापन, ओछापन और सकीणता इस देश को नरक बना डालेगी। इस देश मे न कभी कोई भारतीय रहेगा और न कोई आदमी। यहाँ रहेंगे, धम, जातियाँ, सम्प्रदाय। और जाति का आदमी दूसरी जाति के आदमी से घृणा करेगा। सन् १९४७ का पाकिस्तान तो एक बना है। मुझे लग रहा है कि जिस तरह के यहाँ देशसेवक और नेता पदा हो रहे हैं वे 'हजारो 'जातिस्तान' प्रदान कर देंगे। बामण बनिये को नफरत से देखेगा। बनिया राजपूत से घणा करेगा। राजपूत जाट को दबोचेगा। शूद्र इन सबको। मतलब एक जाति वाला दूसरी जाति वाले को अजगर की तरह निगलने की चेष्टा करेगा।'[१]

'दारुल शफा' में स्वतत्रता के पश्चात राष्ट्र की हीनावस्था को चित्रित किया है। किस तरह आज के नेता लोग राष्ट्र को गर्त में डाल रहे हैं। उनके काले कारनामो को प्रस्तुत करना ही लेखक का उद्देश्य रहा है। रंगीनराय की दृष्टि मे लोबीराम का चरित्र है—'बस्ती जिले के कोने-कोने में उसका जाल बिछा था। जिले का अनाज आलू बनस्पति साबुन, किराना, सीमेन्ट मोटे कपड़े का स्टाक गोदामो मे भर लिया जाता। प्रदेश के बड़े-बड़े जखीरेबाज, ब्लैक मार्केटियर मनाफाखोर उसके साथ थे। इन लोगो के मुनाफे मे हिस्सा बाँट करता [redacted]। मिलो का उत्पादन कम करके उत्पादन-क्षमता घटाकर बाजार में कृत्रिम कमी पैदा की जाती है। दाम बढते माँग पूर्ति का सतुलन बिगडने पर काले बाजार में धीरे धीरे माल निकाला जाता। शराब बनाने के कारखाने मे गेहूँ जो सडाकर सप्लाई करने का भी काम करता। देश मे अकाल भुखमरी होगी, विदेशो से अनाज की भीख माँगी जायेगी उसकी बला से। गेहूँ को सड़ाकर शराब बनाने का काम नहीं रुक सकता। लेकिन सभी साले चोर हैं।'[२] इसी तरह की अनतिकता आज प्रत्येक नेता अपना रहा है और राष्ट्र को पतन के गर्त मे धकेल रहे हैं।

बिजली विभाग से तारो की चोरी इन नेताओ द्वारा करायी जाती है। राजनीतिक दबाव से इन चोरो को छुडाने का प्रयास किया जाता है। रगीनराय कहता है कि—'पहले तो बिजली बोड को दस लाख की चपत लगाकर माल हथिया लिया फिर साठ सत्तर लाख के नकद मुनाफे पर ताँबा विदेशी तस्करों को बेच खाया। यह देश के लोगो को सरासर चूतिया बनाना है।'[३]

१ हजार घोडो का सवार, पृ० ३६४
२ दारुल शफा, पृ० ७३
३ वही, पृ० ३९९

'शांतिमग' में मुशी के व्यक्तित्व में राष्ट्र और उसकी भक्ति तथा गरिमा की बात सन् १६४२ मे घर कर गयी। इसी भक्ति से प्रभावित होकर उन्होंने— 'कुछ लडको को लेकर उन्होंने एक सरकारी कालेज के ऊपर लगे बर्तानवी झण्डे का उतार कर फाड दिया और उसकी जगह तिरगा लगाने जा रहे थे कि पुलिस ने उन्हे पकड लिया। थाने लाने से पहले भी उन्हे पीटा जा चुका था। मुकदमे का फैसला हुआ तो उन्होंने फिर नारा लगाया। उन्हे बीस बेतो की सजा मिली थी।'[1]

'प्रजाराम' मे बताया गया है कि स्वतत्रता के पश्चात हम विरासत में मिली मुनाफाखोरी महगाई भ्रष्टाचार, वैयक्तिक स्वार्थ पूर्तियाँ तस्करी, भाई-भतीजावाद है। लोग अपने निजी स्वार्थों को अधिक महत्व देते हैं। यहाँ का मानव अपने घर को सजाने के लिए राष्ट्र को उजाड देता है।[2] आपातकाल की घोषणा राष्ट्र के हित व जनहित के लिए लगाई गयी ताकि देश मे शांति स्थापित हो सके, 'अब स्थिति भयानक हो रही है, चारों ओर अंधेरा फैल रहा है। शब्द अर्थहीन होकर हवा मे उछल रहे हैं। हमारा देश किस नियति से टकराएगा, यह तो ईश्वर जाने। आज तक की राजनीति ने इस देश मे भयावहता ही दी है। आदमी-आदमी को बाँट कर राज्य की प्रवृत्ति कभी भी राष्ट्रीय व भावात्मक एकता को जन्म नही दे सकती। वह देश को अराजकता की ओर ले जाएगी।'[3]

जनता पार्टी के शासन मे भारत की एकता कामदिलाऊ म्पनर के आगे देखी जा सकती थी। मे युवको की कतारें—जिसमे हिन्दू मुसलमान, सिख, ईसाई भीड। ये सभी खडे थे भूख को मिटाने के लिए। जब भूख शात नही होगी तो राष्ट्र मे भौगोलिक और सास्कृतिक एकता का सवाल उत्पन्न ही नही होता है। 'भूख ही सबको जोडती है, धर्म नही।'[4] अत म प्रजाराम इस भ्रष्ट शासन-व्यवस्था तथा इन लोगो को समाप्त करने का आम जनता को आह्वान करता है जिन्होंने इस देश में जातिवाद, साम्प्रदायिकता के नाम पर आदमी-आदमी मे खाइयाँ विभक्त कर दी हैं। प्रजाराम कहता है—'अब हम खून का बदला खून से लेंगे और उस व्यवस्था के लिए एक लम्बी लडाई लडेंग, जिसम देश का अशिक्षित भूखा नगा और बेहालबश इसान एक नई जिन्दगी पाएगा। वह चद बौद्धिक ऐय्याशी और उनके अन्यायों का सामना करेगा। वह भाई भतीजावाद, मत्री का बेटा मत्री प्रधानमत्री का बेटा प्रधानमत्री की वश परम्परा का विरोध करेगा और भ्रष्ट राजनीति व अफसरशाही को जड़ो से उखाड फेंकेगा। तुमने हरिजनों, दलितों, अल्पसख्यक और जातिवाद के नाम पर

१ शांति मग, पृ० २६-२७
२ प्रजाराम, पृ० ७६
३ वही, पृ० ७६
४ वही पृ० १४०

लम्बा राज्य कर लिया है, वोटो की हिंस और निदयी राजनीति के तहत तुमने देश की विराटता का लघु कर दिया तथा आदमी को बाट डाला। आदमी बटकर अपनी वास्तविक शक्ति और ऊर्जा को भूल गया है।"[1] प्रजाराम आगे कहता है कि—"इन आदमखोरों और हत्यारो से देश को बचाओ ये राज्य-सत्ता और पूजी की दोगली सतान एक दिन हमे जाति धम सभ्यता और सस्कृति के नामो से ठग कर हमारी मनुष्यता को मगरमच्छ की तरह निगल जायेंगे।"[2]

गाधीवादी चेतना

गाधीवाद की पृष्ठभूमि गाधीजी का जीवन परिचय

गाधीजी का जन्म २ अक्टूबर १८६६ को पोरबन्दर मे हुआ था। पिता कर्मचन्द गाधी राजकोट के दीवान थे। गाधी जी की शिक्षा पोरबन्दर और राजकोट मे हुई। गाधी जी पर माता पिता का गहरा प्रभाव पडा। १३ वष की आयु में विवाह हुआ और गाधीजी सोलह वर्षों के थे तब पिताजी का स्वगवास हो गया। ४ सितम्बर १८८८ को विलायत मे बैरिस्टरी की पढाई के लिए चले गये। वहाँ पूण रूप से वैष्णव रहते हुए उन्होंने बैरिस्टरी की डिग्री प्राप्त की। १२ जून १८६१ को बम्बई लौटे और वही पर वकालत आरम्भ की।

प्रारम्भ मे वकालत जमी नही, सन १८६३ मे अफ्रीका के एक हिन्दुस्तानी व्यापारी सेठ अब्दुल्ला के मुकदमे के सिलसिले मे उन्हे दक्षिण अफ्रीका जाना पडा। वहाँ उनको रग भेद नीति का शिकार होना पडा, अग्रेजों के विरुद्ध उन्होंने वहाँ भारतीयो का सगठन बनाया और उनमे जागृति उत्पन्न की। १६०१ मे वे भारत लौटे और तब से काग्रेस के साथ भारत की आजादी के लिए प्रयत्नशील हुए।

व्यक्तित्व की गरिमा

बाल गगाधर तिलक के बाद भारतीय राजनीति म गाधी युग का अवतरण हुआ। भारत के इतिहास मे गाधी युग युगान्तरकारी परिवतनो और अनेक प्रकार की हलचलो का युग है। गाधी ने देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ साथ सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रो मे गतिशीलता, परिवतन और परिष्कार किया। उन्होंने कूटनीतिक चालो, षडयन्त्र, हिंसा, असत्य छल-कपट आदि के स्थान पर सरल, निष्कपट जीवन को अपनाया। डा० सुधाकर शकर कलवडे

१ प्रजाराम, पृ० १५६

२ वही, पृ० १५६

ने लिखा है कि—'यह तो गांधीजी थे जिन्होंने सत्य, अहिंसा तथा बधुत्व के बल-बूते पर विदेशी सत्ता की विकराल शक्ति को चुनौती दी और विश्व भर के राष्ट्रों के सम्मुख यह आदर्श प्रस्तुत कर दिया कि घृणा को प्रेम से, हिंसा को अहिंसा से, बर्बरता को सत्य से भी विजित किया जा सकता है।'[1]

भारत का स्वतंत्रता-संग्राम और गांधीजी

सन् १९२० से १९४७ तक गांधी द्वारा अनेक देशव्यापी आंदोलन चलाये गये, जिनमे प्रमुख हैं—सन् १९२०-२१ असहयोग आंदोलन, खेड़ा सत्याग्रह, अहमदाबाद सत्याग्रह सन् १९३० का नमक कानून तोड़ना, सविनय अवज्ञा आंदोलन और १९४२ मे 'भारत छोडो आंदोलन'। 'गांधीजी के राजनीतिक क्षेत्र मे आगमन के साथ ही देश मे तीन महत्त्वपूर्ण घटनाएं घटीं, जिन्होंने सम्पूर्ण देश को एक स्वर तथा एकमत से उनके साथ कर दिया। वे तीन महत्त्वपूर्ण घटनाएँ थीं—सन १९१९ मे जनता की इच्छा के विरुद्ध रोलट एक्ट पास होना जलियांवाला बाग की नृशंस एवं अमानुषिक घटना तथा खिलाफत का प्रश्न।'[2] जिस समय गांधीजी का भारतीय राजनीति मे आगमन हुआ उस समय देश अनेक समस्याओं से ग्रसित था। विश्वयुद्ध की समाप्ति पर न केवल मानवीय मूल्यो का ही हनन हुआ था अपितु जनजीवन और सम्पत्ति नष्ट हुई थी। देश मे भयंकर गरीबी साम्प्रदायिकता, जातिवाद, अस्पृश्यता, गुटबंदी, फूट आदि का भयंकर बोलबाला था।

देश के सर्वतोमुखी विकास मे गांधीवाद का प्रभाव

गांधीजी का कार्य मात्र राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने तक ही सीमित नही था, बल्कि समाज व्यवस्था करने का भी था जिसका आधार सत्य और अहिंसा हो। उनकी चिंतनधारा का मर्म मात्र भारतीय जनता तक ही सीमित नही था, बल्कि वह सम्पूर्ण मानव जाति के लिए है।[3] गांधीजी भारतीय राष्ट्र के निर्माण में १९१५ से १९४८ तक सक्रिय रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उन्होंने पहली बार अहिंसा का मार्ग अपनाया। संसार की राजनीति मे अहिंसा एक हथियार

---

१ डा० सुधाकर शंकर कलवडे, आधुनिक हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय भावना, पृ० १९८

२ सुषमा नारायण, भारतीय राष्ट्र के विकास की हिन्दी साहित्य मे अभिव्यक्ति, पृ० ९९

३ डा० अरविन्द जोशी, गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ० ४५

शक्ति बन गई। एक शक्तिशाली राष्ट्र के विरुद्ध इसके द्वारा युद्ध किया गया और युद्ध मे जीत भी हुई पुरानी खानी नये फैशन के रूप मे सामने आई। अछूतोद्धार का प्रयास किया और राष्ट्र उनकी अद्भुत क्षमता को देखकर घबरा गया तथा भारत ससार के लिए एक समस्या बन गया।'[1] इस प्रकार विलक्षण, व्यक्तित्व अटूट कर्मनिष्ठा, स्वस्थ चिन्तन के धरोहर और प्रबल जन-समर्थन की शक्ति से समन्वित गाधी जी ने भारतीय जन और जीवन के हर क्षेत्र को प्रेरित और प्रभावित किया। उन्ही की विचारणा गाधीवाद के नाम से राजनीति और दर्शन के क्षेत्र मे सुविख्यात हुई।

गाधीवाद स्वरूप विश्लेषण

महात्मा गाधी ने स्वय स्पष्ट किया है कि उन्होंने किसी नवीन विचारधारा या जीवन दर्शन का प्रतिपादन नही किया अपितु प्राचीन सिद्धान्तो को पुन आलेखित किया है।[2] गाधीजी ने 'हरिजन' मार्च १९३६ के अक मे लिखा है—'मैं किसी नये सिद्धान्त को प्रारम्भ करने का दावा नही करता। मैंने अपने तरीके से शाश्वत सत्यो का प्रयोग करके अपने दैनिक जीवन की समस्याओ को सुलझाने का प्रयत्न किया है। मेरा समस्त दर्शन, यदि इसे दर्शन की सज्ञा दी जाय तो वही है जो कुछ मैंने कहा है। इसे 'गाधीवाद' नही कहा जा सकता क्योकि इसमें 'वाद' नाम की कोई वस्तु नही है।[3] जिस जीवन-दर्शन को महात्मा गाधी ने अपनाया उसे गाधीवाद नाम से अभिहित किया जाता है। एक सार्वजनिक सभा मे बोलते हुए स्वय गाधीजी ने एक बार कहा था—'गाधी मर सकता है पर गाधीवाद अमर रहेगा।'[4] यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि गाधीवाद गांधी जी के किसी मूल सिद्धान्त का उदघाटन नही करता। वस्तुत गाधीवाद अथवा गाधी दर्शन को यदि हम समझना चाहे तो उसे 'सर्वोदय दर्शन' से समझा जा सकता है। हा यह बात अलग है कि आज गाधी की विचारधारा के लिए सामान्यत गाधीवाद शब्द का प्रयोग किया जाता है।

गाधीवाद को स्पष्ट करते हुए रामनाथ सुमन ने लिखा है कि 'गाधीवाद सत्य की साधना का विधान है। उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ ब्रह्म मे उसके दृढ विश्वास से उदभूत हुई हैं। यह ब्रह्म सर्वद्रष्टा, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है। जगत उसी के कारण और उसी को लेकर है।'[5] आधुनिक युग के महान्

---

१ गाधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, प० ८९

२ Harijan, March 1936

३ Ibid

४ डा० पट्टाभि सीतारमैया, गाधी और गाधीवाद (प्रथम भाग) पृ० २६

५ रामनाथ सुमन, महात्मा गाधी, पृ० १८८

पुरुष महात्मा गाधी को ससार एक श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ, प्रथम कोटि के समाज-सुधारक, महान् राष्ट्रीय नेता और प्रगाढ देश भक्त के रूप मे जानता है। लेकिन उसका कोई सुस्पष्ट राजनीतिक दर्शन था या नही, इस बारे मे अधिकाश लोगो को स देह है। महात्मा गाधी, हाब्स, लाक, और रूसो की तरह ऐसे राजनीतिक दार्शनिक नही थे जिन्होने अपना समय किसी सुसम्बद्ध राजनीतिक दर्शन के निर्माण मे लगाया हो। उनका वास्तविक उद्देश्य भारत का और फिर सारे ससार को सत्य तथा अहिंसा के आदर्शों पर नये सिर से निर्माण करना था। गाधीजी ने अपने विचार को भाषणो, लेखो, पत्रो के माध्यम से व्यक्त किया।

गाँधीजी ने इतिहास मे पहली बार सत्य, अहिंसा और प्रेम के आध्यात्मिक एव नैतिक सिद्धाता का राजनीति के क्षेत्र मे इतने विशाल पैमाने पर प्रयोग किया तथा इसमे सफलता प्राप्त की। प्राचीन सत महात्माओ ने गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी तक ने अहिंसा के सिद्धात को केवल व्यक्तिगत जीवन मे ही लागू किया था। गाधीजी ने इतिहास मे पहली बार अहिंसा को जीवन के समग्र दर्शन के रूप मे स्वीकार किया और उसके आधार पर समाज एव राजनीति की प्रत्येक समस्या को हल करने का प्रयास किया।[1] गाधीजी के अनुसार अहिंसा सम्पूर्ण धर्म की जान है। सत्य की तरह अहिंसा भी सर्वशक्तिमान और असीम है और ईश्वर के समानार्थक है।[2] अहिंसा सर्वकालीन सर्वव्यापक नियम है जिसका जीवन की प्रत्येक परिस्थिति मे बिना किसी अपवाद प्रयोग हो सकता है।[3] सत्य के गाधीजी ने दो भेद किए हैं—(१) साधना या व्रत रूप सत्य, आशिक या अपेक्षित सत्य, (२) साध्यपूर्ण सत्य निरपेक्ष सार्वभौम या-शाश्वत सत्य। रिचर्ड ग्रे के अनुसार गाधी जी सामाजिक सत्य के क्षेत्र मे महान वैज्ञानिक हैं।[4] गांधीजी एकादश महाव्रतो मे विश्वास करते थे। ये महाव्रत ही उनके जीवन के सिद्धान्त कहे जा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं—सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य अस्वाद अस्तेय, अपरिग्रह अभयम, स्वदेशी, कायिक श्रम, सर्वधर्म सभव, अस्पृश्यता निवारण आदि सिद्धाता को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र मे अपनाया और प्रभावित किया।

भारतीय सामाजिक जीवन पर गाधीवाद का प्रभाव

गाधी जी ने अपने सिद्धातो का प्रयोग समाज सुधार के रूप मे भी किया है।

---

१ डा० सुभाष काश्यप तथा विश्व प्रकाश गुप्त, राजनीतिक कोश, प० १५१-१५२

२ गाधीजी, हरिजन, १४ ३ १९३९

३ गाँधी जी—हरिजन, ५ ९-१९३९

४ राधाकृष्णन—महात्मा गाधी, पृ० ८०

उन्होने समाज के प्रत्येक पहलुओ का सूक्ष्म निरीक्षण किया। वे समाज मे परस्पर प्रेम की स्थापना करना चाहते थ। साम्प्रदायिकता को हटाकर उस स्थान पर पारस्परिक सद्भाव और प्रेम स्थापित करना ही उनका अतिम लक्ष्य था। उन्होने भारत मे रामराज्य की कल्पना की थी। उन्होने स्त्रियो को पुरुषो के समान अधिकार देने की बात कही। गांधी जी ने समाज सुधार के निम्न सूत्र का प्रतिपादन किया—साम्प्रदायिक एकता खादी, मातृभाषा, राष्ट्र प्रेम, आर्थिक समानता, प्रौढ शिक्षा, स्त्रियो की उन्नति, मद्यपान निषध, अस्पश्यता निवारण ग्रामोद्योग, किसान मजदूर, विद्यार्थियो का सगठन आदि। गाधी जी समाज की तत्कालीन व्यवस्था से सतुष्ट नही थे। गाधी जी ने समाज की बुराइयो को दूर करने के लिए अनेक प्रयत्न किये और उन्हे अपने इस काय मे सफलता भी मिली। सामाजिक क्षेत्र मे गाधी का योगदान अविस्मरणीय है।

भारतीय आर्थिक जीवन और गाधीवाद

गाधी जी के आर्थिक विचारो से भारतीय अथ व्यवस्था पर प्रभाव पडा जो उन्हें अथशास्त्री प्रमाणित करता है। सर्वोदय तथा ट्रस्टीशिप सिद्धात मे उनकी आर्थिक विचारधारा का प्रमाण मिलता है। कुटीर उद्योग और चरखे के विकास मे उनका आर्थिक दृष्टिकोण ही स्पष्ट होता है। वे गावो मे स्वावलम्बी अथ व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे।

वस्तुत गाधी जी के आर्थिक दृष्टिकोण का निर्माण खादी तथा दूसरे ग्रामोद्योगो के विकास एव आर्थिक समानता के सिद्धाता से हुआ है। गाधी जी का आर्थिक दृष्टिकोण उनके नतिक तथा आध्यात्मिक जीवन दशन की अनिवाय परिणति है। स्वभावत वे मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओ और प्रश्नो पर भी अस्तेय, अपरिग्रह, मनुष्य की नैतिक भलाई तथा प्राणी मात्र के साथ आध्यात्मिक एकत्व का बोध की धार्मिक भाषा मे विचार करते हैं।[1] सक्षेप मे कहा जाए तो गाधीवादी अथ-व्यवस्था पूजीवाद का विरोध करती है और आर्थिक विकेन्द्रीकरण मे उनका दृढ विश्वास है। व मनुष्य के पास व्यक्तिगत सम्पत्ति न रहने मे और सम्पत्ति का समाज म विकेन्द्रीकरण करने मे विश्वास करत थे।

भारतीय धार्मिक नतिक जीवन और गाधीवाद

गाँधी जी मुख्यत हिन्दू धम के अनुयायी थे किन्तु उनके हृदय मे मानव-धम के प्रति विशेष अनुराग था। उनका विश्वास था कि विभिन्न धम एक ही सत्य की प्राप्ति के अलग अलग माग हैं।[2] धम के बारे म गाधी ने स्पष्टत

---

१ रामदीन गुप्त—प्रेमचद और गाधीवाद, पृ० ६०

२ Selections From Gandhi, P 244 & 632

कहा है कि—(१) सभी धर्म सत्य होते हैं। (२) सभी धर्मों मे कोई न कोई भूल या कमी अवश्य होती है। (३) सभी धर्म मेरे लिए उतने ही प्रिय हैं जितना हिन्दू धर्म (४) दूसरे धार्मिक विश्वास के लिए मेरे मन मे उतना ही सम्मान है जितना अपने धार्मिक विश्वास के लिए। इसीलिए धर्म परिवर्तन की कल्पना असंभव है। औरों के लिए हमारी प्रार्थना यह होनी चाहिए कि 'प्रभु ! उन्हें अपने उच्चतम विकास के लिए जितने भी प्रकाश व सत्य की आवश्यकता हो, वह दिखा।'[1] ईश्वरीय एकता और व्यापकता के संबंध मे उन्होंने कहा है—'ईश्वरीय प्रकाश किसी एक ही राष्ट्र या जाति की सम्पत्ति नही है। ईश्वर न काबे मे है, न काशी मे है, ईश्वर प्रकाश है, अंधकार नही। यह प्रेम है, घृणा नही, वह सत्य है, महान है और हम सब उसकी चरण रज हैं।'[2] गांधी जी की मान्यता थी कि आत्म शुद्धि और शुद्ध आचरण मे नैतिक बल उत्पन्न होता है। अतः वे व्यक्तिगत जीवन की शुद्धि पर विशेष बल देते थे। इसके लिए प्रार्थना, उपासना, व्रत, प्रतिज्ञा, ब्रह्मचर्य आदि को उपयोगी मानते थे।[3]

भारतीय राजनीतिक जीवन और गांधीवाद

जिस समय महात्मा गांधी ने भारतीय राजनीति मे प्रवेश लिया उस समय लोगो ने अपने स्वार्थ की प्राप्ति के लिए राजनीति को स्वार्थ-सिद्धि का अस्त्र बना लिया। गांधी ने सत्य अहिंसा, सत्याग्रह सिद्धांत को लागू कर भारतीय राजनीति में चेतना का मंत्र फूंका। उन्होंने स्वीकार किया है कि—'जब से मैंने यह जाना कि सार्वजनिक जीवन क्या है तब मेरे प्रत्येक शब्द और कार्य के मूल मे धार्मिक चेतना और नितान्त धार्मिक हेतु रहे हैं।'[4] गांधी ने सर्वप्रथम धार्मिक राजनीति की नींव डाली। अपनी बात मनवाने के लिए सत्याग्रह को विशेष महत्त्व दिया। सत्याग्रह से उनका तात्पर्य था—'अहिंसा द्वारा सत्य का आग्रह।' भारतीयो पर अंग्रेजो का शासन अन्यायपूर्ण और क्रूर था। इस बुरे शासन को हटाने के लिए गांधी जी ने असहयोग आंदोलन आरंभ किया। असहयोग का एक रूप सविनय अवज्ञा था। गांधी जी की विचारधारा के अनुसार सविनय अवज्ञा से तात्पर्य है—सरकार के कानूनो को भंग कराना, जो नैतिक नही हैं। सविनय अवज्ञा इस बात का प्रतीक है कि प्रतिरोधकारी सविनय अर्थात अहिं-

---

१ पं० जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रपिता, पृ० ३८

२ हरिजन, २०-४ १९२४

३ डा० सुषमा कश्यप—स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य मे राजनीतिक चेतना, पृ० ३८४

४ महात्मा गांधी—यंग इण्डिया (भाग-३), पृ० ३५०

संक रूप से कानून की अवज्ञा करता है।[1] गांधी जी देश को स्वतन्त्र कराना चाहते थे। यही उद्देश्य लेकर उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा। गांधी जी ने राजनीतिक संघर्षों के दरम्यान सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के द्वारा नैतिक बल का प्रयोग किया। इन सिद्धांतों का न केवल भारतीयों पर ही गहरा प्रभाव पड़ा अपितु अन्तरराष्ट्रीय जगत में भी इनको अपनाया गया।

सत्याग्रह

स्वतन्त्रता संग्राम में गांधी जी ने अंग्रेजी सरकार का प्रतिरोध अहिंसा से किया, यही सत्याग्रह था। सत्याग्रह पर गांधी जी ने कहा—'राष्ट्रीय अथवा राजनीतिक जीवन में सत्य और कल्याण के लिए कृत संकल्प होकर आग्रह करना ही सत्याग्रह है।'[2] सत्याग्रह सत्य के लिए निरन्तर खोज है और सत्य तक पहुँचने तक का संकल्प है। सत्याग्रह एक सतत् विकासशील शक्ति स्वरूप है। यह एक प्रकार का उच्चतम धैर्य है। सहनशीलता व आस्था उसके मूल तत्व है। हम सभी बुराइयों से सत्याग्रह के द्वारा असहयोग करते हैं।[2] डा० रामनाथ सुमन ने लिखा है कि— सत्याग्रह निजी रूप में आध्यात्मिक साधना है। समष्टि रूप में सामाजिक कल्याण की साधना है। वह व्यक्ति तथा समाज के दोषों को दूर कर दोनों के बीच हितकर संबंध स्थापित करता है।'[3] सत्याग्रह के निम्नलिखित तत्व हैं—

१—सत्याग्रह सत्य और न्याय के आधार पर ही हो।

२—सत्याग्रही में क्षमा भाव होना चाहिए और वह अपने विपक्षी को मूलक सुधार हेतु पूरा अवसर प्रदान करे।

३—सत्याग्रह सत्य और ईश्वर में पूरी आस्था का आधार लिए हुए होता है।

४—सत्याग्रह मे अहिंसा का स्थान सर्वोपरि है।

५—सत्याग्रही में प्रसन्नतापूर्वक कष्ट सहन करने की क्षमता होनी चाहिए।

६—वह नम्रतापूर्वक समझौते के लिए तैयार रहे।[4]

सत्याग्रह की कई पद्धतियाँ है, जिनमे प्रमुख इस प्रकार हैं— हड़ताल, उप

---

१ सत्याग्रह प० २४

२ M K Gandhi—Modern Indian Social and Political Thought, P 343

३ रामनाथ सुमन—गांधीवाद की रूपरेखा, पृ १८१

४ श्रीधर शर्मा एवं सरोज गग—आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनतिक चिन्तन, पृ० ३४४

वास प्रायना, प्रतिज्ञा असहयोग, कर बदी, धरना, सविनय अवज्ञा, आमरण अनशन, अहिंसा धरना ।[1] देश की आजादी के लडाई मे गाधीजी ने समय समय पर इनमे से अधिकाश पद्धतियो का प्रयाग किया था । भारत की तत्कालीन परिस्थितियो मे स्वराज्य प्राप्ति के लिए सत्याग्रह ही सर्वोत्तम साधन था ।

असहयोग

असहयोग सत्याग्रह का ही एक अग है । जो काय अथवा बातें अनुचित और अनीतिपूर्ण हो उनके साथ असहयोग किया जाता है । बुरे कार्यों मे भाग न लेकर उसका बहिष्कार करना ही असहयोग है । गाधी जी ने कहा है कि असहयोग की जडें घृणा मे नही बल्कि प्रेम मे होती हैं । सत्य के आधार पर किए गए असहयोग का अतिम परिणाम विजय होना है । भारतीय राजनीति मे असहयोग आन्दोलन १९२० से आरम्भ हुआ । गाधीजी के अनुसार असहयोग के सिद्धान्त निम्न हैं —

१—सरकारी उपाधियो, आफिसो का त्याग
२—विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार
३—सरकार को ऋण देना बन्द करना
४—काउंसिलो का बायकाट
५—वकीलो द्वारा वकालत छोडना
६—सरकारी पार्टियो तथा उत्सवो का बहिष्कार ।[2] अग्रेज सरकार इस देश की जनता की भावनाओ के प्रतिकूल थी, उसका शासन अन्यायपूर्ण और अनतिक था अत अग्रेज सरकार को हटाने के लिए गाधीजी ने असहयोग आन्दोलन चलाया ।

अहिंसा का पालन

गाधीवादी दशन मे अहिंसा सम्पूर्ण दशन की धुरी है । भारतीय सस्कृति मे ऋषियो का अमर वाक्य 'अहिंसा परमो धर्म' गाधी दशन के लिए प्रकाश स्तम्भ है । गाधीजी अहिंसा को प्रेम का पर्यायवाची मानते थे । व अहिंसा के द्वारा व्यक्तिगत हानि लाभ स दूर रहते हुए समस्त मानवता का कल्याण चाहते हैं । गाधीजी हर प्रकार के बुरे विचार व बुरे कर्म को हिंसा मानते थे । गाधीजी इसी अहिंसा के सिद्धात पर चलकर सत्य की खोज म लगे थे । उनके लिए सत्य

---

१ श्रीधर शर्मा एव सरोज गग—आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनतिक चिन्तन, पृ० ३४४

२ डा० अरविन्द जोशी—गाधीविचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, (पाद टिप्पणी), पृ० ८९

साध्य था और अहिंसा साधन। गाधीजी भारत मे रामराज्य स्थापित करना चाहते थे। उनके इस प्रयत्न मे अहिंसा का स्थान प्रमुख था।

गाधीवादी दर्शन के आधार पर सर्वोदयी समाज की सकल्पना

गाधीजी के विचार सर्वोदयवाद मे समाहित हुए हैं। सर्वोदयवाद अथवा विश्वव्यापी उन्नति का मूल आधार मानव स्वभाव मे निहित कल्याण कामना है। प्रेम और सत्याग्रह द्वारा व लोगो का हृदय परिवर्तन करना चाहते थे। हिंसा के लिए उनके हृदय मे कोई स्थान नही था। सर्वोदयवादी मान्यता के अनुसार यदि नैतिक रूप से अपील की जाय तो लोग स्वेच्छा से अपने अधिक धन माल और सुखो का त्याग कर देंगे।[1] गाधीजी ने आर्थिक समानता के लिए मशीनो का विरोध किया था। उनका विश्वास था कि बडे पैमाने पर उत्पादन से हजारो हजार लोगो में बेकारी फलेगी और कुटीर व्यवसाय समाप्त हो जायेगा। उनकी राय मे सर्वोदय समाज एक बडे परिवार की तरह होता है, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति अपनी विशिष्ट क्षमता के अनुसार पूर्ण स्वतत्रता के साथ सेवा करे। सर्वोदयवाद केवल आर्थिक जीवन तक ही सीमित नही है अपितु इसमे मानव के समग्र विकास की सभावनाएँ निहित है। यह गाधीवाद का निचोड कहा जा सकता है।

गाधीवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

अस्पृश्यता उन्मूलन

हिन्दू समाज म छुआछूत के कारण जातीय एकता को बडा धक्का लगा है। महात्मा गाधी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए आजीवन अथक प्रयत्न किए, किन्तु फिर भी यह बुराई समाज से दूर नही हो सकी है।

साम्प्रदायिक एकता,पर बल

राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के लिए जाति सम्प्रदाय धर्म आदि का भेद असह्य था। भारत मे अनेक सम्प्रदायो के लोग निवास करते हैं। राष्ट्रीय एकता के लिए सभी धर्म और सम्प्रदायो म एकता होनी चाहिए। साम्प्रदायिक कट्टरता किसी भी राष्ट्र को खण्डित कर देती है।

खादी एव ग्रामोद्योग का प्रचार-प्रसार

राष्ट्रीय स्वतत्रता आन्दोलन का नेतत्व करते समय गाधीजी ने अनुभव

---

१ R.C Gupta—Socialism, Democracy and India, p 32

किया कि देश मे जागृति लाने के लिए सर्वो मुखी प्रयास करने होगे। पूजीवाद उत्पादन की विभीषिकाए अत्यत विकट रूप धारण करने लगी थी। शोषण एव बेकारी को दूर करन के लिए गाधीजी ने खादी एव ग्रामोद्योग की योजना का प्रचार किया। चर्खा उद्योग को प्रारम्भ करके देश का जागरण करना भी उनका उद्देश्य था।

सत्याग्रह, असहयोग एव सविनय अवज्ञा आन्दोलन का अनुसमर्थन

अग्रेजो को हिदुस्तान से निकालने के लिए गाधीजी ने अनेक उपाय किये। उन्हे जन सहयोग प्राप्त हुआ और जन जागृति उत्पन्न हुई। गाधीजी सत्य, अहिंसा, और सत्याग्रह मे आस्था रखते थे। उन्होने अग्रेजी शासन के प्रति सत्याग्रह, असहयोग एव सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने के लिए जनता का आह्वान किया।

सामाजिक कुप्रथाओ एव रूढियो का विरोध

भारतीय सामाजिक जीवन मे बहुत सी कुप्रथाएँ, रूढियाँ और बुराइयाँ जन्म ले चुकी थी। गाधीजी न अनेक आन्दोलनो द्वारा इन बुराइयो को दूर करन का प्रयास किया। यह प्रयास गाधीवादी विचार दर्शन का सामाजिक पक्ष था।

अहिंसा की शक्ति मे अटूट विश्वास

'रामराज्य' गाधीजी का परम आदर्श था। अहिंसा के माध्यम से राम राज्य को प्राप्त करना उनका लक्ष्य था। गाधीजी के राम भी अहिंसा प्रिय थे। गाधीजी का लक्ष्य अहिंसा से और शान्ति द्वारा सत्य को प्राप्त करना था। वे अहिंसा को सत्य का पहलू मानते थे। विश्व के महाविनाश को सत्य अहिंसा से बचाया जा सकता था, ऐसी गाधीजी की मान्यता थी।

नारी मुक्ति का समर्थन

भारतीय समाज मे नारियो की दशा अच्छी नही रही है। पुरुष हमेशा उन्हे दासी के समान समझता रहा है। पुरुष सत्ता प्रधान समाज मे नारी सभी अधिकारो से वचित रही है। गाधीजी समाज मे नारी को उचित स्थान दिलाना चाहते थे।

द्रुतगामी मशीनीकरण एव औद्योगिकीकरण का विरोध

देश की जनसख्या को देखते हुए गाधीजी मशीनीकरण एव औद्योगिकीकरण के विरोधी थे। उनके अनुसार देश की बेकारी और बेरोजगारी को दूर करने

के लिए लघु उद्योग और कुटीर व्यवसायो का विकास करना उचित था। गाधीजी की मान्यता थी कि औद्योगिकीकरण एव मशीनीकरण की प्रक्रिया अपनाकर भारत पूजीवादी विभीषिकाओ का शिकार हो जायेगा।

सर्वोदय आर्थिक अभ्युदय का कार्यक्रम

सर्वोदय गाधीवाद दशन का व्यावहारिक प्रतिफलन है, जिस प्रकार समाजवादी दशन की परिणति अन्तत साम्यवाद मे होती है। सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए गाधीजी ने रामराज को आदश माना था और ग्रामराज्य या ग्राम स्वराज्य स सह प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

आध्यात्मिक निष्ठाओ का परिप्रेक्ष्य (सत्य, ईश्वर का पर्याय, धर्म और नैतिकता, प्रार्थना, व्रत, सयम, ब्रह्मचय आदि)

महात्मा गाधी नवयुग मे भारतीय आध्यात्मवाद के निष्ठावान प्रवक्ता थे। वे सत्य को ईश्वर के समकक्ष मानत थे। उनका कहना था कि सत्य ईश्वर है और ईश्वर ही सत्य है। सत्य के बल पर ही गाधीजी ने अग्रेजी साम्राज्य का अन्त किया। सत्य मे उनकी दढता निर तर बनी रही। गाधीजी ने अपने जीवन मे सत्य को अत्यधिक महत्व दिया है। उनके लिए सत्य ईश्वर का पर्याय था। यह विश्व भी सत्य पर ही टिका है।

मानवतावादी जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठा का आग्रह

गाधीवाद के सिद्धात भारत के लिए ही नही अपितु विश्व जीवन का सुख और शान्ति प्रदान करने वाले हैं। काल मार्क्स की तरह गाधीजी ने भी विश्व का सुव्यवस्थित चिन्तन देने का प्रयास किया है। गाधीजी नतिक और आध्यात्मिक मूल्यो मे अधिक विश्वास करते थे। उनके सिद्धातो की मूल शक्ति आतरिक है। प्रेम ही विश्व मानव को एक व्यवस्था म सगठित कर सकता है, ऐसी गाधीजी की मान्यता थी।

निष्कर्ष

गाधीवाद महात्मा गाधी के विचारो का व्यापक अभिधान है। गाधी जी के व्यक्तित्व के अनेक आयाम हैं, जसे राजनेता, समाज सुधारक, अथवेत्ता, शिक्षा शास्त्री और धर्मोपदेशक आदि। जीवन के प्रत्येक पहलू पर उनके अपने विचार थे। गाधीवादी चेतना का मूल उत्स राम की कत्तव्यनिष्ठा, कृष्ण की व्यवहार कुशलता, महावीर की अहिंसा, कबीर की असलग्नता और तुलसी की

शीलता में निहित है। उन्होंने सत्य, अहिंसा, प्रेम, बंधुत्व और नैतिकता के विचारों को अपने राजनतिक सिद्धांतों में शामिल किया। वे राजनीति, सामाजिक संगठन और आर्थिक जीवन को धर्म से पृथक नहीं मानते थे। हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं पर गांधीवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा।

गांधीवादी विचारधारा पर आधारित हिन्दी उपन्यास

एक और मुख्यमंत्री' में गांधीजी के नारी चेतनावादी विचार से प्रभावित एक पात्र है—स्थानापन्न अरविंद। जिसकी धर्मपत्नी गुलाब, जिसको भारत-पाकिस्तान के बँटवारे के समय मुसलमान अपने साथ उठा ले गये थे, वह उनके चंगुल से भाग आयी लेकिन समाज में बदजात, पापिन कही जाने लगी। शादी से पहले अरविंद इन आहत महिलाओं के प्रति अपनी संवेदना जाहिर करता है जिससे किसन गुलाब के बाप सतराम को कहता है कि तुम अरविंद से गुलाब की शादी की बात करो, अरविंद सतराम को कहता है कि—पैसा मेरे जीवन का लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य है—सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्रांति। मैं जानता हूँ आपकी लड़की दागों में भर गयी है आज के सामाजिक परिवेश में वह कलंकिनी कहलाएगी। उसका कहीं भी आदर सम्मान नहीं है। कहीं भी ठहराव टिकाव नहीं है किन्तु मेरे लिए वह उतनी ही पवित्र है, जितनी पहले थी लाला जी मुझे कोई भीतर से मजबूर कर रहा है कि मैं आपकी बेटी को अपना लूं।" इसमें लेखक गांधीजी के नारी चेतना विषयक विचारों से प्रभावित है।

गांधीजी की हत्या पर एक सभा में अरविंद कहता है—'साथियो! बापू की मृत्यु हमारी स्वतंत्रता के उज्ज्वल मुख पर भयंकर कलंक है। मैं कहता हूं कि हत्यारे के इस दुस्साहस के पीछे एक सम्पूर्ण योजना होनी चाहिए, कई आदमियों का बल होना चाहिए। आज इस कथन के विपरीत बात हो गयी है कि मनुष्य ईश्वर का पुत्र है और ईश्वर सबको समान दृष्टि से देखता है यदि यह सही है तो विश्व के प्रांगण में कभी अशान्ति, अराजकता और खून खराबी नहीं होती। महामानव बापू को अन्त की गोद में नहीं सुलाया जाता।'[2] विश्व में शांति स्थापित करने पर वह बल देता है।

जब लोग अपनी जरूरत से ज्यादा धन का संचय करते हैं जिसके फलस्वरूप गरीबी बढ़ती जाती है पूंजीपति और बड़ा पूंजीपति बनता जाता है। इस संबंध

१ एक और मुख्यमंत्री, पृ० ६७
२ वही, पृ० ७९

मे अरविन्द गुनाव से कहता है कि—'इन्सान को हर चीज उतनी ही मिलनी चाहिए जितने की उसे जरूरत हो। जरूरत से ज्यादा मिल जाने पर आदमी आदमी की सत्ता से हट कर कुछ और बन जाता है। यह कुछ और बन जाना उसे सहजता से अलग कर देता है गुनाव।'[1]

छुआछूत मिटाने के लिए अरविंद अपने शहर में एक ऐसी पाठशाला का उद्घाटन करता है जिसमें हरिजनों के साथ साथ सभी जातियों के बालक शिक्षा ग्रहण करेंगे। सभी समान रूप से खादी को अपनायेंगे। इस उपन्यास में गांधी जी के अहिंसा के सिद्धांत का मत उस स्थान पर मिलता है जब अरविंद गांधी को श्रद्धांजलि देते वक्त कहता है कि—'जिस युग पुरुष ने भारत जैसे दलित पीड़ित देश में राजनैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक क्रांति का सूत्रपात किया, जिस अद्वितीय पुरुष ने जन-जन में समता, एकता का संदेश फूंका, उस मनीषी के निर्धारित अहिंसा के मार्ग पर चलने की हम शपथ लेते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि देश के सामूहिक विकास में अपना सर्वस्व अर्पण कर देंगे।'[2]

हिंसक घटनाओं के परिणाम, अखण्डता और सर्वोदय कल्याण समाज के सामूहिक विकास की ओर शिवाजी भावे प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि—'हमें रक्त क्रांति में तनिक विश्वास नहीं है। रक्त क्रांति और हिंसक उपायों से देश की अखण्डता को खतरा पैदा हो जाता है, इसलिए शान्तिपूर्ण उपायों से सर्वहारा वर्ग की समस्या का समाधान प्रस्तुत होना चाहिए। इसके लिए मुझे ऐसे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है जो अपना एक-एक क्षण मानव जाति के हित के लिए अर्पण कर दें ताकि प्रत्येक आदमी को अपने जीवन निर्वाह, आत्म विकास का सुअवसर व सुविधाएं मिले।'[3] शंकर भाई गांधीजी का प्रबल समर्थक है। उसकी वाणी में सच्चाई, अहिंसा और परोपकारी वाणियों से हमेशा मुखरित रहती थी लेकिन समाज के हिंसक तत्वों द्वारा उसकी भी गांधी जी की तरह हत्या कर दी जाती है।

गांधीजी खादी को पहनना पसंद करते थे और कांग्रेसी नेता भी खादी पहनते हैं इसी विचारधारा से प्रभावित होकर 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में राधेश्याम अपने दोस्त जमुनालाल का कांग्रेस ज्वाइन और खादी धारण करते वक्त कहता है—'मैं कांग्रेस में शामिल हो गया हूं और खादी पहनने लगा हूं, बस इतनी सी बात है। कल तेरे लिए भी खादी के कपड़े सिलवा दूंगा। स्वराज्य आ रहा है—स्वराज्य के माने हैं रामराज्य और रामराज्य का मतलब

१ एक और मुख्यमंत्री, पृ० ६२
२ वही, पृ० ११७
३ वही, पृ० २२३

गाधीराज है ।'[1] जब सदाशिव गौतम के सामने रायबहादुर गभीरसिंह खड़ा होता है जिसे हराना मुश्किल था । यहाँ कांग्रेस की इज्जत का सवाल था तो जयरसिंह कहता है कि—'मुकाबला हम यमराज का कर सकते हैं, आदमी की क्या बिसात । लेकिन बड़े-बड़े लोगो से पूछ लिया जाय, हम तो कांग्रेस के सेवक हैं—गाधी जी के तुच्छ सेवक, सिपाही हैं ।'[2] जयरसिंह अपने आपको गाधीजी का कट्टर शिष्य और भक्त मानता था । वह गाधी जी के विचारो से बहुत ज्यादा प्रभावित था ।

गभीर सिंह अपनी पुत्री धनवन्ती की शादी की बात रघुराज से उनके भानजे जयरसिंह के लिए करता है । उस समय रघुराज दहेज के विरोध मे कहता है— राजा साहेब, हम लोग महात्मा गाधी के अनुयायी हैं तो यह समझ लीजिए कि हम दहेज वहेज की प्रथा का उखाड फेंकेंगे । इसलिए आप दान-दहेज की बात को लेकर अपना मन छोटा मत कीजिए ।'[3] झम्मनलाल महेश्वरी जो पूरे देशभक्त हैं और गाधी जी के विचारो से बहुत ज्यादा प्रभावित हैं स्वतंत्रता संग्राम के वक्त इन्होने क्रांतिकारियो को अभय प्रदान किया था । व गाधीजी के अफ्रीका आन्दोलन से इतना प्रभावित हुए कि अपने नाम के पीछे महेश्वरी के स्थान पर सत्याग्रही शब्द जोड दिया । 'गाधी द्वारा चलाये जाने वाले हरक आन्दोलन म महात्मा गाधी के विशेष शिष्य की हैसियत से उन्होने सक्रिय भाग लिया वह अपन हाथ से बुने हुए सूत की खादी के वस्त्र पहनत थे, दिन रात चर्खा चलात थे, हरिजन बस्ती म रहते थे और जब इनसे ऊब जाते थे तब जेल चले जाते थे ।'[4] 'महात्मा गाधी द्वारा निर्धारित ब्रह्मचर्य धम निभाने के लिए इन्होने अपनी पत्नी तक को त्याग दिया और इस महान त्याग से प्रभावित होकर उनके मित्र और अनुयायियो ने उन्ह त्याग मूर्ति की उपाधि स विभूषित कर दिया ।'[5] वे राधेश्याम को कहते हैं —मैं तो गाधी का अनुयायी [illegible] । जिन्दगी भर मैंने सर्वोदय का काम किया है ।'[6]

त्यागमूर्ति अर्थात झम्मनलाल सत्याग्रह जी चर्खा यज्ञ भी किया करते थे ।... 'उस दिन उनके कमरे का फर्नीचर हटा दिया ... और वहाँ ... जाया करता था । ठीक आठ बजे सुबह वह ... थे ... ग्यारह बजे तक वह लगातार चर्खा पर सूत ... इस ...

---

१ सबहिं नचावत राम गोसाई, पृ० ३६
२ वही, पृ० ६०
३ वही, पृ० ६३
४ वही, पृ० १५३
५ वही, पृ० १५२
६ वही, पृ० १५४

वह मौन व्रत धारण किये रहते थे। जो भी आवश्यक परामर्श इस अवधि में उनसे किया जाता था, वह लिखकर उत्तर दिया करते थे।'[1]

'राग दरबारी' व्यंग्यात्मक शैली में लिखा हुआ उपन्यास है। इसमें गांधीवादी विचारधारा के अन्तर्गत आज के दफ्तरों में चलने वाली भ्रष्ट राजनीति और रिश्वतखोरी जैसी कुप्रथा का वर्णन किया है। 'आज रिश्वतखोरी का रोग सारे समाज में कोढ़ की तरह विकराल रूप में बढ़ रहा है। लंगड़ को अपनी जमीन की नकल चाहिए, लेकिन विलम्ब होते देख रंगनाथ कहता है कि आजकल दफ्तर वाले बड़े शरारती हैं। कैसी कैसी गलतियाँ निकालते हैं।' जैसे गांधीजी अपनी प्रार्थना सभा में समझा रहे हैं कि हम अंग्रेजों से घृणा नहीं करनी चाहिए, उसी वक्त लंगड़ ने सिर हिलाकर कहा—'नहीं बापू, दफ्तर वाले तो अपना काम करते हैं। सारी गड़बड़ अर्जीनवीस न की है। विद्या का लोप हो रहा है। नये नये अर्जीनवीस गलत सलत लिख देते हैं।'[2] मैनेजर का चुनाव होने जा रहा था जिसमें वैद्य फिर इस पद की प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे। चुनाव स्थल पर उनका गुण्डा ठाकुर बलरामसिंह आकर पूछता है कि मारपीट तो नहीं हुई? तो लड़के ने जवाब दिया—'कैसी मारपीट? हम लोग तो प्रिंसिपल साहब के दल में हैं अहिंसावादी हैं।'[3] इस वाक्य से भी पता चलता है कि वैद्य जी भी गांधीजी की अहिंसा के प्रबल समर्थक और उससे प्रभावित थे। उनका कहना—'मुझे हिंसा की बातें अच्छी नहीं लगती।'[4]

'महाभोज' में मन्नू भण्डारी ने गांधीजी के धर्म सम्बन्धी कर्त्तव्यों और कर्म का विवेचन किया है। दा साहब लखन को समझाते हुए कहते हैं— देखो भाई! मेरे लिए राजनीति धर्मनीति से कम नहीं। इस राह पर मेरे साथ चलना है तो गीता का उपदेश गाँठ बाँध लो। निष्ठा से अपना कर्त्तव्य किये जाओ, बस! फल पर दृष्टि ही मत रखो।'[5] सुकुल बाबू हरिजनों को बिसू की मौत की सांत्वना और उनके ऊपर हो रहे शोषण का विरोध करते हुए कहते हैं कि—'खड़ा हुआ हूँ आप लोगों के हक की लड़ाई लड़ने के लिए। बिसू की मौत का हिसाब पूछने के लिए। बात केवल बिसू की मौत की नहीं यह सब आप सब लोगों के जिंदा रहने का सवाल है अपने पूरे हक के साथ जिंदा रहने का। यह मौत कुछ हरिजनों की या एक बिसू की नहीं आपके जिन्दा रहने के हक की मौत है। आपका यह हक जरा से स्वार्थ के लिए गाँव के धनी किसानों के हाथ बेच दिया गया है और वही हक आपको वापस दिलवाना है। जुल्म ने

१ सबहिं नचावत राम गोसाईं, पृ० १८६
२ राग दरबारी, प० ७८
३ वही, प० १६०
४ वही, प० २६३
५ महाभोज, पृ० २५-२६

आप लोगों के हौसले तोड़ दिए हैं, इसलिए मैं लड़ूँगा, आपकी यह लड़ाई आखिर दम तक लड़ूँगा। आप लोग साथ देंगे तो भी नहीं देंगे तो भी।"[1] दा साहब गांधीजी की कुटीर योजना ग्रामोद्योग का समर्थन करते हुए गाँव वालों को कहते हैं— मुझे तो ऐसे निर्भीक और उत्साही नवयुवकों की आवश्यकता है इस योजना के लिए। चाहता हूँ कि घरेलू उद्योग योजना को आप लोग ही सँभाल लें आप लोग ही चलाएँ। कितना बड़ा सपना था बापू का कि हर गाँव और हर ग्रामीण आर्थिक रूप से स्वतन्त्र बने समर्थ बने।"[2]

'महामहिम' में हिंसा का विरोध किया गया है। मुख्यमन्त्री सीताराम संवाद-दाता सम्मेलन में विरोधी दलों की हिंसा की वारदातों पर ठोस वक्तव्य देता है—'विपक्ष के दल प्रदेश भर में हिंसा और अराजकता का वातावरण पैदा करने पर आमादा हैं। लेकिन हम हर कीमत पर प्रजातन्त्र की रक्षा करेंगे।'[3] समाज में व्याप्त कुप्रथाओं जैसे दान-दहेज की समस्या। शासकों द्वारा शोषितों पर अत्याचार का भी लेखक ने वर्णन किया है और सामाजिक क्रांति का मत भी व्यक्त किया है—'सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति अपने आप हो जाती है, किन्तु हम लोग दुकानदार और किसान के मजदूरों और मालिक के परम्परागत प्रेम के रिश्ते को नहीं बदलेंगे, इसलिए हम केवल सांस्कृतिक क्रांति करेंगे। आप चाहें तो थोड़ी बहुत सामाजिक क्रांति की जा सकती है यही दान दहेज की समस्या को लेकर।'[4]

'हजार घोड़ों का सवार' में गांधीजी के सिद्धान्तों का प्रबल समर्थन किया गया है। जिसमें वर्गहीन समाज की *कल्पना, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, असहयोग,* सत्याग्रह आदि को मान्यता प्रदान की गई है। अलगरजिया बाबा कहता है—'तेरी इच्छा इसीलिए ही मैं कहता हूँ कि वर्गहीन समाज की रचना होनी चाहिए।[5] अलगरजिया बाबा आगे कहते हैं— तेरी इच्छा, हृदय गरीब व शोषित लोगों का बदला जा सकता है, पर पाषाण व निरंकुश लोगों का नहीं। इस लिए *अहिंसा, असहयोग* और सत्याग्रहों के साथ साथ नपुंसकीय हिंसा का त्याग भी जरूरी है।'[6] गांधीजी के सत्य, ईश्वर सम्बन्धी विचारों को प्रतिपादित करता करता हुआ अलगरजिया बाबा कहता है—'इस निराधार ईश्वर को तुम सब मार डालो। ये धार्मिक दलालों का ईश्वर " " और तु
महात्मा गांधी ने भी कहा है—'सत्य ही ई

१ महाभोज, पृ० २६
२ वही, पृ० ८०
३ महामहिम, पृ० १०१
४ वही, पृ० १४२
५ हजार घोडो का
६ वही, पृ० १५८

ईश्वर है। जिस प्राणी मे इन तत्वो का लोप है फिर भी वह ईश्वर का नाम लेता है, तो वह मक्कार है। उस पाखण्डी के ईश्वर पर कभी भी विश्वास नही करना चाहिए।'[1] गांधी भी दया, अहिंसा और अपरिग्रह का समर्थक है, 'धर्म इतना कच्चा नही है। धर्म एक आचरण है जो आदमी को अच्छाइयो मे पूर्ण करता है। हर धर्म के सही आचरण तीन ही है—दया अहिंसा और अपरिग्रह। इन तीनो का आचरण करने वाला समता का समर्थक होता है और यही समता प्राणी को ईश्वरमय बनाती है।'[2]

'दारुल शफा' मे भी हरिजनो को अपने समुचित अधिकार दिलाने का आह्वान किया गया है। लोबीराम रगीनराय को कहता है—'हाँ रायसाहब, यह मेरा निर्णय है हम हरिजनो का शताब्दियो से शोषण होता चला आया है। हाय बापू तुम कहाँ हो! देखो अब। भारत के हृदय के समान सबसे विशाल प्रदेश मे आज बीस वर्षों मे भी किसी हरिजन को मुख्यमन्त्री नही बनाया गया। लेकिन मुझे बापू का सपना पूरा करना है।'[3] गाधीजी के आह्वान पर स्वतन्त्रता सग्राम मे लोग किस तरह शामिल होते थे इसका जिक्र रगीनराय अपने भाषण में करता है—'उस आजादी का सपना जिसे छू भर पाने के लिए हमने तरस तरस कर दिन गुजारे, तड़प-तड़पकर रातें काटी। गाधीजी की आवाज पर हजारो लाखो लोगो ने पढाई लिखाई बीवी बच्चो को त्यागकर माँ बापू भाई, बहनो के प्यार छोडकर अपने देश को सब कुछ दे डाला सब कुछ।'[4]

'जगलतन्त्रम' मे प्रतीको के माध्यम से कथा कही गई है। सिंह (प्रमुख राजनेता) जगलवाणी (आकाशवाणी) से राष्ट्र के नाम सन्देश मे गाधीजी के अहिंसा के सिद्धान्त का समर्थन करता हुआ कहता है—'कुछ दिन पहले इस जगल के कुछ भाई बन्धु भटककर जगलिस्तान (पाकिस्तान) की सीमा मे चले गये थे, जिन्हें वहाँ के जानवरो ने मार डाला। यह हमारा बहुत बडा नुकसान था किन्तु फिर भी हमने उसे बर्दाश्त कर लिया था क्योकि हम शाति के साथ रहना चाहते हैं। हम यह भी चाहते हैं कि हमारे पडोसी भी शान्तिपूर्वक रहे।'[5] विजय के उपलक्ष मे आयोजित सभा मे जगलिस्तान के सम्बन्ध में कहता है कि—'उसे शक हो गया था कि जगलतन्त्रम, मगलवाद और अहिंसा के पुजारी है, इस लिए हमे हथियार उठाना आता नही।'[6] वह अधिवेशन मे कहता है—'हमारे

१ हजार घोडो का सवार, पृ० १५९
२ वही, पृ० १८९
३ दारुल शफा, पृ० ७३
४ वही, पृ० ३०६
५ जगलतन्त्रम, पृ० ८२
६ वही, पृ० ८६

आप लोगो के हौसले तोड दिए हैं इसलिए मैं लडूँगा, आपकी यह लडाई आखिर दम तक लडूगा । आप लोग साथ देंगे तो भी नही देंगे तो भी ।"[1] दा साहब गाधीजी की कुटीर योजना ग्रामोद्योग का समर्थन करते हुए गांव वालों को कहते हैं— मुझे तो ऐसे निर्भीक और उत्साही नवयुवकों की आवश्यकता है इस योजना के लिए । चाहता हू कि घरेलू उद्योग योजना को आप लोग ही सभाल लें आप लोग ही चलाएँ । कितना बडा सपना था बापू का कि हर गांव और हर ग्रामीण आर्थिक रूप से स्वतत्र बने समथ बने ।"[2]

महामहिम' मे हिंसा का विरोध किया गया है। मुख्यमत्री सीताराम सवाद दाता सम्मेलन मे विरोधी दलो की हिंसा की कारवाईयों पर उनका वक्तव्य देता है—'विपक्ष के नेता प्रदेश भर म हिंसा और अराजकता का वातावरण पैदा करने पर आमादा हैं । लेकिन हम हर कीमत पर जनतत्र की रक्षा करेंगे।'[3] समाज मे व्याप्त कुप्रथाओ जैसे दान-दहेज की समस्या । शोषकों द्वारा शोषितो पर अत्याचार का भी लेखक ने वर्णन किया है और सामाजिक क्राति का मत भी व्यक्त किया है—'सामाजिक और सास्कृतिक क्राति अपने आप हो जाती है, किन्तु हम लोग दुकानदार और किसान के मजदूरो और मालिक के परम्परागत प्रेम के रिश्ते को नहीं बदलेंगे, इसलिए हम केवल सांस्कृतिक क्राति करेंगे। आप चाहे तो थोडी बहुत सामाजिक क्राति की जा सकती है यही दान दहेज की समस्या को लेकर ।'[4]

'हजार घोडो का सवार' मे गाधीजी के सिद्धान्तों का प्रबल समर्थन किया गया है। जिसमे वर्गहीन समाज की कल्पना, सत्य, अहिंसा अपरिग्रह, असहयोग, सत्याग्रह आदि को मान्यता प्रदान की गई है। अलगरजिया बाबा कहता है— 'तेरी इच्छा इसीलिए ही मैं कहता हूँ कि वर्गहीन समाज की रचना होनी चाहिए ।'[5] अलगरजिया बाबा आगे कहते हैं— तेरी इच्छा, हृदय गरीब व शोषित लोगो का बदला जा सकता है, पर पाषाण व निरकुश लोगो का नही । 'इसलिए अहिंसा, असहयोग, और सत्याग्रहो के साथ साथ नपुसकीय हिंसा का त्याग भी जरूरी है ।'[6] गाधीजी के सत्य, ईश्वर सम्बन्धी विचारो को प्रतिपादित करता करता हुआ *अलगरजिया बाबा* कहता है—'इस निराधार ईश्वर को तुम सब मार डालो । ये धार्मिक दलालो का ईश्वर है। हमारा और तुम्हारा नहीं । महात्मा गाधी ने भी कहा है—'सत्य ही ईश्वर है, प्रेम ही ईश्वर है, अच्छाई ही

१ महाभोज, प० ३६
२ वही, प० ८०
३ महामहिम, पृ० १०१
४ वही, प०१४२
५ हजार घोडा का सवार, प० १५८
६ वही, पृ० १६८

ईश्वर है। जिस प्राणी मे इन तत्वो को लोप है, फिर भी वह ईश्वर का नाम लेता है तो वह मक्कार है। उस पाखण्डी वे ईश्वर पर कभी भी विश्वास नही करना चाहिए।'[1] गीधू भी दया, अहिंसा और अपरिग्रह का समर्थक है, 'धर्म इतना कच्चा नही है। धर्म एक आचरण है जो आदमी को अच्छाइयो से पूर्ण करता है। हर धर्म के सही आचरण तीन ही है—दया, अहिंसा और अपरिग्रह। इन तीनो का आचरण करने वाला समता का समर्थक होता है और यही समता प्राणी को ईश्वरमय बनाती है।'[2]

'दारुल शफा' में भी हरिजनो को अपने समुचित अधिकार दिलाने का आह्वान किया गया है। लावीराम रगीनराय का कहता है—'हाँ रायसाहब, यह मेरा निर्णय है हम हरिजनो का शताब्दियो से शोषण होता चला आया है। हाय बापू तुम कहाँ हो! देखो अब। भारत के हृदय के समान सबसे विशाल प्रदेश मे आज बीस वर्षों मे भी किसी हरिजन को मुख्यमन्त्री नही बनाया गया। लेकिन मुझे बापू का सपना पूर्ण करना है।'[3] गाधीजी के आह्वान पर स्वतन्त्रता सग्राम मे लोग किस तरह शामिल होते थे इसका जिक्र रगीनराय अपने भाषण मे करता है—'उस आजादी का सपना जिसे छू भर पाने के लिए हमने तरस तरस कर दिन गुजारे तडप तडपकर रातें काटी। गाधीजी की आवाज पर हजारों लाखो लोगों ने पढाई लिखाई बीवी बच्चो को त्यागकर माँ बापू, भाई बहनों के प्यार छोडकर अपने देश को सब कुछ दे डाला सब कुछ।'[4]

'जगलतत्रम' मे प्रतीको के माध्यम से कथा कही गई है। सिंह (प्रमुख राजनेता) जगलवाणी (आकाशवाणी) से राष्ट्र के नाम सन्देश मे गाधीजी के अहिंसा के सिद्धान्त का समर्थन करता हुआ कहता है—'कुछ दिन पहले हम जगल के कुछ भाई बधु भटककर जगलिस्तान (पाकिस्तान) की सीमा में चले गये थे, जिन्हें वहाँ के जानवरो ने मार डाला। यह हमारा बहुत बडा नुकसान था किन्तु फिर भी हमने उसे बर्दाश्त कर लिया था क्योकि हम शाति के साथ रहना चाहते हैं। हम यह भी चाहते हैं कि हमारे पडोसी भी शान्तिपूर्वक रहे।'[5] विजय के उपलक्ष मे आयोजित सभा मे जगलिस्तान के सम्बन्ध में कहता है कि—'उसे शक हो गया था कि जगलतत्रम, मगलवाद और अहिंसा के पुजारी हैं, इस लिए हमे हथियार उठाना आता नही।'[6] वह अधिवेशन मे कहता है—हमारे

१ हजार घोडो का सवार, पृ० १५९
२ वही, प० १८६
३ दारुल शफा प० ७३
४ वही, प० ३०६
५ जगलतत्रम, प० ८२

जो भाई निर्बल हैं, उन्हें ऊपर उठने का मौका मिलना ही चाहिए।'[१]

'शांति भंग' उपन्यास में मुंशी जी गांधीजी के विचारों से बहुत प्रभावित कथा पात्र है। 'वे आज भी नियम से चर्खा चलाते हैं। जितना सूत निकाल लेते थे सिर्फ उतने के ही कपड़े खद्दर भण्डार से लाते थे।'[२] जबकि सदानन्द चर्खा चलाने का काम सिर्फ गांधी जयन्ती के दिन होने वाले कार्यक्रमों के उद्घाटन के वक्त करते थे।'[३] आज पूंजीपति कितना प्रगति कर रहा है मुंशी जी की विचारधारा में—*आज करोड़पति दो सौ गुना ज्यादा अमीर हो गया है और गरीब की गरीबी पांच सौ गुना बढ़ गई।*'[४] ये पूंजीवादी प्रवृत्ति गांधीजी के सपनों को साकार करने में रोड़ा अटका रही है।

'प्रजाराम' में प्रतीक नायक 'प्रजाराम' इन्दिरा गांधी की पराजय के बाद महात्मा गांधी की समाधि के पास बैठा सोच रहा था—'आज नई पार्टी जनता पार्टी फिर उसी व्यक्ति की पूजा का अपना श्रीगणेश कर रही है महात्मा गांधी की। वही व्यक्ति पूजा का प्रतीक। एक यही नाम है जिसे ये नेता प्रजा और दलित वर्ग के शोषण करने का हथियार बनाये हुए हैं। हमें गांधीजी के सपनों का भारत बनाना है देश में रामराज्य लाना है।' वह (प्रजाराम) आगे सोचता है—'हे राष्ट्रपिता! आपकी इस ब्रह्माण्ड में कहीं भी आत्मा है तो वह आकर इन राजनेताओं को समझा दे कि कम से कम आपके पवित्र नाम के माध्यम से *देश की भूखी नंगी जनता का शोषण न करें। यह शपथ को सत्य सार्थक करें।*'[५] प्रजाराम एक कांग्रेसी को कहता है—तभी तो मैं कहता हूँ इस व्यवस्था और आप जैसे लोगों की वजह से कहीं भी परिवर्तन नहीं आ सकता प्रजा तो पिसती जायेगी। *पूंजीपति और अधिक पसे वाला होगा। गरीब अधिक गरीब होगा।* फिर अनेक तरीकों से धनी बनने वाला नव पूंजीवाद भी अपने हिंसक जबड़े निकालेगा। वह गरीब आदमी को निगल जायेगा। निगलते रहेंगे।' गरीबों को इस पूंजीवाद के हिंस्र जबड़ों से मुक्ति दिलाने के लिए गांधीजी के सिद्धान्तों को अपनाना बहुत आवश्यक है।

'कटरा बी आर्जू' में लेखक ने तत्कालीन समाज में व्याप्त दहेज जैसी व्यवस्था को समाप्त करने की बात करता है। शम्सू मियां दहेज का विरोधी है। लेकिन आज का समाज दहेज को 'आं हजरत' (मुसलमान अपने पैगम्बर को 'आं हजरत' कहते हैं) का आदेश मानते हैं। शम्सू मियां का विचार है 'यदि दहेज नहीं दिया है तो शायद बारात वापस लौट सकती है।'

१ जगततंत्रम पृ० १०१
२ शान्तिभंग पृ० २८
३ वही, पृ० २६
४ वही पृ० ३१
५ प्रजाराम, पृ० १०४-१०५

५ | राजनीतिक चेतना एव परिवेश

साठोत्तर हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे चेतना और परिवश व्यापक स्तर पर मिलता है। परिवेश के शाब्दिक अथ की ओर नजर डालें तो आदश हिन्दी शब्द कोश मे इसका अथ बतलाया गया है—परिधि वेष्टन, घेरा।[1] हिन्दी शब्द कोश मे परिवश का अथ—घेरा, परिधि बतलाया गया है।[2] स्वतन्त्रता के पश्चात जो उपन्यास लिखे गये हैं उनका देशकाल और वातावरण तत्कालीन परिवेश को लेकर लिखा गया। वही समय उस समय का परिवेश बन गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय राजनीति मे जो घृणित परिवेश समाहित हुए हैं, उनमे वतमान की भ्रष्टाचारी व्यवस्था जो राष्ट्र के विकास मे बाधक सिद्ध हो रही है। आज की राजनीति मे जातीयता की राजनीति, साम्प्रदायिकता की राजनीति सस्थागत राजनीति, भाषा की राजनीति, आनुवशिकता की राजनीति, शहरी और ग्रामीण राजनीति तथा आन्दोलनकारी नीतियाँ आज वर्तमान राजनीति को अपनी परिधि मे समेटी हुई हैं। आज राजनीति इन्ही परिधि के इद गिद घूमती रहती है। वतमान मे जसी व्यवस्था चल रही है इससे वर्तमान उपन्यासकार अधिक प्रभावित रहा है। इन्ही परिवेशो को आधार लेकर आज उपन्यासो की सजना की जा रही है। साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासो म इन परिवशो का व्यापक स्तर पर यथाथ चित्र खीचने का प्रयास किया गया है। इन परिवेशों के निर्माण म जो बिन्दु सहायक रहते हैं, उसमे राष्ट्र की भौगोलिक स्थिति, वातावरण, जलवायु, सामाजिक रीति रिवाज, परम्परा, अन्ध विश्वास, रूढियाँ आर्थिक तनाव, फेशन-परस्ती, पिछडापन अन्य बिन्दु परिवेश को बनाने मे सहायक रहती है। साठोत्तर राजनीतिक उपन्यासो मे इन निर्माण के तत्वो और परिवशो का व्यापक फलक पर चित्रण किया गया है। हम सक्षेप म इन परिवेशो को निम्न बिन्दुओं की सहायता से अध्ययन कर सकते हैं—

१ प० रामचन्द्र पाठक (स०)—आदश शब्द कोश, पृ० ३१६
२ हिन्दी शब्द कोश, पृ० ३६५

भ्रष्टाचार

ब्रिटिश शासन काल मे भ्रष्टाचार अनेक स्तरो पर व्याप्त था। प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासो मे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इसका विरोध किया गया है। हिन्दी उपन्यास साहित्य मे पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार पर व्यापक चित्रण मिलता है। वर्तमान मे पुलिस के अतिरिक्त अन्य ऐसा विभागो म भी भ्रष्टाचार फैला हुआ है। कोई भी ऐसा विभाग नही रहा है जहाँ कोई भ्रष्टाचारी नही हो। बिना रिश्वत दिये काम को सम्पूण कराना कल्पना से परे की बात हो चुकी है। वतमान मे किसी काय को सम्पूण कराने के लिए नीचे से लेकर ऊपर तक के व्यक्ति को प्रसन्न किया जाना आवश्यक होता है। इस भ्रष्टाचार को हिन्दी के साठोत्तर उपन्यासो मे देखा जा सकता है।

'एक और मुख्यमत्री' मे पुलिस के अत्याचार व भ्रष्टाचारी रूप को दिखाया गया है। एक तहसील का थानेदार एक हरिजन युवती के साथ बलात्कार करता है। औरत उसके घर मे सफाई का काम करती है। उसका परिवार कही गया हुआ था। तब उसने यह घणित काय किया। 'मेहतरानी ने डटकर विरोध किया। उसके कपडे भी फट गए। अन्त मे थानेदार ने बेहोशी की सी अवस्था मे उससे बलात्कार किया।'[1] लेकिन राजनेता उसको बचाने मे लग गये, इतना बहुत कुछ करने के बाद भी उसे बारह साल की सजा सुना दी गई।

शिवचरण मिश्र विकास अधिकारी त्रिवेदीजी का भानजा था। उसकी नियुक्ति वहाँ कर दी गई थी जहा विकास की काफी सम्भावनाएँ थी। लेकिन वहाँ का प्रधान निहायत ईमानदार था वह हर काय नियमो के अन्तगत करता तथा भ्रष्टाचार के समार से कोसो दूर रहता था। मिश्रजी इनसे विपरीत थे, रिश्वत लेना इनका जन्म सिद्ध अधिकार सा लगता था। पुस्तको की खरीद के वक्त वे प्रकाशक से रिश्वत माँगते हुए कहते हैं—'क्यो नही दे सकता है? मैं गत तीन वष से विकास अधिकारी हू। मैंने सभी प्रकाशको से इतना कमीशन लिया है याने साढे बारह प्रतिशत बिल पर और शेष नकद के रूप मे। नकद बिल पास करने के पहले लिया है।'[2]

जबरसिंह 'सर्वाहि नचावत राम गोसाई' मे राधेश्याम मत्री से कृषि अनुसधान शाला व ट्रैक्टर की फैक्टरी खोलने के लिए जमीन और अनुदान प्राप्त करने को कहता है। इस काम के बदले यह कहा जा सकता है कि रिश्वत के रूप मे जो देना चाहता था उसके सबध म जबरसिंह से 'उसके' भाई हिम्मतसिंह के मनेजर बनाने के बारे मे कहता है। हिम्मतसिंह एग्रीकल्चर मे डिप्लोमा कर

१ एक और मुख्यमन्त्री, पृ० १७८
२ वही, पृ० १९०

चुका था। राधेश्याम कहता है—'कृषित अनुसंधानशाला के फार्म में मैनेजर का पद मैंने आरक्षित कर दिया है उसके लिए। जिस दिन जमीन मिल गई उसी दिन से लैण्ड डेवलमेंट का काम आरंभ कर दे—आप उन्हें बुला लीजिए। पन्द्रह सौ से बाईस सौ रुपये का ग्रेड होगा।'[1]

'कटरा बी आर्जू' में पुलिस के अत्याचार का भयानक रूप दिखलाया गया है। आपातकाल के दौरान सामान्य व्यक्ति से पूछताछ के लिए कठोर यातनाएँ, पुलिस द्वारा दी गयी। देशराज को 'आशाराम' का पता पूछने के लिए अमानवीय यातनाएँ पुलिस द्वारा दी गयीं। यातना कितनी बर्बर थी, उसका पता इन कथनों से लगाया जा सकता है—'जगदम्बाप्रसाद ने अपना नाम खत्म होते होते देश के हाथ पर अपना एक भारी बूट वाला पाँव रख दिया। देशराज तड़प गया। पर उसमें इतनी ताकत नहीं थी कि हाथ को उस भारी पाँव वाले जूते के नीचे से निकाल सके।'[2] आपातकाल के समय पुलिस ने यातनाओं के लिए मनुष्य के एक भी अंग को वंचित नहीं रखा। यथा—'जगदम्बाप्रसाद ने पल-भर परों को देखा और फिर उन्होंने एक पर का चुनाव किया और उसे झाडू से निकालकर वापस आये। खुर्शीद आलम खाँ अब भी हैरान थे। बाबू जगदम्बा प्रसाद ने वह देश के चूतड़ में खोंस दी जहाँ अब भी तीन दिन पहले भरी जाने वाली मिर्च की जलन मौजूद थी पर का रंग गहरा नीला था तीनों सिपाही जोर-जोर से हँसने लगे और देश बदन के दर्द से बेपरवा पानी के गिलास के लिए उनके साथ साथ दर्द और जिल्लत के उस कमरे में चिल्लाता रहा।'[3]

'राग-दरबारी' में पुलिस के हरामीपन व एकपक्षीय व्यवहार के संबंध में प्रिंसिपल साहब कहते हैं—'पुलिस ने जबरदस्ती रोना पक्षों पर १०७ का मुकदमा चला दिया। इसे कहते हैं पुलिस का हरामीपन। बदमाशी खन्ना ने की, मार पीट पर उसके साथी आमादा हुए और चालान हुआ तो उन लोगों का भी और हमारा भी। यह अंधेर नगरी चौपट राजा।'[4]

'महाभोज' में बिसू का हत्यारा गिरफ्तार नहीं हुआ था कि चुनाव आ गया। चुनाव जीतने के लिए उसके हत्यारों को खोजना आवश्यक हो गया था। लेकिन पुलिस उसे गिरफ्तार करने में असमर्थ रही। पुलिस गाँव में बयान लेने जाती है। दा साहब यह भी जानते हैं कि ये पुलिस वाले क्रूर किस्म के व्यक्ति होते हैं। वे इस संबंध में सिन्हा से कहते हैं—'पुलिस के सामने जनता को

---

१ सबहिं नचावत राम गोसाईं, पृ० १५०
२ कटरा बी आर्जू, पृ० १८०
३ वही, पृ० १८४
४ रागदरबारी, पृ० २२४

अधिक सुरक्षित महसूस करना चाहिए आतंकित नहीं। जनता यदि डरती है तो फलक है, यह पुलिस वालो के लिए।'[1] मेरे दा साहब ने यह इसलिए कहा कि अगर बिसू का हत्यारा पकडा गया तो उनकी पार्टी अवश्य जीत जाएगी। वे आगे सिन्हा को और कहते हैं—'ऐसी घटनाएँ घटें और पुलिस ठीक-ठीक पता न लगा पाये तो मतलब क्या पुलिस का? इससे बेहतर है कि आप और हम इस्तीफा देकर बैठ जायें।'[2] आज पुलिस इस तरह के केसो को सिद्ध करने मे प्राय असफल हो रही है। सिन्हा को डी० आई० जी० बना दिया जाता है। इस खुशी मे पार्टी दी जाती है। लोग हाथो मे कीमती गिलास थामे हुए कोई दल देश मे बढते भ्रष्टाचार पर चिन्ता कर रहा था जबकि वे उस समय एक भ्रष्टाचारी के यहाँ दावत उडा रहे थे। 'लेकिन किसी के दिमाग मे एक क्षण के लिए भी यह बात न आयी की डी० आई० जी० की हैसियत का आदमी इतनी कीमती शराबें कहाँ से पिला सकता है, कैसे पिला सकता है? किसी बडे जौहरी की दुकान के शो केस की शोभा बढाने वाला कम के कम बीस हजार का हीरो का सेट श्रीमती सिन्हा के शरीर की शोभा बढाने कैसे आ पहुँचा कहा से आ पहुचा?'[3] इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि सिन्हा किसी बडे भ्रष्टाचारी व्यक्ति से कम नही है।

'महामहिम' मे बतलाया गया है कि आज पुलिस भ्रष्टाचारियो का साथ कैसे देती है। दंगे के समय बनियो ने अपने माल गोदामो मे माल गायब करके आग लगा दी ताकि बीमा से पैसे वसूल कर ले और माल बाजार मे ऊँची कीमत पर बेचने के लिए रख दिया। रिपोट पुलिस ने सत्य लिखी। जिसने कहा—'हमारा पचास हजार का माल नष्ट हुआ।' पुलिस ने उससे कहा—'एक लाख का माल नष्ट होने की रपट लिखाओ।' जिसने कहा हमारा पचास हजार का माल जल गया—पुलिस ने कहा, 'एक लाख का माल स्वाहा होने की बात करो।'[4] पुलिस जमाखोरो और मुनाफाखोरो को पकडने के बजाय मजदूरो पर अपने डण्डो को आजमाने लगी।

'हजार घोडो का सवार' मे गीधू जब ससद सदस्य बन जाता है तो सेठ दौलत चद अपने कुछ काम गीधू से करवाना चाहता था, उसके बदले वह जीप, घडी दे देता है। गीधू लेना नही चाहता था, पर मन मार कर उसे वे वस्तुएँ लेनी ही पडी। बलबीर सिंह की दृष्टि मे गीधू 'यह भी मानता हूँ कि इस भ्रष्टाचार के सागर म जो भी पडेगा वह भ्रष्ट हो जायेगा। फिर ये भूखे-नंगे लोग ऐय्याशी

---

१ मन्नू भण्डारी—महाभोज, पृ० ४५
२ महाभोज, पृ० ४८
३ वही पृ० १७४
४ महामहिम, पृ० १५०

ज़िन्दगी से बचकर भी कैसे रह सकते है ? लेकिन गीधू को सरलता से अपनी ओर मिलाना कठिन है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसके भीतर एक श्रेष्ठ मानव है। हमसे एक श्रेष्ठ मानव।"[1]

'शांति भंग' मे बतलाया गया है कि आपात्काल के दौरान भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर था। नसबन्दी के नाम पर अफसर लोग पैसे लूट रहे थे। नंदकिशोर नसबंदी कराना नही चाहता है। उससे प्रमाण पत्र देने के बदले पैसे मांगे जाते हैं। वह पैसा भी नही देना चाहता था। इसका यह फल हुआ कि उसे नौकरी से हटा दिया गया। खरे के बेटे बालकृष्ण को आतंकवादी कहकर पुलिस उसे गोली से मार देती है।

'प्रजाराम' मे आशुतोष नाम का इंजीनियर है, जो पूर्णरूपेण भ्रष्टाचार मे डूबा हुआ है। उसने बांध मे जो भ्रष्टाचार अपनाये उसके संबंध मे प्रजाराम उसे कहता है—'मुझे आप नहीं पहचान सकते तो भला आप किसको पहचानेंगे ? जिस आदमी ने आपके कहने पर एक सौ मस्ट्रोल की जगह पाँच सौ मस्ट्रोल बनाए थे, उसे आप नही पहचानते ? आपने सीमेंट मे राख मिलाई थी। आपने इस तरह खूब पैसा बनाया था।"[2]

उपर्युक्त उदाहरणों से पता लगाया जा सकता है कि आज भ्रष्टाचार हमारे चारों तरफ इस कदर फैल गया है कि कोई भी आदमी इससे बचा नहीं है। पुलिस का आतंक आदमी की स्वतन्त्रताओ पर रोक सी लगा देता है। पुलिस के नाम से आदमी कांप उठता है। कुछ चुनींदे पुलिस वालो ने ही इस विभाग को अधिक बदनाम कर रखा है। हमे आम जनता को पुलिस के भय से मुक्त और भ्रष्टाचार को समाप्त कर राष्ट्र की उन्नति मे सहायक बनना चाहिए।

साम्प्रदायिकता की राजनीति

भारत की राजनीति मे सर्वप्रथम राजनीतिक दलों का गठन धार्मिक स्वरूप मे हुआ। स्वतन्त्रता से पूर्व सामाजिक आन्दोलन हुए उसमे अधिकांश का नेतृत्व हिन्दू सुधारको ने किया और यही कारण है कि धर्म के रूप मे नये युग की नयी वाणी ध्वनित हुई। भारत के नवजागरण काल मे धार्मिक आन्दोलनो के कारण हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के समीप न आ सके। अंग्रेजो ने इसका लाभ उठाते हुए स्थिति के अनुकूल 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति को प्रश्रय देकर साम्प्रदायिक भावना का विस्तार किया।

---

१ हजार घोड़ों का सवार, पृ० ४०६

२ प्रजाराम, पृ० ३२

मुस्लिम साम्प्रदायिकता की प्रतिक्रिया के स्वरूप ही २० वीं शती के प्रारम्भ मे हिन्दू महासभा का आविर्भाव हुआ। यह हिन्दू राज्य की स्थापना का स्वप्न देखती थी। ऐसे अनेक दलो का गठन हुआ जो साम्प्रदायिकता के आधार पर बने थे, जैसे मुस्लिम लीग, जनसघ, साम्यवादी दल आदि। स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय राजनीति मे साम्प्रदायिकता किस तरह फैल गई उसको हम साठोत्तर हिन्दी उपन्यासो मे इस तरह से देख सकते हैं —

'एक और मुख्यमन्त्री' मे बतलाया गया है कि भारत जस विशाल देश मे अनेक जातियो का निवास है। इनमे आपसी साम्प्रदायिक सद्भावना का होना अति आवश्यक है। जब जनता म साम्प्रदायिकता की भावना अपन घृणित रूप मे उपस्थित होती है तब राष्ट्र का पतन आरम्भ हो जाता है। अरविन्द सोचता है—'पजाबी सूबे को लेकर जो अकाली दल के प्रमुख कार्यकर्ताओ ने जातीयता, प्रातीयता व साम्प्रदायिकता का विष वमन किया था, वह देश के लिए कितना घातक सिद्ध हुआ। सिक्खो का अलग प्रात और हरियाणा अलग। कितनी भयानक स्थितिया उत्पन्न हो गई थी।'[1] इसका परिणाम यह हुआ कि सिक्खो और हिन्दुओ म, विशेषत आयसमाजो और जनसघी विचारधारा के लोगो के बीच के तनाव ने हिंसा का रूप धारण कर लिया था।

'कटरा बी आर्जू' मे आशाराम को पूरा यकीन था कि 'मुरारजी भाई और उस थैली के तमाम चटटे बट्टे जनसघ से गठजोड करके प्रगतिशील ताकतों के खिलाफ मोर्चे बनायेंगे। और एक मजिल पर जमायते इस्लामी और इस तरह की दूसरी तमाम मुस्लिम साम्प्रदायिक पार्टियाँ भी उसी बडे गठजाड का हिस्सा बन जायेंगी अपनी य परेशानियाँ वह किससे कहता, क्योंकि खुद उसकी पार्टी दो हिस्सो म बट चुकी थी।'[2]

'राग दरबारी' मे प्रिंसिपल खन्ना ने अपना नाम असली नाम खन्ना ही रख लिया। वह गाँव म सभी से साम्प्रदायिक सद्भावना रखने पर जोर देता था। 'खन्ना मास्टर का असली नाम खन्ना था। वैसे ही जसे तिलक, पटेल गांधी, नेहरू आदि हमारे यहाँ जाति के नही व्यक्तियो के नाम हैं। इस देश म जाति प्रथा को खत्म करने की यही एक सीधी सी तरकीब है। जाति से उसका नाम छीनकर उसे किसी आदमी का नाम बना देने से जाति के पास और कुछ नही रह जाता। वह अपने आप खत्म हो जाती है।'[3] अत, जातिवाद को समाप्त करके ही देश मे साम्प्रदायिक एकता को लाया जा सकता है।

---

१ एक और मुख्यमन्त्री, पृ० २१६ २१७
२ कटरा बी आर्जू पृ० १९
३ राग दरबारी, पृ० २६

वर्तमान राजनीति मे लोग चुनावो मे सफलता के लिए साम्प्रदायिकता और गरीब तबके के हित की बात कहकर सफलता प्राप्त करते हैं। 'महाभोज' मे दत्ता साहब कहते हैं—'ठीक है भाई तुमको चुनाव जीतना है पर लोगो की शान्ति और आपसी सद्भावना पर तो मत जीतो। होगा क्या, गाँव मे पहले ही तनाव है और बढ़ जायेगा। आपस मे ही मार काट मचेगी। और इस सब का परिणाम? पिसेगा बेचारा गरीबो का तबका। सम्पन्न लोग तो जैसे-तैसे बच ही जायेंगे—पैसो और ताकत के जोर से, मरता तो गरीब ही है न?'[1] दुहाई गरीबो की सब देते हैं, पर उनके हित की बात कोई नही सोचता। जनता को बाटकर रखो कभी जात की दीवारें खीचकर, तो कभी वर्ग की दीवारें खीचकर। जनता का बटा बिखरापन ही तो स्वार्थी राजनेताओ की शक्ति का स्रोत है।'[2]

'महामहिम' व्यग्य शैली मे लिखा हुआ उपन्यास है। यह जनता पार्टी के शासन काल को लेकर लिखा गया है। विरोधी पार्टी सत्ताहीन पार्टी का किस तरह बदनाम करती है और साम्प्रदायिकता के नाम पर दगा करवाती है। स्वामी ब्रह्मचारी के शिष्य किस तरह साम्प्रदायिकता को बढावा देते हैं यथा—'इस प्रकार साम्प्रदायिक सद्भावना के लिए आयोजित मुशायरा शुरू होने से पहले ही साम्प्रदायिकता की चपेट मे आ गया।'[3]

'हजार घोडो का सवार' मे बतलाया गया है कि अग्रेजो के शासन के समय से ही साम्प्रदायिक एकता की भावना समाप्त होती चली गयी। एक जाति दूसरी जाति के लोगो को हीन दृष्टि से देखती थी। सेठ मोहता गीधू को पत्र मे लिखता है—'भगी मेघवाल के घर का नही खाता और मेघवाल सासी के घर का। हर जाति दूसरी जाति को हीन समझती है। अछूत समझती है। ऐसी स्थिति मे छुआछूत की लडाई न तो सैद्धातिक रूप से लडी जा सकती है और न व्यावहारिक रूप से। उसके लिए एक सही लडाई की जरूरत है।'[4] जब गीधू सासिया और कजरा के घर का खाना खा आता है तो सीता दादी अपने भानजे की सगाई गीधू की लडकी से तोड देती है। उस समय रमाडी गीधू को कहती है—'कोई अपनी जाति बिरादरी के बिना नही रह सकता। आपने साँसिया व कजरा के साथ खा पी लिया है, फिर उन्ही को अपनी बाई बेटी भी

---

१ महाभोज, पृ० ४७
२ वही, पृ० ४८
३ महामहिम, पृ० १४७
४ हजार घोडो का सवार, पृ० २९६

१५ अगस्त को भारत स्वतंत्र हुआ। जिन्ना ने साम्प्रदायिकता के नाम पर देश के दो टुकड़े करा दिए। 'देश की स्वतंत्रता के साथ मानव रक्त की नदियाँ भी बहती देखी गयीं। हिन्दू मुसलमानों के मन भड़क उठे। आग और कत्ले आम शुरू हो गया। इन हत्याकाण्डों व बर्बरता का ज्यादा इतिहास साक्षी अकोर का पनिन का हत्याकाण्ड, नादिरशाह का दिल्ली कत्लेआम और चंगेजों की बर्बरता भूल गये। हर हिन्दू आततायी और हर मुसलमान चंगेज़ी।'[१] पहली बार सामूहिक रूप से जाना गया कि 'धर्म कितना क्रूर, हत्यारा और रक्त पिपासु होता है। पहली बार ही अंग्रेजों की कुटिलता के फलस्वरूप आदमी के भीतर अंधा धर्म जागा था।'[२]

'काली आंधी' में चुनाव के वक्त साम्प्रदायिकता के नाम पर दंगे होते हैं और किस तरह चुनाव में सफलता के लिए अनैतिक हथकण्डे अपनाते हैं और साम्प्रदायिकता का जहर फैलाते हैं इसका एक ही मकसद होता है। खून बहाकर चुनाव को जीतना। मिर्जा साहब इसका विरोध करते हुए कहते हैं— यह काम उन जाहिल और फिरकापरस्त लोगों का है जो इन्सानी कीमतों को धूल में मिला देना चाहते हैं। गरीब और उन भूखे लोगों का, जो जिन्दगी की जद्दो-जहद में अपना खून पसीना बहा रहे हैं। ये वहशी लोग उन खूंखार जंगली जानवरों से सबक लेना चाहते हैं ताकि ये आपस में लड़ते रहें अपने भाइयों की गर्दनें काटते रहें और उन लोगों के खिलाफ न उठ खड़े हों जो सचमुच खून चूसते हैं। गरीबों का खून चूसने वाले तबके की यह साजिश है कि गरीब एक न हो पाए।'[४]

'दारुल शफा' में एक पात्र लोगीराम है। राजनीति के दांव पेंच तो उनको खूब आते हैं लेकिन सत्ता चला सकने या सत्ता की धुरी का हिस्सा बने रहना उनको कभी नहीं आया। वे जाति, वर्ग व इलाके के आधार पर नेता बन गये। हरिजन और पिछड़े वर्ग के नेताओं की उभरती हुई नस्ल को लोगीराम ने ठीक वक्त पर पहचाना। उनकी समस्याएँ जितनी उनकी जानी समझी थी, पार्टी में बहुत कम लोग तब जानते थे।'[५]

'प्रजाराम' में प्रजाराम के माध्यम से लेखक ने बताया है कि हर चुनाव

१ हजार घोड़ों का सवार, पृ० ३३४
२ वही, पृ० ३४६
३ वही, पृ० ३४६
४ काली आंधी, पृ० ५६
५ दारुल शफा, पृ० ३७०

आते ही साम्प्रदायिकता, जातीयता, धर्म उभरकर सामने आता है और तब व्यक्ति के मन से राष्ट्रीयता की भावना मिट सी जाती है। प्रजाराम एक संसद सदस्य से कहना है—"इस देश में एक बार फिर जाति, सम्प्रदाय और धर्म उभर आये है। यह उभार कभी न कभी बहुत ही नाजुक स्थिति को जन्म देगा। क्योंकि जब तक राष्ट्र मे न केवल सामाजिक बल्कि भावनात्मक व सांस्कृतिक तादात्म्य नही होगा, तब तक राष्ट्र सही माने मे प्रगति नहीं कर सकता। मनुष्य को जाति, धर्म के तबको मे बाटना एक तरह से राष्ट्र को विनाश के कगार पर खड़ा करता है।"[1]

उपर्युक्त उदाहरणो से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय राजनीति मे साम्प्रदायिकता किस तरह घर कर गई है। आज चुनाव साम्प्रदायिकता के आधार पर जीता जाता है। आज एक जाति दूसरी को हीन दृष्टि से देखती है। जाति के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे हो रहे हैं। हिन्दू मुसलमान से, सिक्ख हिन्दू आपस मे लड रहे हैं। अकाली साम्प्रदायिक भावना के आधार पर अलग राष्ट्र की मांग कर रहे हैं। यही साम्प्रदायिकता एवं प्रांतीयता की बात राष्ट्र के विकास मे बाधक सिद्ध हो रही है।

राजनीतिक संस्थाएं

स्वतन्त्रता की प्राप्ति मे कांग्रेस का महत्त्वपूर्ण रोल रहा था। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत मे कांग्रेस का शासन रहा। अपनी गलत नीतियो के कारण कांग्रेस को सत्ता से हाथ धोना पड़ा और शासन जनता पार्टी के हाथो मे आया। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति को दल बदलू का जबरदस्त रोग लग गया। आज के संसद सदस्य और विधायक को जिस तरफ अपना व्यक्तिगत स्वार्थ दिखाई दिया वह उसी दल मे शामिल होने लगे। यह रोग कम न होकर अधिक तीव्र होता जा रहा है। आज नेता लोग सत्ता को प्राप्त करने के लिए व निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए राजनीतिक दलो का गठन कर रहे हैं। जितने अधिक राजनीतिक दल होगे उतने ही प्रजातन्त्र के लिए बाधक होते हैं। वर्तमान मे भारतीय राजनीति के प्रमुख दल है—कांग्रेस (आइ), कांग्रेस (एम), लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी, जनता पार्टी, भारतीय जनता पार्टी, लोकदल, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, प्रजा समाजवादी, संयुक्त समाजवादी, स्वतंत्र, जनसंघ, झारखण्ड, मुस्लिम लीग, रामराज्य परिषद् अकाली दल, द्रविड़मुनेत्रकड़गम, फारवर्ड ब्लाक, गणतंत्र परिषद्, हिन्दू महासभा और तेलगू देशम। इतनी अधिक पार्टियाँ किसी अन्य प्रजातान्त्रिक राष्ट्र मे नही मिलती हैं। भारतीय राजनीति में इन संस्थाओ का योगदान है। उसको हम

१ प्रजाराम, पृ० ११३

हिन्दी के साठोत्तर उपन्यासों में इस तरह देख सकते हैं—

'एक और मुख्यमंत्री' में अरविंद हिन्दू महासभा का कट्टर समर्थक और महत्त्वपूर्ण नेता था। हिन्दू राष्ट्र देखना उसका स्वप्न था। जब उसे लगा कि हिन्दू महासभा में रहकर न सत्ता को प्राप्त कर सकेगा और न ही राजनीति में उच्च पद, यश, धन प्राप्त कर सकेगा। इस कारण वह कांग्रेस में शामिल हो जाता है। गांधी जी को श्रद्धांजलि देते वक्त कहता है—'स्वतन्त्रता के पिता की मृत्यु हमारे लिए असह्य है। मैं क्या करूं, हम स्वयं अपराधी हैं। हम केवल तड़प सकते हैं। बापू! मेरी श्रद्धांजलि—जो नन्हें बच्चे की तरह मौन है—स्वीकार करना। अत: मैं अत्यन्त खेद के साथ घोषणा करता हूं कि आज से मैं हिन्दू महासभा को छोड़कर जा रहा हूँ। इतना कहकर वह बैठ गया। कम्युनिस्ट पार्टी व कांग्रेस के कार्यकर्त्ता निश्चेष्ट हो गये और हिन्दू महासभा के नेताओं पर वज्रपात हो गया।"[1] इस तरह आज प्रत्येक नेता अपने निजी और राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए दल बदल का सहारा लेते हैं।

'कटरा बी आर्जू' में बताया गया है—लोग कुछ विधायकों को लेकर दल बदल करते रहते हैं। सिर्फ उद्देश्य यह है कि व मंत्री बना दिए जा सकते हैं। यथा—अभी पंत सेशन सुपुर्द नहीं हुआ था कि वह मंत्री हटा दिए गये और लालगंज के ठाकुर का दामाद मंत्री हो गया क्योंकि वह फ्लोर क्रास करके बाईस एम० एल० ए० लोगों के साथ कांग्रेस में आ गया था।[2]

राग दरबारी में गाँव की पंचायत समिति के चुनाव में कुछ दिनों से वैद्यजी रुचि लेने लगे थे। जबसे उन्होंने प्रधानमंत्री का भाषण अखबार में पढ़ा था। उस भाषण में बताया गया था कि गावों का उद्धार स्कूल सहकारी समिति और गाव पंचायत के आधार पर ही हो सकता है और अचानक वैद्य जी को लगा था कि वे अभी तक गाव का उद्धार सिर्फ कोआपरेटिव यूनियन और कालिज के सहारे करते आ रहे थे और उनके हाथ में गाव पंचायत तो है ही नहीं।[3] और वैद्यजी गाव का प्रधान सनीचरा को बना देते हैं, जिसे राजनीति की वर्णमाला का भी ज्ञान नहीं है। ऐसी राजनीति चलती है ग्रामीण संस्थाओं में।

आज की राजनीति में सत्ताहीन पार्टी दल बदलुओं के साथ जो व्यवहार इख्तियार करती है उसे हम 'महामहिम' में उस स्थान पर देख सकते हैं। प्यारेलाल मंत्री बनने की इच्छा लेकर सत्ताहीन पार्टी में शामिल हो जाता है। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय मंत्री चन्द्रिका बाबू तोताराम को कहते है—'प्यारेलाल और

---

१ एक और मुख्यमंत्री, पृ० ७६

२ कटरा बी आर्जू, पृ० ६६

३ राग दरबारी, पृ० ११८-११६

उनके साथियो को मत्रीमण्डल मे शामिल नही किया जायेगा। घबराओ मत, वे लोग तुम्हारा कुछ नही बिगाड पाएगे। अभी अभी दल बदलकर आये हैं अब फिर इतनी जल्दी दल परिवर्तन करने की हिमाकत नही करेंगे हां।"[1] विरोधी पार्टी के विधायक सत्ताहीन पार्टी को बदनाम करने के लिए हडतालें, जुलूसो, दगों को करवाते हैं। ऐसे स्वामी ब्रह्मचारी हैं, जो मत्री बनने के लिए ऐसा कर रहे हैं। 'समझौता हो गया कि विधायक दल की आपात बैठक मे स्वामी ब्रह्मचारी या गुट जुटाकर शुक्ल का साथ नही देगा और इसके बाद अगले ही दिन मत्रीमडल का विस्तार करने की घोषणा करके पुरस्कारस्वरूप ब्रह्मचारीजी के किसी साथी को गृह मत्रालय सौंप दिया जायेगा।"[2]

'दारुल शफा' मे बतलाया गया है कि आज नोट के बदले विधायको को खरीदा जा सकता है। आज इनकी रेट क्या चल रही है इसका चित्र इस स्थान पर उपस्थित हुआ जब उत्सकदास द्वारा लोबीराम की खरीद के समय पसा तय करते वक्त आता है। आज की रेट सुनकर उत्मकदास चौंक पडते हैं। बलराम कहता है—'तीस चालीस। नही गुरुजी साठ से क्या कम होगे।' साठ! बाप रे बाप!! क्या रेट है आजकल?' सवाल तो उत्सुकदास ने खुद पूछा और खुद ही जवाब देने लगे—'पाँच तो राज्य के चुनाव म दिये थे, इसमे मत्रीमण्डल न मिलने के लिए एक दो और चाहेगा साला।"[3]

'प्रजाराम' मे आपातकाल के समय सामा य जनता का इतना शोषण किया गया कि आदमी अपने अधिकारो और स्वतत्रताओ को भूल गया था। इदिरा गाधी चुनावों की घोषणा करती हैं। प्रजाराम इस काग्रस को हराने के लिए कमर कस लेता है। उसने बस एक ही नारा लगाया 'तुम किसी को भी अपना वोट दो, पर काग्रेस को वोट मत दो। उसे हर कीमत पर हटाओ। उसने प्रजातत्र, तानाशाही व स्वतत्रता के नाम पर हमे छला है। इसके हर शब्द जाल के पीछे आम आदमी का शोषण है।"[4] काग्रेस के बडे बड नताओ ने अवसर का फायदा उठाया और काग्रेस छोडकर जनता पार्टी मे शामिल हो गये। आशुतोष कहता है— इसे अवसरवादिता की राजनीति कहते हैं। प्रजाराम कल के काग्रेसी आज जनता पार्टी के महारथी बन सकते हैं, तो कल का अवसरवादी आज इनका भापू क्या नही बन सकता।[5]

उपयुक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय राजनीति मे प्रत्येक

---

१ महामहिम, पृ० ६१
२ वह, पृ० १७२
३ दारुल शफा, पृ० ३१६
४ प्रजाराम, पृ० १००
५ वही, पृ० १०४

सस्या (दल) अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की प्राप्ति के लिए अनैतिक हथकण्डो को अपनाता है। आज प्रत्येक नेता जैसी राह वसी चाल चलता है। जिस दल को उन्नति का रास्ता दिखाई देता है, उच्च पद प्राप्त होने की सभावना होती है, तो वह उस दल म शामिल हो जाता है। वतमान राजनीति मे दल इतने अधिक हैं कि किसी पार्टी का स्पष्ट बहुमत कम ही मिलता है, जिसके फलस्वरूप आज राजनीति को दल बदलू जमा भयकर रोग लग चुका है। भारतीय राजनीति को सही ढग से चलाने के लिए दल बदल का रोग समाप्त करना हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है, जो राष्ट्र को कमजोर बना रही है।

भाषा की राजनीति

ब्रिटिश शासको ने अपने धम और क्लक बनाने की खातिर अग्रेजी का प्रचार किया। भारत स्वतन्त्र हो गया, अग्रेज चले गये लेकिन उनकी भाषा नही गयी। आज अग्रेजी भाषा का स्थान राष्ट्र भाषा हिन्दी के समकक्ष ही है। आज भाषा भारत की एकता मे बाधक सिद्ध हो रही है। प्रत्येक प्रात की अपनी अलग भाषा है। जसे गुजरात की गुजराती, उडीसा की उडिया, महाराष्ट्र की मराठी, राजस्थान की राजस्थानी, पजाब की पजाबी, तमिलनाडू की तेलुगु तमिल आदि भाषाएं हैं जो एक प्रात विशेष मे बोली जाती हैं। दक्षिण भारत और उत्तर भारत भाषा के नाम से एक दूसरे से विभाजित हैं। उत्तर भारत की प्रधान भाषा हिन्दी है और दक्षिण म अग्रेजी का प्रभुत्व है। जब तक राष्ट्र भाषात्मक एकता से परिपूण नही होगा तब तक राष्ट्र का सगठित होना मुश्किल लगता है। सरकार को जनता में एक भाषा व एकता का प्रचार करना चाहिए। स्वतन्त्रता के पश्चात भाषा राजनीति का प्रमुख अग बन गयी। भाषा के नाम पर झगडे जाने लगे हैं। वतमान मे भाषा की राजनीति किस तरह फैल रही है उसको हम हिन्दी के साठोत्तर राजनीतिक उपन्यासो मे स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

'एक और मुख्यमन्त्री' म कथानायक अरविंद सोचता है कि भारत के वासी अपनी स्वय की भाषा स इतना प्रेम नही करते हैं, जितना विदशी भाषा अग्रेजी से करते हैं। उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत भाषा के नाम से एक दूसरे पर आरोप लगाते रहते हैं। अरविन्द अपन आप स कहता है—'हमारी भाषात्मक एकता का अस्तित्व कहाँ है। हम भारतवासी भी किस अजीब मिट्टी के बने हुए हैं जिन्ह अपने देश की भाषा से प्रेम न होकर अग्रेजी से है। सारा दक्षिण यह भी कहता है कि हमारी राष्ट्रभाषा कोई दक्षिणी भाषा हो तो भी कोई बात थी, पर वे अग्रेजी के लिए राष्ट्र की सम्पत्ति और उत्तरी भारत के लोगो को परेशान

करते हैं।'[1]

'दारुल शफा' मे लोबीराम हरिजनो व दलित वर्ग का समर्थन प्राप्त करने के लिए उनकी भाषा, हाव भाव से परिचित हो चुका था। हरिजन और पिछडे वर्ग के नेताओ की उभरती हुई नस्ल को लोबीराम ने ठीक वक्त पर पहचाना। उनकी भाषा, हाव भाव, उनकी समस्याएँ जितनी उसने जानी समझी थी, पार्टी मे बहुत कम लोग जानते थे।'[2]

उपरोक्त वर्णन से पता लगाया जा सकता है कि भारत जैसे विशाल देश मे एक भाषा नही है। हिन्दी राष्ट्रभाषा नाम मात्र की है। सरकार को हिन्दी को अखिल भारतीय भाषा बनाना चाहिए।

आनुवंशिकता की राजनीति

भारतीय राजनीति पर कुछ विशेष परिवारो का अधिकार हो गया लगता है। इन परिवारो के सदस्य क्रमानुसार शासन मे आते रहे हैं। आज मंत्री का बेटा मंत्री विधायक का बेटा विधायक, अफसर का बेटा अफसर आदि पदो के लिए स्थान पा रहे हैं। पं० नेहरू के बाद उनकी बेटी श्रीमती इंदिरा गांधी भारतीय राजनीति पर छाई रही हैं। इंदिरा जी ने अपने बेटे संजय को आगे लाने मे पूरी कोशिश की। उनके आकस्मिक देहावसान पर राजीव गाँधी को पायलट से हटाकर युवा राजनेता बना दिया गया। यह प्रवृत्ति स्वस्थ लोकतंत्र के लिए अहितकर है। साठोत्तर हिन्दी उपन्यासो मे इस आनुवंशिकता की राजनीति का विरोध किया गया है। आज भाई भतीजावाद को भी भारतीय राजनीति मे देखा जा सकता है।

'राग दरबारी' मे वैद्य जी कई राजनीतिज्ञो और अधिकारियो को परास्त करके वहाँ पहुँच गये जहाँ से कोआपरेटिव इंसपेक्टर की रक्षा का आदेश निकल रहा था। 'वहाँ उन्हे विदित हुआ कि सहकारिता-आन्दोलन मे अब एक नये चिंतन का संचार हुआ है जो भाई भतीजावाद, जातिवाद आदि उच्चवर्गीय सिद्धांतो को एक मे लपेटकर भविष्य मे कार्यकर्ताओ की प्रेरणा का स्रोत होगा।'[3]

'दारुल शफा' मे तांबा काण्ड की जांच केन्द्रीय मंत्रीमंडल के पास भेज दी जाती है। गुरुपद स्वामी उस समय गृहमंत्री बने थे। इस काण्ड के अपराधी उन्ही के ग्रुप के आदमी थे। इस तांबा काण्ड ने उसकी प्रतिष्ठा को हिला सा दिया था। 'उनके पिछले जीवन से सम्बंधित जितने घपले थे, वह सब उन्होने जान

---

१ एक और मुख्यमंत्री, पृ० २१६
२ दारुल शफा पृ० ३७०
३ राग दरबारी, पृ० ३३०

बूझकर अपने माने-बेमाने बेटे की बीवियो के रिश्तेदारो, भाई की लड़की लड़को की खातिर झेले थे। उन सबकी जिम्मेदारी वह अपने ऊपर ओढ़ लिया करते। सब कुछ होते हुए इन घपलो से उनके खानदानी रिश्तेदारो भाई भतीजों के दोस्तो को किसी न किसी रूप मे फायदा ही पहुचा था।'[1] इस तरह आज प्रत्येक नेता अपने पारिवारिक सदस्यो के विकास की ओर अत्यधिक ध्यान देता है। 'इतने महत्त्वपूर्ण पद पर पहुँचने के बाद उन्होने मन ही मन सौगन्ध उठायी, घपले न करने की। खानदानी रिश्तेदारो, नातेदारो, भाई भतीजो के धधेबाज पिछलग्गू दोस्तो को उन्होने बड़ी सौजन्यता से काट रखा था।'[2] आज ऐसी नीति प्रत्येक नेता अपना ले तो राष्ट्र निरन्तर विकास की ओर उन्मुख होता रहेगा। लेकिन इस बात से नेता लोग दूर भागते हैं।

'हजार घोड़ो का सवार' मे गिरधर गोपाल अर्थात गीधू जब ससद सदस्य बन जाता है तो उसके सम्मान मे सेठ दौलतचन्द भोज का आयोजन करता है। गीधू वर्गहीन समाज की स्थापना पर जोर देता है। सेठ आज के चुनाव व राजनीति के सम्बन्ध मे कहता है—'लोग तो अभी से कहने लगे हैं कि देखते रहिये श्रीमान आगे चलकर मत्री का बेटा मत्री बनेगा, ससद सदस्य का बेटा ससद सदस्य। यह क्या अनीति नही है?'[3]

'प्रजाराम' मे तत्कालीन व्यवस्था के बारे मे प्रजाराम कहता है—सिपाहियो तुम्हारे बर्बर अत्याचार सहते सहते हम थक गये हैं। अब हम खुद खून का बदला खून मे लेंगे और उस व्यवस्था के लिए एक लम्बी लड़ाई लड़ेंगे, जिसमें देश का अशिक्षित भूखा नगा और मेहनतकश इन्सान एक नयी जिन्दगी पायेगा। वह चन्द बौद्धिक ऐय्याशो और उनके अन्यायो का सामना करेगा। वह भाई भतीजावाद मत्री का बेटा मत्री प्रधानमत्री का बेटा प्रधानमत्री ससद सदस्य का बेटा ससद सदस्य अफसर का बेटा अफसर की वश परम्परा का विरोध करेगा और भ्रष्ट राजनीति व अफसरशाही को जड़ों से उखाड़ फेंकेगा। तुमने हरिजनो, दलितो, अल्पसख्यको और जातिवाद के नाम पर लम्बा राज्य कर लिया है।'[4] इस तरह आज की राजनीति पर आनुवंशिकता पूर्ण रूप से हावी हो चुकी है।

नारी चेतना के परिवर्तित आयाम

स्वतत्रता के पश्चात् महानगरो की पढी लिखी स्त्रियाँ घर की चौखट को

---

१ दारुल शफा पृ० २२३-२२४
२ वही, पृ० २२४
३ हजार घोड़ो का सवार, पृ० ३७६
४ प्रजाराम, पृ० १५६

लाघकर राजनीति मे जन समूह के साथ जुड गयी । अतीत मे रजिया बेगम, चाँद बीवी अहिल्याबाई, नूरजहाँ आदि राजनीति से सम्बन्धित रही थी । भारत की स्वतन्त्रता मे रानी लक्ष्मीबाई का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा । राष्ट्रीय आन्दोलनो मे विभिन्न प्रदर्शनो, जुलूसो आदि मे भाग लेने के साथ वे पुलिस की गोलियो और लाठी सहने मे भी आगे रही । नारी शिक्षा के परिणामस्वरूप नारी जागरूक होकर चारदीवारी को लाघ कर राजनीतिक क्षेत्र मे आ गई है। वर्तमान राजनीति मे नारी का स्थान महत्त्वपूर्ण है । आज भारत की प्रधान मन्त्री नारी ही है । वह है श्रीमती इंदिरा गाधी । इनके अलावा अन्य महत्त्वपूर्ण पदो पर नारी का स्थायित्व है । वास्तव में स्त्रियो के राजनैतिक व्यक्तित्व के विकास मे राष्ट्रीय आन्दोलन का ही प्रभाव नजर आता है । साठोत्तर हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो में नारी के योगदान का उल्लेख इस तरह मिलता है ।

'एक और मुख्यमन्त्री' मे कथानायक अरविंद की प्रेमिका शची अरविंद के कहने पर राजनीति मे आ गयी थी । धीरे धीरे वह विधायक भी बन गयी है । फिर कांग्रेस मे शामिल हो गयी । मन्त्री सेवाराम की अरविंद से तनातनी हो गयी—'ताव मे आकर उसने अपने पद से इस्तीफा दे दिया । अरविन्द ने उसे स्वीकार कर लिया और मन्त्रियों के पोर्ट फोलियो मे एक बार फिर उसने हेर-फेर की । इस हेर-फेर मे शची शिक्षा उपमन्त्री बन गयी ।'[1] चौधरी जी नारी के विकास के लिए कहते हैं—'यह मेरा नितान्त ही व्यक्तिगत सुझाव था । आखिर नारियाँ भी कब प्रगति करेंगी । वह भी पुरुषो के मुकाबले कब कधे से कधा मिलाकर चलेंगी ?'[2] शची को मुख्यमन्त्री बनाने के लिए चुनाव मे खडा करके अपना समर्थन देता हुआ पत्रकारों से कहता है—'लोकतन्त्र की रक्षा करते हुए वह चाहेगा कि नेता का सवैधानिक रूप से चुनाव कराया जाय । उसकी ओर से श्रीमती शची रानी खडी होगी । अब हम नेता के मामले को लेकर किसी तरह का कोई समझौता नही करेंगे ।'[3] और इस तरह शची प्रात की मुख्यमन्त्री बन जाती है ।

शची ने पुत्र को जन्म दिया तो उसे देखकर अरविंद उसके अतीत को याद करता है—'जो एक दिन अपने जिस्म का सौदा करती थी—महानगर मे । जिसके चेहरे पर बाजारू औरतो जैसा कांईयाँपन था और थी एक टूटी हुई निराशा । कुठाओ मे घिरी स्त्रियो जसी निर्भीकता और स्पष्टता थी उसमे । वही शची आज कितनी पवित्र और सौम्य है । माँ बनकर वह उस नारी जीवन की महान् सार्थकता को सिद्ध कर रही है । उसने कई बार नितात मौन रहकर

---

१ एक और मुख्यमन्त्री, पृ० १८२
२ वही, पृ० २३१
३ वही, पृ० २८६

शाची को देखा। उज्ज्वलताओ से चमकती उसकी मुखश्री आकर्षणता की पराकाष्ठा को चूम रही थी।"[1]

'काली आंधी' की मुख्य पात्र मालती जी हैं। जो अपने पति के कहने पर राजनीति मे अपना सब कुछ त्यागकर शामिल हो जाती है। वह अपने पति जग्गी बाबू और लिल्ली से दूर चली जाती है और राजनीति मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लेती है। वह महिलाओ को आगे आने के बारे मे कहती है—'तो बहनो, हमे एक महिला सेवा दल बनाना है मुख्यमंत्री महोदय कल नगर मे आ रहे हैं और उन्हे दिखाना है कि हम महिलाए भी अपना मोर्चा सभाले हुए हैं आने वाले चुनावो मे हमे बहुत काम करना है मैं चाहूगी कि कम से कम तीस महिलाए आगे आयें और दल का निर्माण करें।"[2] मालतीजी नारी होते हुए भी ससद सदस्य बनने की शक्ति अपने व्यक्तित्व मे रखती थी। आज समाज को ऐसी सघर्षशील व शासन को अपने हाथ मे लेने की शक्ति होनी चाहिए।

उपर्युक्त विश्लेषण के बाद कहा जा सकता है कि स्वतत्रता के पश्चात् भारतीय नारी को घर की चारदीवारी को लाघकर आदमी के साथ कधे से कधा मिलाकर चलना होगा। आज महत्त्वपूर्ण पदो पर नारी पहुँच चुकी है।

शहरी और ग्रामीण राजनीति एव सस्थागत राजनीति

भारतीय स्वतत्रता सग्राम के आन्दोलन मे भारतीय गावो ने नगरो एव महानगरो के साथ कधे से कधा मिलाकर सार्थक सक्रियता प्रदान की थी। स्वतत्रता के पश्चात गावो मे पचायती राज्य और वयस्क मताधिकार प्रदान किया गया। आजकल ग्रामीण क्षेत्र शहरो और महानगरो की अपेक्षा राजनीति क्षेत्र के प्रमुख केन्द्र स्थल बनते जा रहे हैं। भारत की अधिकाश जनता गावो मे चाहे अनचाहे रूप से निवास करती है। अत भारतीय गाव राजनीतिक दलो के आकर्षण के केन्द्र हैं। ग्रामीण क्षेत्र राजनीतिक दलो के सघर्ष क्षेत्र बन गये हैं। इन्हीं दलो के कारण आज गांवो की राजनीति अधिक विषाक्त हो चुकी है। पचायती राज्य का उद्देश्य ग्रामीण जीवन मे प्रजातात्रिक मूल्यो की स्थापना करना था किन्तु महानगरो की राजनीति से जुडकर अनेक विघटनकारी तत्व इस पचायती राज्य मे समाविष्ट हो चुके हैं। साठोत्तर हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे ग्रामीण और शहरी राजनीति का चित्रण कुछ इस तरह मिलता है।

'राग दरबारी' आजादी के बाद के भारत मे महानगरीय नेताशाही और नौकरशाही के भ्रष्ट मूल्यो की टकराहट से उभरते ग्रामीण परिवेश का यथार्थ

---

१ एक और मुख्यमंत्री, पृ० ३०२
२ काली आंधी, पृ० १३

कया चित्र है। 'राग दरबारी' मे शिवपालगज की ग्रामीण राजनीति मे वैद्य का आधिपत्य है। वैद्यजी स्वार्थपरता, अवसरवादिता, गुण्डागर्दी, गुटबाजी, मारपीट व भाई भतीजावाद आदि गुणों से परिपूर्ण हैं। वैद्यजी—'छगामल कालेज के मैनेजर ही नही सर्वेसर्वा हैं। कालेज मे किसी अध्यापक के आने जाने की शक्ति पूर्णत वैद्यजी के हाथो मे निहित है। कालेज मे अध्यापक को बिना किसी इण्टरव्यू के नौकरी मे रख लिया जाता है। उम्मीदवार मे केवल एक ही योग्यता होनी चाहिए कि वो वैद्य की चापलूसी करना जानता हो। इसी का परिणाम है कि कक्षा मे विज्ञान पढाने के स्थान पर घर गहस्थी की चर्चा करने वाले तथा आपेक्षित घनत्व के क्रम मे आटा चक्की का विवरण देने वाले मोती बाबू कालेज के सबसे योग्य अध्यापक हैं।'[1]

वैद्यजी ग्राम प्रधान सनीचर को बनाकर सत्ता को पुन हथिया लेते हैं। वैद्य जी का कहना है कि प्रधान बनने से पहले सनीचर सारी जनता को धमका दें कि देखो भाई मैं किसी से कम तिकडमी नही हूँ। भला आदमी समझकर मुझे वोट देने से इन्कार मत करना।[2] सारे गाँव की सत्ता का विकेन्द्रीकरण वैद्यजी ने कर रखा है। थाना और पुलिस भी उनकी नेतागिरी को स्वीकार करते हैं, और सिर तक झुकाते हैं। तभी तो थाने का दरोगा रुप्पन बाबू को कहता है—'मैं आजादी मिलने से पहिले बख्तावर सिंह का चेला था। अब इस जमाने मे आपके पिताजी का चेला हू।'[3] पुलिस या दरोगा कोई भी यदि वैद्यजी के गुर्गे पर हाथ छोडता है तो वैद्यजी उसका बोरिया बिस्तर उठवाने मे तनिक भी देरी नही करते हैं। जोगनाथ के मामले मे दरोगा का तबादला इसी का प्रभाव है।[4]

महानगरीय राजनेताओ की गुटबंदी मे वैद्यजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है—'गुटबंदी परमात्मानुभूति चरम दशा का नाम है। उसमे प्रत्येक 'तू' 'मैं' को और प्रत्येक 'मैं' 'तू' को अपने से ज्यादा अच्छी स्थिति मे देखता है। वह उस स्थिति को पकडना चाहता है।'[5] वैद्यजी इस महामन्त्र का प्रयोग सभी जगह करते हैं ताकि उनकी कुर्सी हमेशा के लिए जमी रहे।

आज राजनीति मे गावो की राजनीति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाभोज' मे बतलाया गया है कि बिसू की हत्या से चुनाव के वक्त जो तनाव आ गया था, जिसके कारण चुनाव मे मत किस ओर जायेंगे यह किसी को पता नही था।

---

१ राग दरबारी पृ० २४
२ वही, पृ० २३०
३ वही पृ० २०
४ वही
५ वही पृ० ८६

पर दस दस वोट प्राप्त करने के लिए अनेक योजनाओं की घोषणा करने लगे थे। सुकुल कहते हैं—'बस अब खेत मजदूरों और हरिजनों को अपनी तरफ करने का काम जोर शोर से करो। योजना का पैसा सरकार से लें और वोट हमको दें। पिछले चुनाव में जैसा हमारे साथ हुआ ठीक वैसा ही दा साहब के साथ करवा दो इस बार।'[1]

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात भारतीय राजनीति में ग्रामीण राजनीति शहरी राजनीति पर किस तरह हावी हुई है उसका चित्रण इन उपन्यासों में विस्तृत फलक पर किया गया है।

आंदोलनकारी प्रवृत्तियाँ

कुछ ऐसे असामाजिक तत्व होते हैं जो देश के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं। जनता का संघर्ष के लिए उकसाते हैं और जनता उनके कहने पर हड़तालें, यूनियन साम्प्रदायिक दंगे कराया करती हैं। वे असामाजिक तत्व अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए इस बेचारी जनता को अपना हथियार बनाते हैं। अकाली नेता साम्प्रदायिकता के नाम पर सिक्ख जनता को आंदोलन के लिए उकसा रहे हैं। बंगाल में मार्क्सवादी मजदूरों को अपने अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष की प्रेरणा दे रहे हैं। आज बंगाल का व्यापारिक क्षेत्र इस यूनियन-बाजी, हड़ताल तालाबंदी के दौर से गुजर रहा है। वातावरण पूर्णतया अशांत हो गया है। संघर्ष मजदूर नेताओं के द्वारा किया जाता है परन्तु उसका दुष्परिणाम आम मजदूरों को भोगना पड़ता है। यूनियनबाजी और हड़ताल की वजह से कारखानों पर तालाबंदी हो गयी है जिसके कारण मजदूर बेरोजगार और आर्थिक दृष्टि से अपाहिज हो गया है। साठोत्तर राजनीतिक उपन्यासों में इस आंदोलन की प्रवृत्तियों को उल्लेखित किया गया है। उसका हमें निम्न संवादों से पता लगा सकता है—

'एक और मुख्यमंत्री' में साम्प्रदायिकता के नाम पर जो दंगे करवाये जाते हैं उनके सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है—'पंजाबी सूबे को लेकर सिक्खों और हिन्दुओं में काफी तनाव पैदा हो गया था।' यह घटना उसे (अरविंद) को पंजाब के एक मंत्री ने अत्यंत ही गुप्त रूप से बतलायी थी— सिक्खों और हिन्दुओं में विशेषतः आर्यसमाजी और जनसंघी विचारधारा के लोगों के बीच का तनाव हिंसा का रूप धारण कर रहा था। जगह जगह प्रदर्शन हो रहे थे। जन्मजात ब्राह्मण मास्टर तारासिंह ने जोश में आकर सिक्खों में प्रांतीयता एवं पृथकता की भावना भर दी थी।'[2] इस बात को लेकर पंजाब में दंगे होने लगे।

---

१ महाभोज पृ० ९० ९१

२ एक और मुख्यमंत्री, पृ० २१७

इसी तरह की भावना से लोंगेवाला, भिण्डरवाला सिक्खो मे प्रातीयता का विष भर करके दगे करवा रहे है।

मजदूर अपनी मागो को लेकर हडताल कर देते हैं। उनकी माँगें उचित होते हुए भी रतनलाल उन्हें स्वीकार नही करता है। अरविन्द सोचता है यदि इनकी मांगे पूर्णरूप से स्वीकार कर ली तो ये सिर पर चढ जायेंगे और आन्दोलन, हडताल तेज कर दी जाती है।' 'दसवें दिन अन्य ट्रेड यूनियनो एव मजदूर सगठनो ने प्रात व्यापी हडताल रख दी और नगर मे सम्पूर्ण हडताल की घोषणा कर दी गयी।'[1] मजदूर नेता निशात मियां का जेल मे देहात हो जाने से हडताल और तेज हो गयी। मजदूरो और पुलिस के आपसी सघर्ष मे आठ मजदूर मारे जाते हैं। अंत मे परिणाम यह निकलता है कि मजदूरो का खून बहाकर पूजीपति लोग उनकी मांगो को स्वीकार कर लेते हैं, वर्तमान मे पूजीपति वर्ग इसी तरह की नीतियों का आश्रय लेता है।

'सबहि नचावत राम गोसाईं' मे बतलाया गया है कि मोतीलाल की मिल में मजदूर वेतन को लेकर हडताल कर देते हैं। उनकी मांग वेतन वृद्धि को लेकर है। राधेश्याम उनकी मांगे स्वीकार कर लेता है तो मोतीलाल कहता है—'कह तो दिया फटट से कि मांगें मान लेते हैं सौ आदमियो को हराम की तनख्वाह देनी पडेगी और बीस हजार की चपत ऊपर से पडेगी।'[2] स्पष्ट है कि उद्योगपति मजदूरो के वाजिब हको को स्वीकारते कितने दुखी होते हैं।

'महामहिम' मे छात्रो के आन्दोलन का चित्र प्रस्तुत किया गया है। छात्र यूनियन कुलपति की नियुक्ति को लेकर विश्वविद्यालय मे हडताल कर देती है। छात्र नारे लगाते हुए विधान सभा भवन के समक्ष पहुँच गए। मार्ग मे उन्होंने बेकार पडी ईंट पत्थरो का क्रांति के लिए सदुपयोग कर डाला। राह मे पडने वाले बाजार में जो दुकानदार समझदार थे, उन्होंने जुलूस के आने की खबर सुनते ही दुकान बन्द कर दी और शो केशो को ताले लगा दिये। जिन्होने दुकान बन्द नही की, उनमे से कई के शो केस क्रांति के चपेट मे आ गए। विधान सभा भवन पहुँचकर छात्र 'जिन्दाबाद' और 'मुर्दाबाद' के नारे और जोश खरोश के साथ लगाने लगे।'[3]

'समय एक शब्द भर नही है' मे नक्सलवादियो का आन्दोलन और छात्रो के आन्दोलनों का वर्णन किया गया है। इनके साथ मजदूर, अध्यापक और अन्य

---

१ एक और मुख्यमत्री, पृ० २४६
२ सबहि नचावत राम गोसाई, पृ० ३४
३ महामहिम, पृ० १२८

शहरवासी भी हैं। जुलूस का नारा था 'हर जोर जुलम की टक्कर मे संघर्ष हमारा नारा है, नैनीताल काड मे गिरफ्तार साथियो को रिहा करो रिहा करो । तानाशाही नही चलेगी नही चलेगी ।'[1] पुलिस फायर करके जुलूस को बिखेर देती है। जनता ने जो शान्तिपूर्ण जुलूस निकला था उसे सरकार के दरिंदो पुलिस ने निममता से कुचल दिया।

इस तरह स्वतन्त्रता के पश्चात मजदूरो और छात्रो मे जो आदोलनकारी प्रवत्ति समाहित हुई उसका साठोत्तर राजनीति उपन्यासो म विस्तृत फलक पर चित्र खीचा गया है।

जातिवाद पर आधारित वतमान राजनीति

जिन्ना ने जातिवाद के नाम पर हिन्दुस्तान को दो भागो म विभक्त कर दिया। स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय राजनीति मे जातिवाद पूण रूप से हावी हो गयी थी। जाति के नाम पर प्रान्तो के निर्माण के खातिर उग्र आदोलन किए जाने लगे। प्रत्येक चुनाव जाति के नाम पर लडा जाता है। आज अकाली जाति के नाम उग्र आदोलन कर रहे हैं। सिख हिन्दू एक दूसरे के दुश्मन बन गये हैं। अकाली खून की नदिया बहाकर खालिस्तान का निर्माण करना चाहते हैं। मानव का मानव द्वारा आज खून बहाया जा रहा है। जातीयता के नाम पर *साम्प्रदायिक दगे होते जा रहे हैं। जातीयता पर राजनीतिक दलो का गठन हो* रहा है—जैसे शिव सेना मुस्लिम लीग हिन्दू सभा, रामराज्य परिषद अकाली दल जनसघ इत्यादि। पूर्वी भारत मे हिन्दुओ सवर्णों द्वारा हरिजनो पर अत्याचार जातीयता के आधार पर किये जाते है। उनको जिन्दा जला दिया जाता है। वतमान सरकार जातीय दगे, जातीय चुनावो पर अकुश लगाने म असमथ रही है। साठोत्तर हिन्दी उपन्यास मे जातीयता के नाम पर आधारित वतमान राजनीति को इस तरह देख सकते हैं।

'एक और मुख्यमन्त्री' मे अरविन्द नोटो के बदले वोटो को खरीदने म पीछे नही रहा। चौधरी दीनाराम को उसने ऐसे चुनाव क्षेत्र से खडा किया जहा चौध*रियो का बहुमत था। पर जब प्रतिद्वन्द्वी चौधरी उम्मीदवार बने तो यह नारा* लगाया कि—'जाट की बेटी जाट को तो जाट का वोट जाट को' तो अरविन्द ने उस आदमी की खाट खडी कर दी। उसने जातीयता के विष को लेकर चौधरी लोगो की विभिन्न जातियो म फूट डलवा दी और दीनारामजी का पक्ष मजबूत होने लगा। स्पष्ट रूप से चौधरी लोगो म दो ग्रुप हो गये। राजपूत लोग भी

---

१ समय एक शब्द भर नही है, पृ० ५२

दो भागो मे विभक्त हो गए थे। सिद्धेश्वरीप्रसाद सिंह के कारण कुछ राजपूत काग्रेस के बडे भक्त थे।'[१] ऐसी स्थिति प्रत्यक चुनाव मे देखी जा सकती है।

'राग दरबारी' मे चुनाव की तीन प्रणालियो का उल्लेख किया गया है। एक रामनगर वाली, दूसरी नेवादावाली और महिपालपुर वाली। नेवादावाला तरीका कुछ ज्यादा आदर्शवादी था। वहाँ कई जातियो के लोग चुनाव लडने के लिए खडे थे, पर उनम मुख्य उम्मीदवार हरिजन और ब्राह्मणो मे था। ब्राह्मण उम्मीदवार न सवर्णों के बीच ऋग्वेद के पुरुष सूक्त का कई बार पाठ किया और समझाया कि ब्राह्मण पुरुष ही ब्रह्मा का मुह है। उसने यह भी बताया कि शूद्र पुरुष ब्रह्मा का पैर है। प्रधान के पद के बारे मे उसने कई उदाहरण देकर बताया कि उसका सम्बन्ध मेधा और वाणी से है जो पैर मे नही होती, सिर मे होती है, जिसमे मुह भी होता है। अत ब्राह्मण को स्वाभाविक रूप स प्रधान बनना चाहिए, न कि शूद्र को।'[२] उसने रियायत के तौर पर यह भी मान लिया कि कोई दौड धूप का ऐसा काम, जिसम पैरो की आवश्यकता हो—जैसे न्याय पचायत के चपरासी का काम निश्चित रूप से शूद्र को ही मिलना चाहिए, पर प्रधान के पद के लिए शूद्र का खडा होना वेद विपरीत बात होगी।'[३] आज सिर्फ शहरी चुनावो मे जातिवाद हावी नही है वरन् ग्रामीण राजनीति म भी पूर्ण रूप से हावी है।

'महाभोज मे चुनाव के वक्त बिसू नामक हरिजन की हत्या कर दी जाती है। दा साहब जोरावर को हत्या का दोषी ठहराते हैं। इसके फलस्वरूप उनकी पार्टी को हरिजनो के वोटो से वचित रहना पडेगा। इसके सम्बन्ध मे वे कहते हैं—'और आप हैं कि इसी मूख का पल्ला पकडे हुए हैं। मारा हू गरीबो को तो भुगतने दीजिए सजा। नही चाहिए हमे जोरावर के वोट। अब इसके वोटो के चक्कर मे हरिजनो के सारे वोट तो गये ही गाँव के दूसरे लोगो के वोट भी नही मिलेंगे। सारा हिसाब लगाकर देख लिया है मैंने, ले डूबेगा जोरावर का साथ। माथे पर कलक और आत्मा पर बोझ, सो अलग।'[४]

'महामहिम' म तोताराम जब अपने मन्त्रिमण्डल का विस्तार करता है तो इससे पहले केन्द्रीय मन्त्री चन्द्रिका बाबू से परामर्श लेता है तो वे तोताराम को कहते हैं—'प्यारेलाल और उनके साथियो को मन्त्रिमण्डल म शामिल नही

१ एक और मुख्यमन्त्री, प० २७९
२ राग दरबारी, पृ० २३८
३ राग दरबारी, पृ० २३८
४ महाभोज, प० १७ १८

किया जायेगा। घबराओ मत, वे लोग तुम्हारा कुछ नही बिगाड़ पाएँगे। अभी अभी दल-बदलकर आये हैं अब फिर इतनी जल्दी दल परिवर्तन करने की हिमाकत नही करेंगे हाँ। और फिर देखो, तोता बाबू, हम जातिवादी नही है। हमारी एक लड़की न बनिया के यहाँ शादी की है। लेकिन ये साले बनिये, बामन और हरिजन हैं बड़े खतरनाक हैं, इनसे जरा बचकर रहना एक मौरगीलाल का तुमने मन्त्री बनाया, पर वही देखो, बाढ़ सहायता समितिया मे तुम्हे दगा द गया।'[1]

'हजार घोडो का सवार मे स्वत त्रता के पश्चात गीधू को टिकट देने का प्रस्ताव रखा जाता है। दो सुरक्षित सीटो पर दो नाम थे गीधू और चतुरभुज। सभी लोग गीधू का जातीयता के नाम पर चुनाव लडने को कहते हैं। जातीयता के नाम पर चुनाव का गीधू विरोधी है। इसीलिए उसने अपने नाम के पीछे 'भारतीय लगा दिया। जातीयता के नाम पर चुनाव लडने के सम्ब ध म सेठ गणेश कहता है— उसके लिए तुम्ह 'भारतीय वारतीय के चक्कर को छोडकर चमार का प्रमाण पत्र लाना पडेगा। तुम्ह ता राजनीतिक क्षेत्र मे चमार की जगह भारतीय' समझन लगे ह। यह भारतीय कोई जाति नही है। इसलिए तुम्ह प्रामाणिक रूप से बताना पडगा कि तुम चमार हो। तुम नि सदेह ससद सदस्य बन जाओगे। तुम्हारा जीवन बदल जायगा। ठाठ बाट हो जायेंगे। इस पर उत्तेजित होकर गीधू कहता है—'पर मैं यह भी जानता हूँ कि एक दिन आप सब इस देश म एक एक वर्ग को इतना बाट देंगे उसे इतना काट डालेगे कि यहाँ केवल छोटी छोटी जातिया ही रह जायेंगी। उन जातियो का वैमनस्य, घृणा, छोटापन, ओछापन और सकीर्णता इस देश को नरक बना डालेगी। इस देश मे न कोई भारतीय रहेगा और न कोई आदमी। यहा रहेगे धर्म, जातिया सम्प्रदाय। और एक का आदमी दूसरी जाति के आदमी से घृणा करेगा। सन ४७ का पाकिस्तान तो एक बना है। मुझे लग रहा है जिस तरह के यहा देश सेवक और नेता पैदा हो रहे हैं, व हजारो 'जातिस्तान' पैदा कर देंगे।'[3]

'प्रजाराम' मे कथा प्रतीक प्रजाराम जनता के सामने वर्तमान जातीयता की राजनीति के विरोध मे कहता है तुमने हरिजनो, दलित, अल्पसख्यको और जातिवादी के नाम पर लम्बा राज्य कर लिया है। वादो की हिंसा और निर्दयी राजनीति के तहत तुमने देश की विराटता को लघु कर दिया और आदमी को

---

१ महामहिम, पृ० ६१ ६२
२ हजार घोडो का सवार, पृ० ३६३
३ वही, पृ० ३६३ ३६४

बाट डाला। आदमी बटकर अपनी वास्तविक शक्ति और ऊर्जा को भूल गया है।'[1]

उपर्युक्त उदाहरणो से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वतन्त्रता के पश्चात राजनीति मे जातिवाद किस तरह उसका प्रमुख अंग बन गया है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था का सही लाभ आम जन को नही मिल पाता। उसे जातीयता की कुत्सित राजनीति का शिकार बनाकर राजनेता स्वार्थ सिद्धि मे लगे हुए हैं। इस जातीयता से उबरना बहुत आवश्यक है। इस तरह साठोत्तर राजनीतिक उपन्यासो म जिन परिवेशो का चित्रण हुआ उसका सक्षेप मे परिचय था। आज इस परिवेश ने राजनीतिक व्यवस्था को एकदम खोखला कर दिया है। आज की राजनीति आश्वासनो की मात्र राजनीति रह गयी है। हमे इन परिवेशो का समाप्त कर स्वच्छ राजनीति की स्थापना करनी होगी।

□

---

१ भजाराम, पृ० १५६

६ उपसंहार

अध्ययन के निष्कर्ष, उपलब्धियाँ और संभावनाएँ

वर्तमान शासन व्यवस्था और परिवेश को लेकर हिंदी उपन्यासों की सर्जना होती रही है। राजनीतिक उपन्यासों के कलेवर में राजनीतिक, सामाजिक जीवन, राष्ट्र और विश्व के क्षितिजों का एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया गया है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का उद्देश्य मुख्यतः परिवेश में बदलते मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करना है और आम जनता में राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय भूमिका पर विश्व बंधुत्व, एकता और मानवता का जयघोष करना है। वस्तुतः राजनीतिक उपन्यासों में सामाजिक परिवेश ही उर्वरक होता है, जो उसे पुष्ट बनाकर न्याय रचना को पुष्ट करता है। स्वतन्त्रता से पूर्व जो राजनीतिक उपन्यास लिखे गये उनमें भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का विस्तार से वर्णन किया गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात भी अनेक उपन्यास इस विषय पर रचे गये हैं। हिंदी के राजनीतिक उपन्यासों में सभी तरह की समस्याओं और परिवेश को विस्तृत रूप में चित्रित किया गया है। इन उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं की ओर भी ध्यान आकर्षित कराया गया है। ऐसी समस्याओं में नारी समस्या, सवर्ण की समस्या, जातीय असमानता, भ्रष्टाचारी शासन व्यवस्था का विरोध, आर्थिक असमानता आदि मुख्य हैं, जिन्हें राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। नव राष्ट्र के निर्माण के साथ अनेक सामाजिक, नैतिक, आर्थिक समस्याएँ उठ खड़ी हुई थीं, लेकिन ये समस्याएँ वैसी की वैसी आज भी हमारे सामने खड़ी हैं। हिन्दी के साठोत्तर राजनीतिक उपन्यासों में इसी कटु सत्य को लेकर राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के परिवेश में मानव जीवन की व्याख्या की गयी है। साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में जीवन की व्याख्या मुख्यतः मार्क्सवादी, लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था, गांधीवादी और राष्ट्रवादी सिद्धांतों के बिंदुओं पर आधारित है। इस लघुशोध प्रबंध में मुख्यतः आपातकाल और उसके बाद की पृष्ठभूमि पर सर्जित उपन्यासों की समीक्षा की गई है। ऐसा

स्वाभाविक भी है क्योंकि आपातकाल की सभावना को बुद्धिजीवी वर्ग ने गभीरता से महसूस किया था। इस काल मे लोकतत्र का अस्तित्व ही सदेहास्पद बन गया था और चारो ओर सशय के बादल मडराने लगे थे उसी स्थिति को माठोत्तर उपन्यासो मे वाणी दी गयी। जिनमे कटरा बी आजू प्रजाराम, शाति भग, महामहिम, दारुल शफा, महाभोज प्रमुख हैं।

'एक और मुख्यमत्री' म एक व्यक्ति की राजनीतिक यात्रा के माध्यम से भारत की बीस साल की राजनीतिक व्यवस्था का चित्रण किया गया है। 'सबहिं नचावत राम गोसाई मे स्वतत्रता के पश्चात पूजीपति वग और राजनीतिक वग के उत्थान का वणन है। स्वतत्रता के पश्चात राजनीति म नारी की भूमिका एव महत्ता का विवेचन 'काली आँधी' म किया गया है। 'राग दरबारी' मे शहरी और ग्रामीण राजनीति के घिनौने व घृणित चेहरो को उदघाटित करने का प्रयास हुआ है। आपात्काल और उसके अत की पष्ठभूमि का यथाथ चित्रण 'कटरा बी आजू' मे हुआ है। महाभोज' म चुनावो की राजनीति मे व्याप्त षडयत्रो को उजागर किया गया है। 'जगलतत्रम म प्रतीको के माध्यम से राजनीति के पच्चीस रातो की कहानी पच्चीस रातो के माध्यम स कही गई है। महामहिम' म जनता पार्टी के शासन को व्यग्यात्मक शैली म चित्रित किया गया है। 'हजार घोडो का सवार' शोषित एव दलित वग की उपेक्षा, उनकी व्यथा एव सामाजिक स्थितियो का सच्चा दस्तावेज है। वतमान सत्तालोलुप राजनीति एव उसके अवमूल्यन का कच्चा चिटठा खोलने वाला यथाथपरक उपन्यास 'दारुल शफा है। समय एक शब्द भर नही है म युवा पीढी के जन आदोलन तथा युवा पीढी के नक्सली आदोलन और सत्ता का अधापन दर्शाया गया है। 'शाति भग' म आपात्काल के तीन सालो के क्रूर इतिहास का विवेचन है। आपात्काल और उसके पश्चात जनता पार्टी के शासन के छ महीनो की पृष्ठभूमि पर आधारित 'प्रजाराम म जहा आपातकाल के अत्याचार, भयावहता, आतक और सत्रास का वणन है, वही दूसरी ओर समृद्धि, शाति और विकास का चित्रण भी है। सुराज म लोकतात्रिक समाजवादी व्यवस्था के कडवे यथाथ को प्रस्तुत किया गया है।

समीक्ष्य उपन्यासो के सवाद नाटकीय, प्रसगानुकूल, साद्देश्य एव अथवत्तापूण हैं। इन सभी उपन्यासो ने पात्रो के अतद्व द्वो को उजागर करने म सामान्यत लेखक सफल रहे हैं। इन उपन्यासो की भाषात्मक सरचना और शैली विधान के आयाम भी वविध्यपूण है। तमाम लेखको ने आचलिक शब्दो के अलावा अग्रेजी, उर्दू फारसी एव परिनिष्ठ हिदी का प्रयोग किया है। रचना उद्देश्य की दृष्टि से तमाम लेखको को प्रभूत सफलता मिली है। इन उपन्यासो मे बताया गया है कि आज की राजनीति किस तरह व्यवसाय बन चुकी है। आज की राजनीति का घृणित, क्रूर चेहरा इनमे देखने को मिलता है। आज के नेता व्यक्ति-

गत स्वार्थों की प्राप्ति के लिए दल बदलू हो रहे हैं भाई भतीजावाद की राजनीति अपना रहे हैं और जनता को दिग्भ्रमित कर रहे हैं। ऐसी राजनीति को अधिकांश लेखकों ने कटु भर्त्सना की है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध में अधिगृहीत औपन्यासिक कृतियों के अध्ययन की उपलब्धियों की दृष्टि से यह निवेदन करना प्रासंगिक होगा कि हिन्दी के साठोत्तर राजनीतिक उपन्यासों में विभिन्न राजनीतिक विषयों को उठाकर वर्तमान राजनीति की विडम्बनाओं को प्रस्तुत किया गया है। समीक्ष्य उपन्यासों में राजनीति के जाल में व्यक्ति जिस तरह फँस गया है, उसका यथार्थ चित्र खींचा गया है। आज रिश्वत मुनाफाखोरी जमाखोरी भाई भतीजावाद साम्प्रदायिक दंगे, भ्रष्ट सत्यावाद स्वार्थपरता, दल बदलू संस्थाएँ परिवार नियोजन के नाम पर ज्यादतियाँ, आश्वासनों की राजनीति, छुटभये और छुटभय नेताओं की कहानी बेगार प्रथा सूदखोरी और खोखले आदर्शों से मुक्ति आदि समस्याएं समीक्ष्य उपन्यासों की रचनात्मक उपलब्धि है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध की उपलब्धियों एवं निष्कर्षों पर विचार करने के पश्चात निष्कर्ष कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों के माध्यम से वर्तमान राजनीति का यथार्थ रूप हमारे सम्मुख चित्रित हुआ है। समाज में परिवर्तन लाने के लिए जन चेतना आवश्यक है। यह परिवर्तन यथार्थपरक राजनीतिक उपन्यासों के सृजन से भी संभव हो सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। वर्तमान राजनीति भ्रष्टाचार के चरम बिन्दु को छूने के लिए कृत संकल्प है और आम इंसान त्राहि त्राहि कर रहा है। आम जनता को भ्रष्ट राजनीति से उबार कर नूतन एवं स्वस्थ परिवेश प्रदान करने के लिए इसी तरह सतत सशक्त औपन्यासिक कृतियों के सृजन की महती आवश्यकता है। यह संतोष का विषय है कि हिन्दी के कथाकार इस ओर सचेष्ट हैं और इस विषय पर निरन्तर स्वागत-योग्य कथाकृतियों का सृजन कर रहे हैं।

□

ग्रंथानुक्रमणिका

आधार ग्रंथ

हिन्दी उपन्यास

१	एक और मुख्यमंत्री (१९६९)	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र
२	सबहिं नचावत राम गोसाईं (१९७०)	भगवतीचरण वर्मा
३	काली आंधी (१९७४)	कमलेश्वर
४	राग दरबारी (१९७५)	श्रीलाल शुक्ल
५	कटरा बी आर्जू (१९७८)	डा० राही मासूम रजा
६	महाभोज (१९७९)	मन्नू भण्डारी
७	जंगलतंत्रम (१९७९)	श्रवण कुमार गोस्वामी
८	महामहिम (१९८०)	प्रदीप पंत
९	हजार घोड़ों का सवार (१९८१)	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र
१०	दारुल शफा (१९८१)	राजकृष्ण मिश्र
११	समय एक शब्द भर नहीं है (१९८१)	धीरेन्द्र अस्थाना
१२	शांति भंग (१९८२)	मुद्राराक्षस
१३	प्रजाराम (१९८३)	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र
१४	सुराज (१९८३)	हिमांशु जोशी

सहायक ग्रंथ

१	आधुनिक उपन्यास में प्रेम की परिकल्पना	डा० विजयमोहनसिंह

२	आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनतिक चितन	श्रीधर शर्मा एव सरोज गर्ग
३	आधुनिक राजनीति सिद्धात	सी० ई० एम० जोड
४	भाधुनिक हिन्दी उपन्यास उदभव और विकास	डा० बेचन
५	आधुनिक हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय भावना	डा० सुधाकर शकर कलवडे
६	आधुनिक हिदी महाकाव्य मे पाश्चात्य चितन	डा० रामकिशन सनी
७	आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचार धारा पर पाश्चात्य प्रभाव	डा० हरिकृष्ण पुरोहित
८	उपन्यास और लोक जीवन	राल्फ फाक्स
९	उपन्यासकार प्रेमचन्द	डा० सुरेश गुप्त
१०	उपन्यास स्थिति और गति	डा० चद्रकात वादिवडेकर
११	औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षाएँ	डा० आदित्य कुमार त्रिपाठी
१२	कम्युनिज्म क्या है ?	आई० डब्ल्यू० राक्सन
१३	कालमार्क्स तथा धर्मानिक	डगेल्स
१४	का प्रशासन की रूपरेखा	डा० रामदत्त भारद्वाज
१५	किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासो का वस्तुगत एव रूपगत विवेचन	डा० कृष्ण नाग
१६	कुछ विचार	प्रेमचन्द
१७	गाधी और गाधीवाद	डा० पट्टाभि सीतारमैया
१८	गाधीवाद की रूपरेखा	रामनाथ सुमन
१९	गाधी विचारधारा का हिदी साहित्य पर प्रभाव	डा० अरविन्द जोशी
२०	चिदम्बरा	सुमित्रानन्दन पत
२१	प्रगतिवाद एक समीक्षा	डा० धर्मवीर भारती
२२	प्रेमचन्द और उनका युग	डा० रामविलास शर्मा
२३	प्रेमचन्द और गाधीवाद	रामदीन गुप्त
२४	प्रेमचन्द एक अध्ययन	राजेश्वर गुरु
२५	प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास	डा० कलाश प्रकाश
२६	पाश्चात्य काव्यशास्त्र मार्क्सवादी परम्परा	(स०) डा० नगेन्द्र
२७	बाल मनोविज्ञान पर आधारित हिन्दी उपन्यास	बुलाकी शर्मा

२८	भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य मे अभिव्यक्ति	डा० सुषमानारायण
२९	महात्मा गाधी	राधा कृष्णन
३०	महात्मा गाधी	रामनाथ सुमन
३१	मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अथवाद	लेनिन
३२	मार्क्सवादी दर्शन	वि० अफनास्येव
३३	राजदर्शन का स्वाध्ययन	सी० एल० वेबर
३४	राजनीति और दर्शन	डा० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
३५	राजनीतिक विचारक	पी० के० चड्डा
३६	राजनीतिक विचारधाराएँ	पी० के० चड्डा
३७	राष्ट्रपिता	प० जवाहरलाल नेहरू
३८	लेनिनवाद का मूल सिद्धात	स्टालिन
३९	विदेशी मार्क्सवादी समीक्षा	डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव
४०	वैज्ञानिक भौतिकवाद	राहुल साकृत्यायन
४१	श्रीनिवास ग्रथावली	डा० श्रीकृष्णलाल
४२	समाजवाद	डा० धर्मनारायण मिश्र
४३	समाजवादी विचारधारा और सस्कृति	लेनिन
४४	साहित्य, सिद्धात और समालोचना	डा० देवीप्रसाद गुप्त
४५	साहित्यालोचन	बाबू श्यामसुन्दरदास
४६	सोवियत सत्ता क्या है ?	लेनिन
४७	स्वातन्त्र्य हिन्दी उपन्यास मे मूल्य सक्रमण	डा० हेमेन्द्र पानेरी
४८	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य मे राजनीतिक चेतना	डा० सुषमा कश्यप
४९	हिन्दी उपन्यास	(स०) सुषमा प्रियदर्शिनी
५०	*हिन्दी उपन्यास*	*डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी*
५१	हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना	डा० ज्ञानचद
५२	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डा० त्रिभुवनसिंह
५३	हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण	डा० महेन्द्र चतुर्वेदी
५४	हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण	डा० रामचरण मिश्र
५५	हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास	डा० प्रताप नारायण
५६	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचद्र शुक्ल
५७	हिन्दी उपन्यास के अस्सी वर्ष	शिवदान सिंह

५८	हिंदी उपन्यास मे कथा शिल्प का विकास	डा० प्रतापनारायण टडन
५९	हिंदी उपन्याम म मध्यम वग	डा० मजुलता मिह
६०	हिंदी उपन्यास रचना विधान और युग बोध	श्रीमती बसती पत
६१	हिंदी उपन्याम शिल्प और प्रवत्तिया	डा० सुरेश सिन्हा
६२	हिंदी कविता मे युगा तर	डा० सुधी द्र
६३	हिंदी कविता मे राष्ट्रीय भावना	विद्या (न गुप्त
६४	हि दी का य मे माक्सवादी चेतना	डा० जनेश्वर वर्मा
६५	हिंदी की प्रगतिशील कविता	डा० रणजीत
६६	हिंदी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य	डा० दवीप्रसाद गुप्त
६७	हिन्दी के स्वच्छदतावादी उपन्यास	कमल कुमार जौहरी
६८	हिंदी के सामती चेतनापरक उपन्यास	डा० देवदत्त शर्मा
६९	हिंदी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव	डा० शकरलाल जायसवाल
७०	हि दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	डा० गणपतिच द्र गुप्त
७१	हि दी साहित्य मे जनवादी परम्परा	प्रकाशच द गुप्त

सस्कृत ग्रन्थ

७२ अथर्व वेद काण्ड

७३ विष्णु पुराण

अ ग्रेजी ग्र थ

74	Ancient and Hindu India (Part I)	V A Smith
75	An Introduction to the Study of Literature	W H Hudson
76	Aspect of the Novel ,	E M Fsterer
77	Cavelcad of English Novel	Adward Benebabitt
78	Culture in Changing world	V I Jerome
79	Literature and Life	Marxim Gorkey
80	marxism and poetry	George Thomson
81	Modren Indian Social and political Thought	M K Gandhi

82 philosophy of Socialism Introduction — Dr Z A Ahmed
83 Socialism D moc acy and India — R C Gupta
84 Society — R M Macivicr
85 Studies is Modren History — G P Gooch
86 Th. Art of Fiction — Henery James
87 The English Novel — Waltar Allen
88 The Growth of English Novel — Richard Church
89 The Gupta Empire — Joh R K Mukerjee
90 The Novel and The Pupil — Ralf Fox
91 The Study of Prose Fiction — W H Hudson
92 The Theory and Practices of Socialism — John Strachy
93 Young India Part III — M K Gandhi

कोश एव विश्वकोश

१ आदर्श शब्द कोश
२ भागव आदश शब्द कोश
३ मानव अंग्रेजी हिन्दी कोश
४ राजनीतिक कोश
५ हिन्दी शब्द कोश
६ A Dictionary of philosophy
७ Dictionary of Novel
८ Webster s New International Dictionary of the English Language, Vol 2

पत्र पत्रिकाएँ

१ आजकल
२ आलोचना
३ नया शिक्षक
४ नवभारत टाइम्स (हिन्दी दैनिक)
५ नागरी प्रचारिणी पत्रिका
६ ब्लिटज (साप्ताहिक)
७ मधुमती

८ [illegible]
९ [illegible]
१० [illegible]
११ [illegible]
१२ [illegible]
१३ [illegible]
१४ [illegible]
१५ Harijan March 1936